विषय-सूची

श्री गुसाईं जी के सेवक छीत स्वामी चौबे तिनकी वार्ता

सो वे छीतस्वामी मथुरा में रहते हते और मथुराजी में पांच चौबे बड़ा गुंडा हते और ठगाई करते और छीत चौबे तिन पांचन में मुख्य हतो। सो तिनने विचार करयो जो कोई गोकुल में जाय है सो श्री विट्ठलनाथ जाके वस होय जाय है। जासूं ऐसो दीसे हैं जो श्री विट्ठलनाथ जी जादू टोना बहोत जाने हैं। परंतु हमारे ऊपर टोना चले तब सांची मानें ये विचार पांचों चौबे ने करयो तब एक खोटो नारियल और खोटो रुपैया लेके पांचों चौबे श्री गोकुल आये तब चार चौबे तो बाहेर बैठ रहे। और मुख्य जो छीत चौबे हतो तिनकुं भीतर पठायो। सो वे छीत चौबे ने खोटो नारियल तथा खोटो रुपैया जाय के भेंट धरयो तब श्री गुसाईं जी ने खवास सूं आज्ञा करी। जो या रुपैया के पैसा ले आव। जब रुपैया के पैसा आए और नारियल फोड्यो तब सफेद गरी निकसी। तब छीतस्वामी देखि के मन में विचारी। जो ये तो साक्षात् ईश्वर हैं। जब छीत स्वामी नें कही जो महाराज मोकुं शरण लेओ। जब श्री गुसाईं जी ने छीतस्वामी कुं नाम सुनायो। पाछे श्री नवनीत प्रिया जी के दर्शन करवे कुं गये।

भीतर देखें तो गुसांईं जी बिराजे हैं और बाहेर आयके देखें तो बिराजे हैं। जब छीतस्वामी ने विचारी जो श्री गुसांईं जी की ईश्वरता जीव सा जानी नहीं जाय है। जब वे चार चोबे बाहेर बैठे हते विनने छीतस्वामी कुं बुलाये। तब श्री गुसांईं जो ने आज्ञा करी जो तुमारे संगी बाहेर तुमकुं बुलावत हे सो तुम जाओ। तब छीतस्वामी नें बाहर आयके चारों चौबान से कही मोकुं टोना लग गयो हे तुम भाग जावो नहीं तो तुमको लग जायगो ये सुनके चारौं चौबे भाग गए छीतस्वामी नें एक पद करके गायो।

राग नट।

भई अब गिरिधर सों पहेचान।

कपट रूपधरि छलवे आयो पुरुषोत्तम नहि जान।१।

छोटो बड़ो कछू नयि जान्यो छाय रह्यो अज्ञान।

छीतस्वामी देखत अपनायो

श्रीविट्ठल कृपा निधान।२।

ये पद सुनके श्री गुसांईं जी प्रसन्न भए। और छीतस्वामी कुं श्री गुसांईं जी नें निवेदन करवाये। तब छीतस्वामी कुं साक्षात् कोटिकंदर्प लावण्य पूर्णपुरुषोत्तम के दर्शन भये। और भगवल्लीला को अनुभव भयो और श्री गुसांईं जी तथा श्री ठाकुर जी के स्वरूप में अभेदनिश्चय भयो दोनों सरूप एक है ऐसे जानन लगे तब छीतस्वामी गोपालपुर श्रीनाथ जी के दर्शन कुं गये। वहां श्रीनाथजी के पास श्रीगुसाईं जी कुं देखे।

(ख) महाराष्ट्री-अर्थात् महाराष्ट्र की प्राकृत। यही उत्कृष्ट प्राकृत समझी जाती थी। कविता और विशेषतः गीतों के लिये इसी का उपयोग किया जाता था। इसमें कई एक काव्य बनाये गए।

(ग) शौरसेनी—यह ब्रजमंडल की प्राकृत थी।

उपरोक्त प्राकृतों के अतिरिक्त मागधी तथा पैशाची आदि और भी प्राकृतें साहित्य के काम में लाई गईं। इनका समय १ली ई० शताब्दी से पांचवी ई० शताब्दी तक माना गया है।

४. साहित्यिक प्राकृतों के साथ२ बोल चाल की प्राकृतें भी प्रचलित थीं। उन्हीं ने कुछ शताब्दियों के पीछे अपभ्रंशों का रूप धारण कर लिया और नागर, उपनागर, व्राचड़ आदि नामों से प्रसिद्ध हुईं। इनका समय प्रायः ५०० ई० से १००० ई० तक समझा जाता है।

१००० ई० के लगभग, शौरसेनी अपभ्रंश गुजरात तथा पंजाब से बंगाल तक सारे आर्यावर्त में प्रचिलित थी। दसवीं शताब्दी में निज़ाम राज्य निवासी महाकवि पुष्पदन्त ने 'जैन-पुराण' इसी अपभ्रंश में लिखा, आसाम के महासिद्ध सरह *

---

*रामचन्द्र शुक्लजी के अनुसार सरह विक्रमी सं० ६९० के लगभग हुआ है। परन्तु तारानाथके इतिहासके अनुसारमहासिद्ध सरह आर्यावर्त के पूर्व प्रदेशमें रोली नाम स्थान में पैदा हुआ था और

ने (१०००ई० के लगभग) 'दोहा कोश' का निर्माण इसी साहित्ये भाषा में किया। इसी प्रकार वंग देश निवासी कृष्णपाद ने इसी अपभ्रंश में 'दोहा कोश' का संकलन किया। इन बातों से सिद्ध होता है कि संस्कृत तथा प्राकृत के समान एक समय अपभ्रंश भी विद्वन्मान्य था। इसी को पुरानी हिन्दी की काव्य-भाषा अथवा शिष्ट भाषा भी कहते हैं।

जैसे प्राकृतों में महाराष्ट्री प्राकृत ही प्रकृष्ट प्राकृत थी अथवा जैसे इस समय आर्य-भाषाओं में हिन्दी ही राष्ट्रभाषा समझी जाती है, ठीक इसी प्राकार अनेक अपभ्रंश के होते हुए भी उनमें से एक साहित्यिक अपभ्रंश बन गई और वही प्रधान होकर प्रसिद्ध हुई। बहुत व्यापक होने के कारण इस अपभ्रंश में गुजरात से लेकर अवध आदि मध्य प्रदेश तक के शब्द और रूप पाये जाते हैं। इसी अपभ्रंश से हिन्दी का जन्म हुआ है। इसलिये इसका परिचय कराने के लिये कुछ ग्रंथों के थोड़े से अवतरण नीचे दिये जाते हैं—

जोइन्दु कवि(योगीन्द्र देव) हेमचन्द्र से पहिले विक्रमी दसवीं अथवा ११ वीं शताब्दी में हुए हैं। उन्होंने उपरोक्त अपभ्रंश में "परमप्प-प्पयास-दोहा" (परमात्म-प्रकाश-दोहा) नामक ग्रंथ लिखा था। इसके दो दोहे नीचे उद्धृत किये गये हैं—

देउ ण देउलि, ण वि सिलए, ण वि लिप्पइ, ण वि चित्ति।
अखउ णिरंजणु णाणमउ, सिउ संठिउ सम चित्ति॥

रत्नपाल का समकालीन था। इस नाम के राजा ने आसाम में १०१० से १०५० तक राज्य किया।

अर्थात्—देव न देवालय में (है) न ही शिला में, न ही लेप्य में, और न ही चित्र में, वह अक्षय ज्ञानमय निरंजन शिवयुक्त चित्त में विराजमान है।

मणु मिलियउ परमेसरहं, परमेसरु वि मणहस्स।
बीहि वि समरसि हूवहं, पुज्ज चडावडं कस्स॥

अर्थात्—मन परमेश्वर से मिला, परमेश्वर भी मन से, दोनों के एक रस हो जाने पर पूजा (की सामग्री) किसे चढ़ाऊं ?

अपभ्रंश काव्य में दोहा छन्द ही का अधिक प्रचार था, जैसे प्राकृत में गाहा अथवा गाथा का।

यह अपभ्रंश जैन तथा बौद्ध धर्माचारियों द्वारा धर्म प्रचार के लिये प्रयुक्त हुई। सिद्धों तथा योगियों ने भी इसका उपयोग किया। हम्मीर रासो आदि वीर गाथा काव्य इसी भाषा में रचे गये। अपभ्रंश प्राकृत की रूढ़ियों में जकड़ी हुई थी। पूर्वोक्त पर उत्तरोक्त के रूपों तथा शब्द-भंडार का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

यह अपभ्रंश भी विकृत होकर अवहट्ठ (संस्कृत-अपभ्रष्ट) कहलाई। मैथिल कवि विद्यापति ठाकुर (सं० १४०७-१४६०) ने 'कीर्तिलता' नामक काव्य इसी अवहट्ठ भाषा में लिखा। प्राकृत पिंगल के दृष्टांत अवहट्ठ भाषा में हैं। संदेशक-रास काव्य जो पन्द्रहवीं शताब्दी में लिखा गया तथा 'रणमल्ल छन्द' आदि भी इसी अवहट्ठ में रचे गये। नमूने के लिए विद्यापति के उपरोक्त काव्य में से एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

"रज्ज-लुद्ध असलान बुद्धि विक्कम बले हारल।
पास बइसि विसवासि राय गयनेसर मारल॥
मारत राय रणरोल पडु, मेइनि हा हा सद्द हुअ।
सुरराय नयर नरअर रमणि वाम नयन पप्फुरिअ धुअ॥'

इसी सम्बन्ध में स्मरण रखना चाहिये कि अपभ्रंश को डिंगल तथा पिंगल और दो नामों से भी पुकारा जाता है। डिंगल वस्तुतः राजस्थान की साहित्यिक अपभ्रंश का नाम है और पिंगल ब्रज प्रदेश की साहित्यिक भाषा का।

अब यह प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता है कि आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म कब हुआ ? इसका ठीक उत्तर नहीं दिया जा सकता। केवल इतना कहा जा सकता है कि म० शहीदुल्लः के अनुसार कण्हा की 'चर्या' का समय लगभग ७०० ई० है। फिर बारहवीं शताब्दी में मराठी में बहुत छोटे लेख मिलते हैं। राजस्थानी में राजपूत राजाओं के कुछ पत्र उपलब्ध होते हैं और बंगाली में कुछ टीकाएं पाई जाती हैं। १२१० ई० में मराठी में ज्ञानेश्वरी लिखी गई। इसी शताब्दी में खुसरोंने पहेलियां बनाईं। तत्पश्चात १३९४ई० में गुजराती में एक संस्कृत व्याकरण लिखा गया। १४०० ई० के लगभग 'गीसूदराज' सूफी की कृतियां उर्दू में मिलती हैं। इस विवरण से ज्ञात होता है कि तेरहवीं शताब्दी में आधुनिक आर्य भाषाएं साहित्य के लिए प्रयुक्त होने लग पड़ी थीं। स्पष्ट है कि इन भाषाओं का जन्म कुछ शताब्दियों पहले हुआ होगा।

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति नवीं अथवा दसवीं शताब्दी में हो गई होगी क्योंकि बारहवीं शताब्दी में हिन्दी से मिलते जुलते रूप हमें पत्रों में अथवा अपभ्रंश साहित्य में मिलने लग जाते हैं। जैनाचार्य हेमचन्द [सं० ११४५—१२२९] कृत 'सिद्ध हेमचन्द' अथवा हैम व्याकरण का एक दोहा नीचे दिया जाता है, उसकी भाषा की तुलना हिन्दी से कीजिये—

भल्ला हुआ जु मारिया, बहिणि महारा कंतु।
लज्जेज तुवयसिअहु, जय भग्ग घरु एतु ॥

अर्थ—हे बहन! भला हुआ जो हमारा कांत मारा गया। यदि भागा २ (भाग कर) घर आता, तो मैं समवयस्क सखियों से लज्जित होती।

स्पष्ट ही दोहे की भाषा खड़ी बोली के बहुत निकट तथा सदृश है

जैसे पहले बताया गया है, प्राकृतों से अपभ्रंशों का जन्म हुआ और फिर अपभ्रंशों ही ने आधुनिक भाषाओं का रूप धारण कर लिया। नागर अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी निकली और व्राचड़ से सिंधी का जन्म हुआ। इसी प्रकार अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति दूसरी अपभ्रंशों से हुई।

वररुचि (ई० से पूर्व पहली शताब्दी) से लेकर मार्कंडेय (१७वीं शताब्दी) तक सभी प्राकृत व्याकरण-कार प्राकृत रूपों को साधन के लिये संस्कृत का ही उपयोग करते रहे। दूसरे शब्दों में प्राकृत शब्दों तथा रूपों को उत्पत्ति संस्कृत शब्दों तथा

रूपों से सिद्ध करते रहे। आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म अपभ्रंशों से हुआ है और यह अपभ्रंश प्राकृतों ही से निकली हैं। इसलिये स्पष्ट ही संस्कृत आधुनिक आर्य भाषाओं की पूर्वज है।

आर्य देशी भाषाओं के मुख्य शब्द, प्रत्यय और उनकी रचना संस्कृत से मिलते हैं। कुछ संस्कृत शब्द ज्यों के त्यों देशी भाषाओं में प्रयुक्त किये जाते हैं। इन्हें तत्सम कहते हैं। यहां 'तत' का अर्थ है प्रकृति, मूल, अर्थात्—संस्कृत भाषा। जो शब्द जैसे संस्कृत में हो वैसा ही रहे, तो उसे तत्सम कहते हैं, जैसे—

दृष्टि, भाव, कर्म, मनुष्य, स्त्री, पुरुष, धर्म, अर्थ, अग्नि, आकाश आदि सभी तत्सम शब्द हैं।

—बंगाली, उत्कली अर्थात उड़िया और मराठी भाषा में तत्सम शब्दों की बहुलता है, हिंदी और गुजराती में उनसे कम और पंजाबी तथा सिंधी में सबसे कम। इतिहास पर दृष्टि डालने से इसका कारण ज्ञात हो जायगा। सिंध और पंजाब में मुसलमान की सत्ता और प्रांतों से पहले हुई। इसी प्रकार मुसलमानों का धर्म वहां पहले आया। इन्हीं कारणों से वहां संस्कृत का प्रचार कम रहा और तत्सम शब्द भी कम संख्या में पाये जाते हैं।

तद्भव शब्द—उपरोक्त देशी भाषाओं में बहुत से संस्कृत शब्द विकृत हो गये हैं, ऐसे शब्दों को तद्भव कहते हैं। कुछ तद्भव ऐसे हैं, जिनसे प्राकृतों के नियमों के अनुसार विकार

हुआ, इन्हें **प्राचीन तद्भव** कहते हैं, कुछ ऐसे भी हैं जो पीछे संस्कृत से सीधे आर्य भाषाओं में लाये गये और कालगति से विकृत हो गए। ऐसे शब्दों को **अर्वाचीन तद्भव** कहते हैं।

प्राचीन तद्भव जैसे—

कर्म—कम्म—काम, अद्य—अज्ज—आज, गृध्र—गिद्ध—गीध, अग्नि—अग्गि—आग।

अर्वाचीन तद्भव, जैसे—

करम, कारज, आदि।

उपर्युक्त भाषाओं में तत्सम तथा तद्भव शब्दों के अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्द भी पाये जाते हैं जो देश की मूल भाषा से आए हैं। उन्हें देश्य अथवा 'देशज' कहते हैं। देश्य जैसे-कोगी, झज्झी डुसर।

इन आधुनिक आर्य भाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है---

१. उत्तर-पश्चिमी वर्ग—जिसके अन्तर्गत कश्मीरी, लहंदी, सिंधी तथा उर्दू भाषाएं हैं।

२. केन्द्रीय वर्ग-जिसमें पंजाबी, पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी तथा गुजराती आदि शामिल हैं।

३. दक्षिणी वर्ग—इसमें केवल एक भाषा मराठी गिनी जाती है।

४. मध्यम वर्ग— के अन्तर्गत केवल पूर्वी हिन्दी है।

४. प्राच्यवर्ग--इसमें विहारी, बंगाली तथा आसामी शामिल हैं ।

इस वर्गीकरण में पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी दोनों मिलते हैं, परन्तु अविशिष्ट हिन्दी का यहां नाम नहीं दिखाई देता।

इससे पहले कि हिन्दी भाषा पर विस्तारपूर्वक विचार किया जाय, हिन्दी शब्द पर प्रकाश डालना उचित जान पड़ता है।

हिन्दी शब्द का अर्थ है हिन्द का अथवा हिन्द की। भारतवर्ष के दो भाग समझे जाते हैं---उत्तरी भारत अथवा हिन्द तथा दक्षिण। उत्तरी भारत में आर्यभाषायें बोली जाती हैं औरदक्षिण में द्रविड़ भाषायें अर्थात् तेलगू, तामिल, मालयालम तथा कना-रीज। उत्तरी भारत हिन्दी अथवा आर्यावर्त कहलाता था। इस भाग की भाषा को हिन्दी असवा हिन्दवी का नाम दिया गया। अमीर खुसरों ने, जो तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में हुए थे, खालिकवारी में दोनों का प्रयोग किया है। वह लिखते हैं-

मुश्क (१) काफूर (२) अस्त कस्तूरी (१)कपूर (२)।
हिंदवी आनन्द (१) शादी (३) और सरूर (३)॥

मूंश (४) चूहा (४) गुर्ब (५) विल्ली (५)मार (६) नाग (६)।
सोजनो(७) रिश्तः(८) हिंदवी सूई (७) ताग (८)॥

अर्थ-मुश्क कस्तूरी है और काफूर कपूर है, शादी और सरूरको हिंदवी में आनन्द कहते हैं, मूश का अर्थ चूहा और गुर्बः का बिल्ली और मार का सांप है। सोजन और रिश्ता को हिंदी में सुई तागा कहते हैं ।

उत्तरी भारत में प्रायः आर्य वसते हैं, इसलिये इनकी भाषा को हिन्दी, हिन्दुवी अथवा आर्य भाषा भी कहा जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरित मानस' और मलिक-मुहम्मद जायसी का 'पद्मावत' अवधी भाषा में है, सूरदास का 'सूरसागर' व्रज भाषा में है। वीसलदेव रासो और पृथ्वीराज रासो दोनों की भाषा राजस्थानी है और मैथिल कोकिल, (विद्यापति ठाकुर) की पदावली विहारी भाषा में है। ये सभी कृतियां हिन्दी की बहुमूल्य सम्पति है। स्पष्ट है कि पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी (अवधी पूर्वी हिन्दी ही की उपभाषा है) राजस्थानी तथा विहारी यह सभी हिन्दी के अन्तर्गत मानी जाती हैं।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से उर्दू पश्चिमी हिन्दी की उपभाषा है परन्तु उर्दू साहित्य हिन्दी-साहित्य में शामिल नहीं किया जाता। इसके विपरीत विहारी का बंगाली से घनिष्ट सम्बन्ध है, तथापि उसे हिन्दी के अन्तर्गत माना गया है।

अब हिन्दी की उपरोक्त बोलियों का संक्षेपतः परिचय कराया जाता है। 7|10·

पश्चिमी हिन्दी—यह मध्य देश की भाषा है। युक्त प्रान्त के पश्चिमी भाग में, पंजाब के पूर्वी जिलों में, पूर्वी राजपूताने; गवालियर, बुन्देलखन्ड और सेन्ट्रल प्रांत के पश्चिमोत्तरी जिलों में बोली जाती है। इसका महत्व इसलिये और भी अधिक है क्योंकि इसकी प्रमुख उपभाषा-हिन्दुस्तानी-सारे उत्तरी भारत में बोली और समझी जाती है।

पश्चिमी हिन्दी की पांच उपभाषाएं हैं-हिन्दुस्तानी, बांगरू ब्रज, कन्नौजी और बुन्देली ।

हिंदुस्तानी—पश्चिमी रुहेलखंड, गंगा दोआब के ऊपरी भाग और पंजाब के जिला अम्बाला में बोली जाती है। इसके दो साहित्यिक रूप देखने में आते हैं--उर्दू तथा हिन्दी। इन दोनों की ध्वनि माला एक है, इनका व्याकरण भी लगभग एक है, तद्भव शब्द दोनों में समान हैं। दोनों में अन्तर यह है कि उर्दू में फ़ारसी तथा अर्बी के शब्दों को बहुलता होती है और यह फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है,

२ हिन्दी में संस्कृत शब्दों की प्रचुरता पाई जाती है और यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। उर्दू तथा हिन्दी--दोनों की साधारण सम्पत्ति को अथवा प्रचलित ठेठ बोली को हिंदुस्तानी कहते हैं।

उर्दू के भी दो रूप मिलते हैं:—

१ उत्तरी भारत की उर्दू जो देहली तथा लखनऊ की शिष्ट भाषा है।

२ दक्खिनी उर्दू--जो दक्षिण के मुसलमानों में प्रचलित है

पश्चिमी हिन्दी का जन्म शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ जो शौरसेनी प्राकृत से निकली थी। शौरसेनी मध्यदेश की प्राकृत थी और संस्कृत से इसका घनिष्ट सम्बन्ध था।

बांगरू—यह पंजाब के पूर्वी भाग में बोली जाती है, इसे जाटू अथवा हरियानी भी कहते हैं। इस पर राजस्थानी तथा

पंजाबी का पर्याप्त प्रभाव दीखता है।

ब्रज—यह गंगा दोआब के मध्य भाग की भाषा है।

कन्नौजी—यह ब्रज के पूर्व में बोली जाती है, और ब्रज से बहुत मिलती जुलती है।

बुंदेली—यह ग्वालियर और बुन्देलखंड में बोली जाती है।

पूर्वी हिन्दी—यह कानपुर से बनारस तक बोली जाती है और हिन्दी तथा बिहारी दोनों से मिलती है। इसकी तीन उपभाषायें हैं—अवधी, बघेली, तथा छत्तीसगढ़ी। इन में अवधी ही अधिक प्रसिद्ध है, कारण तुलसी और जायसी ऐसे सुविख्यात कवियों की अमर कृतियों ने इसी भाषा को सुसम्पन्न किया है।

राजस्थानी—इसके अन्तर्गत कई बोलियां हैं परन्तु प्रमुख ये हैं:—

१. मारवाड़ी—जोधपुर, जेसल-मेर, बीकानेर और शेखावाटी में बोली जाती है। इसके बोलने वाले भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में पाये जाते हैं।

२. मेवाड़ी—यह मेवाड़ की भाषा है। इसका साहित्य नहीं के बराबर है।

३. मेवाती-अलवर के मेवात प्रदेश की बोली है।

४. मालवी—झालावाड़, कोटा तथा प्रतापगढ़ में बोली जाती है।

ा. जयपुरी।

राजस्थान की साहित्यिक भाषा का नाम डिंगल है। इसका यह नाम क्यों और कब पड़ा, इस विषय में मत-भेद है।

डा० टेसिटोरी के मतानुसार १५ वीं शताब्दी ई० तक गुजरात तथा पश्चिमी राजपूताने में एक ही भाषा प्रचलित थी। इस भाषा का नाम प्राचीन पाश्चात्य राजस्थानी रखा गया। यह भाषा गुजराती और मारवाड़ी का मूल थी।

साहित्यिक दृष्टि से इन भाषाओं की अवस्था कैसी रह यही बात यहां संक्षेपतः बताई जाती है—

१—मगही--राहुल सांकृत्यायन के अनुसार आठवीं शताब्दी से इसमें साहित्य रचना होने लगी थी।

२—राजस्थानी—१२ वीं शताब्दी में साहित्य के निमित्त प्रयुक्त होने लगी और १६ वीं शताब्दी तक इसमें साहित्य का निर्माण होता रहा; परन्तु अब यह साहित्यिक भाषा नहीं रही।

३—अवधी—पन्द्रहवीं शताब्दी में अपने साहित्य कारण प्रसिद्ध हुई, परन्तु ब्रजभाषा के समान यह कभी भी लोक-प्रिय नहीं हो सकी।

४—पश्चिमी हिन्दी का स्थान इन सब में ऊंचा है। ब्रज तथा खड़ी बोली--दोनों उपभाषाओं ने हिन्दी साहित्य के कोष को भरा है। १५ वीं शताब्दी से १६ वीं तक ब्रज भाषा साहित्य के काम आती रही। जब से खड़ी बोली का उत्थान हुआ तब से इसका पतन आरम्भ हो गया। पहले यह गद्य-क्षेत्र से खदेड़ी

गई। अब कविता के मदान से भी निकाली जा रही है। खड़ी बोली का इतिहास तेरहवीं शताब्दी से आरम्भ होता है और तब से यह उन्नति करती रही है, यहां तक कि आज यह राष्ट्रीय भाषा के उच्च पद के योग्य समझी जा रही है।

ऊपर बताया जा चुका है कि हिन्दी देवनागरी लिपीमें लिखी जाती है। यह देवनागरी ब्राह्मी लिपी से निकली है। संस्कृत तथा मराठी भाषा इसी देवनागरी में लिखी जाती हैं और गुजराती तथा बंगाली इन दोनों की लिपि तथा गुरमुखी भी इससे मिलती जुलती है। देव नागरी लिपि वैज्ञानिक है। यदि इन सब प्रान्तों में इसी का प्रचार हो जाय तो देश में एकता पैदा करने तथा राष्ट्रीय धन और समय बचाने में यह सहायक होगी।

हिंदी गद्य के ह्रास के कारण

गद्य तथा पद्य

अन्य प्राचीन लोगों के समान प्राचीन भारतीय भी गद्य की उपेक्षा पद्य को अच्छा समझते थे। इसी लिए संस्कृत साहित्य का बहुत थोड़ा अंश गद्य में था, बहुत से प्राचीन ग्रन्थ, जैसे वेद, रामायण महाभारत आदि पद्य ही में थे, यही नहीं, व्याकरण, ज्योतिप, वैद्यक, इतिहास, पुराण, कोष ग्रन्थ आदि भी पद्य में रचे गये थे।

पहले पहल हिन्दी का साहित्य भी पद्यमय था। वीरगाथाकाल,

भक्तिकाल तथा रीतिकाल की साहित्यिक उपज प्रायः कवियों की देन है।

१—मुद्रण कला के अविर्भाव के पहले ऐसा होना स्वाभाविक था। उन दिनों छपी हुई पुस्तकें तो होती ही न थीं, केवल हस्त लिखित पुस्तकें मिलती थीं और वे भी इनी गिनी। विद्वान तथा लेखक भी कम होते थे और वे प्रायः ऐसे ग्रन्थ लिखते थे, जो कंठस्थ किये जा सकें, जैसे सूत्र ग्रन्थ अथवा पद्यमय ग्रन्थ। कहा भी है-विद्या कंठ और द्रव्य गंठ। तुक तथा लय के कारण पद्यों का कंठस्थ करना सुगम होता है, और काव्य अपने गुणों के कारण पाठकों को मुग्ध कर देता है, काव्य गद्य साहित्य की अपेक्षा कहीं अधिक रोचक तथा सरस ठहरा।

२—संस्कृत के विशाल तथा बहुमूल्य साहित्य के कारण उसकी इतनी प्रतिष्ठा थी कि और भाषाओं के लिए पनपना कठिन था।

३—हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तों के शासकों ने हिन्दीशिक्षा की ओर कभी ध्यान नहीं दिया।

४—हिन्दी भाषा के जन्म के पहले ही भारत पर बाहर से आक्रमण होने लगे थे। फलतः यहां मुसलमानों का राज्य तेरहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक रहा। उनके शासन काल में फ़ारसी तथा उर्दू का बोल बाला रहा। तत्पश्चात् अंग्रेज़ों के राज्य में भी १८२५ ई० में उर्दू ही कचहरी की भाषा बनाई गई इससे भी हिन्दी गद्य के कार्य को धक्का लगा।

भूमिका

हिंदी गद्य का विकास

आरंभिक गद्य

हिंदी गद्य का पहला नमूना दान-पत्रों तथा शाही परवानों के रूप में मिलता है—उदाहरणार्थ 'मेवाड़ की सनद' में जो सं० १२२९ की कही जाती है अथवा महाराज पृथ्वीराज आदि के आज्ञापत्र या परवाने आदि। भाषा का परिचय कराने के लिये वि० सं० १२२९ के एक पत्र की नक़ल नीचे दी जाती है

श्रीहरी एकलिंगो जयति

श्री श्री चित्रकोट वाई साहब श्री पृथुकुवर वाई का वारण गाम मोई आचारज भाई रुसीकेसजी बाँचजो, अपन श्री दली सु भाई लंगरी राय जी आया है, जो श्रीदली सु हजूर को वी खास रुका आयो है, जो कागद वाँचत चला आवजो, थानेमाआगे जाइगे पड़ेगा, थाके वास्ते डाक वेठी है, श्री हजूर वी हुक्म वेगीयो है, जो यह ताकीद सु आवजो, थारे मन्दर को व्याव कामारथ अवार करोगा दली सु आआ पाछे करोगा, ओर थे सवेरे दन अठे आयसो सं० ११४५ चैत सुदी १२। सही

अर्थ

श्री हरि एकलिंगजी की जय हो। मोई ग्राम निवासी आचार्य भाई ऋषीकेश जी को चित्तौड़ से वाईसाहव श्री पृथाकुँवरि वाई का संवाद वांचना। आगे भाई श्री लंगरीराय जी श्री दिल्ली से

हुजूर का खास रुक्का भी आया है जिससे मुझको भी दिल्ली जाने की आज्ञा मिली है। काका जी अस्वस्थ हैं। सो कागज बाँचते ही चले आओ। तुमको हमसे पहले जाना पड़ेगा। तुम्हारे वास्ते डाक बैठाई गई है। श्री हजूर (समरसिंह) ने भी आज्ञा दी है सो ताकीद जानकर जल्दी आओ। जो तुम्हारे मन्दिर की स्थापना जल्दी स्थिर हुई है सो हम लोगों के दिल्ली से लौटने पर होगी। इतनी जल्दी आओ कि दिन का सवेरा वहां हो तो शाम यहाँ हो। मिति चैत सुदी १३ संवत ११४५। सही"

इसके पीछे दो शताब्दियों तक गद्य की क्या अवस्था थी—इसके सम्बंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सं० १४०० से गद्य की रचनाएं मिलने लगती हैं। हिन्दी के सर्वप्रथम गद्य लेखक गुरु गोरखनाथ जी ही माने जाते हैं। ये विंटनिटस के अनुसार १५ वीं शताब्दी में हुए हैं। इनकी "गोरष गनेस गुष्टि" का अंश नीचे उद्धृत किया जाता है, इससे इनकी भाषा का परिचय मिल जायगा।

गोरष गणेस गुष्टि

"गणेस पूछै गोरष कहै

तुम्हें स्वामी कहां थै आव्या, कहा तुम्हार नाम।

अम्हें निरन्तर थैं बर आव्या, जोगी अम्हारा नाम।

स्वांमी जोगी तौ ते बोलिये जिन एता मेर मेषला रच्या।

स्वांमीं ते क्यों जाणिये।

रहति करि जाणिये, सबद करि प्रवाँणिये।

स्वांमीं रहित ते क्या बोलिये, सब्द ते क्या बोलिये।

सब्द बोलिये सब थै विवरजित, रहति बोलिये तृगुण रहित।

स्वांमीं सब थैं निरंतर ते क्या बोलिये।

सरब थैं व्यवरजित बोलिये अवधू सुछिम, त्रिगुण बोलिये सत रज तम।

तौ स्वामी सुछिम ते क्या बोलिये, सत रज तम ते क्या बोलिये।

सुछिम ते बोलिये अवधू दिष्टि न देषिये मुष्ट न आवै। सतगुन बोलिये पवन रज गुण बोलिये पानी। तृगुण बोलिये तामस रूपी। पंचतत्त पचीस परकीरती बोलिये आदम।"

वीर गाथा-काल के हिन्दी साहित्य के निर्माण में राजस्थान का प्रमुख भाग था। जहां वीर-काव्य का विकास हुआ, वहां गद्य भी पनपा होगा। यद्यपि आज राजस्थान की गद्य-रचनाएं हमें उपलब्ध नहीं हैं, तथापि उस समय के शिलालेख गद्य विकास के साक्षी हैं। एक शिलालेख का राजस्थान भाषा का नमूना देखिए—

"महाराजा जी विसक्रमा जी बोलाया। विसक्रमा जी आया। हुक्म थारा। विपनपुरी, रुद्रपुरी, ब्रह्मपुरी बिच वस्तलपुरी बसावो।"

—अचलदास खीचीरी वचनिके (सं० १४७०—सन् १४१३ के लगभग)

इसके अनन्तर शक्तिकाल का कृष्ण भक्ति सम्बन्धी गद्य हमारे सामने आता है। श्री वल्लभाचार्य के सुपुत्र गुसाईं विट्ठलनाथ जी ने 'शृंगार रस मंडन' नामक ग्रन्थ व्रजभाषा में लिखा। उसकी भाषा का नमूना नीचे दिया जाता है—

"प्रथम की सखी कहतु हैं। जो गोपीजन के चरण विषै सेवक की दासी करि जो इनको प्रेमामृत में डूवि कै इनके मद हास्य ने जीते हैं। अमृत समूह ता करि निकुज विषै शृंगार रस श्रेष्ठ रसना कीनो सो पूर्ण होत भई।"

यह गद्य न ही मंजा हुआ है और न ही व्याकरण के नियमों के अनुकूल ही है।

इनके पीछे इनके सुपुत्र श्री गोकुलनाथ जी ने व्रज में वार्ताएं लिखीं। इनकी भाषा साहित्यिक न होकर बोलचाल की है। वाक्य प्रायः छोटे छोटे हैं, इस लिये समझने में कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होती।

व्याकरण की दृष्टि से भाषा कई स्थानों में सदोष है। विशेषण का विशेष्य के पीछे आना, संज्ञा के स्थान में सर्वनाम प्रयुक्त न करना आदि दोष बहुत बार दृष्टिगोचर होते हैं। इस में कहीं २ अरबी फारसी के शब्द भी मिलते हैं, जैसे क़ासिद, कैदी, दिवान, हकूमत, माफ़, खुशी, ख़बर आदि। इनकी कुछ वार्ताएँ इस संग्रह में दी गई हैं, इस लिए इनके गद्य का नमूना यहां देने की

कोई आवश्यकता नहीं है।

नाभादास जी ने सं० १६६० के लगभग 'अष्टयाम' नामक एक गद्य पुस्तक ब्रजभाषा में लिखी। इसमें राम की दिनचर्य्या बताई गई है। इसकी भाषा का स्वरूप देखिये—

"तब श्री महाराज-कुमार प्रथम वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भए। फिर ऊपर वृद्ध-समाज तिन को प्रनाम करत भए। फिर श्री राजाधिराज जू कों जोहार करिके श्री महेन्द्र-नाथ दशरथ जू के निकट बैठते भए।"

श्री नाभादास जी गोस्वामी तुलसीदास जी के समकालीन माने जाते हैं। उन की 'भक्तमाल' की टीका श्री प्रियादास जी ने सं० १७६९ में की। उस का नमूना देखिये—

"तर्क करिवे को आवे है। तर्क कहा? वक्ता कहै प्रहलाद की अगिनि ते रक्षा करी। विमुख बाल्यो वक्ता हू को डारि देहु। बचै तौ सांचो नहीं ते झूंठो। वक्ता कहै राम नाम सों पाथर तरे। विमुख कहै, अब तरावो तो सांचो, नहीं तो झूंठ। वक्ता कहै गंगाजल सों स्नान करावो। विमुख कहै, मति करावो, पादो-दकी है। वक्ता कहै—सूर्य का यमुनाजल सों जलदान करै। विमुख कहै—मति करौ, पुत्री है पुत्री को जल कैसे लेवेगो? वक्ता कहै—तुलसी चरणामृत प्रसाद लेहु। विमुख कहै—मति लेहु, उदर में विगरै। याते इन सों न कहिये।"

यह गद्य पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है और इस में व्या-

कारण के नियमों का उल्लंघन भी नहीं दिखाई देता।

भाषा तथा भाव का चोली दामन का साथ हुआ करता है या यूं कहिए कि जैसा विषय होगा वैसी ही भाषा होगी। पहले पहल गद्य में पत्रादि लिखे गए, उस समय भाषा की द्योतकता का क्षेत्र संकुचित था, फिर भक्ति सम्बन्धी पुस्तकें लिखी गईं, उनकी भाषा भी अवश्य ही विषय के अनुरूप थी। ज्यूं २ हिन्दी गद्य साहित्य का क्षेत्र विस्तृत होता गया, विषय की विविधता तथा विचारों की गंभीरता के साथ २ भाषा भी पुष्ट और सबल तथा व्यापक होती गई।

गद्य की पहली पुस्तकों में व्याकरण की अवहेलना दिखाई देती है, व्याकरण के कई नियमों का उल्लंघन पाया जाता है और विराम-चिन्हों का प्रयोग भी बहुत कम किया गया है

खड़ी बोली:—

खड़ी बोली मेरठ तथा उसके आस पास बोली जाती थी मुसलमानों ने इसे अपनाया। हिन्दुओं तथा मुसलमानों में बात चीत तथा विचार विनिमय इसी बोली में होने लगा। उर्दू अर्थात् लश्कर के बाजारों में बोली जाने से यही उर्दू कहलाई। तदनन्तर जहां २ मुसलमान गए वहां इसे साथ ले गए। हिन्दुओं ने भी इसे उच्चस्थान देकर इसका समुचित आदर किया, इस प्रकार यह बोली सारे भारतवर्ष में प्रचलित हो गई।

पहले गद्य पद्य दोनों के लिए उत्तरी भारत में ब्रज ही प्रयुक्त

कर गद्य के क्षेत्र से बाहिर निकाल दिया। परिणाम यह हुआ कि आज गद्य तथा पद्य दोनों के लिए खड़ी बोली ही का प्रधान्य है।

साहित्य निर्माण के लिए खड़ी बोली का उपयोग पहले पहल अमीर खुसरो (सं० १३१२—१३८१) ने किया। यह फ़ारसी तथा हिन्दी दोनों में कविता करते थे। उनकी पहेलियां तथा कह-मुकरणियां प्रसिद्ध हैं। चौदहवीं शताब्दी की भाषा का परिचय कराने के लिए उन की एक पहेली दी जाती है।

एक थाल मोती से भरा, सब के सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर थाल वह फिरे, मोती उससे एक ना गिरे॥

(आकाश)

कबीर (सं० १४५६—१५७५) की रचनाओं में भी खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए उनके दो दोहे नीचे दिये जाते हैं।

ना कुछ किया न करि सक्या, ना करने योग शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, तार्थें भया कबीर॥
कबीर हरिरस यौं पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुंभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि॥

"चंद छंद बरनन की महिमा" जिसे गंग भट्ट ने १६ वीं शताब्दी में लिखा था ब्रज मिश्रित खड़ी बोली में है।

कहा जाता है कि अठारहवीं शताब्दी में कुछ और लेख

कारण के नियमों का उल्लंघन भी नहीं दिखाई देगा।

भाषा तथा भाव का चोली दामन का साथ हुआ करता है या यूं कहिए कि जैसा विषय होगा वैसी ही भाषा होगी। पहले पहल गद्य में पत्रादि लिखे गए, उस समय भाषा की शोतकता का क्षेत्र संकुचित था, फिर भक्ति सम्बन्धी पुस्तकें लिखी गईं, उनकी भाषा भी अवश्य ही विषय के अनुरूप थी। ज्यूं २ हिन्दी गद्य साहित्य का क्षेत्र विस्तृत होता गया, विषय की विविधता तथा विचारों की गंभीरता के साथ २ भाषा भी पुष्ट और सबल तथा व्यापक होती गई ।

गद्य की पहली पुस्तकों में व्याकरण की अवहेलना दिखाई देती है, व्याकरण के कई नियमो का उल्लंघन पाया जाता है और विराम- चिन्हों का प्रयोग भी बहुत कम किया गया है

खड़ी बोली:—

खड़ी बोली मेरठ तथा उसके आस पास बोली जाती थी मुसलमानों ने इसे अपनाया। हिन्दुओं तथा मुसलमानों में बात चीत तथा विचार विनिमय इसी बोली में होने लगा। उर्दू अर्थात् लशकर के बाजारों में बोली जाने से यही उर्दू कहलाई। तदनन्तर जहां २ मुसलमान गए वहां इसे साथ ले गए। हिन्दुओं ने भी इसे उच्चस्थान देकर इसका समुचित आदर किया, इस प्रकार यह बोली सारे भारतवर्ष में प्रचलित हो गई।

पहले गद्य पद्य दोनों के लिए उत्तरी भारत में ब्रज ही प्रयुक्त

होती थी, पीछे [illegible]
कर गद्य के क्षेत्र से बाहिर निकाल दिया। परिणाम यह हुआ कि आज गद्य तथा पद्य दोनों के लिए खड़ी बोली ही का प्रधान्य है।

साहित्य निर्माण के लिए खड़ी बोली का उपयोग पहले पहल अमीर खुसरो (सं० १३१२—१३८१) ने किया। यह फ़ारसी तथा हिन्दी दोनों में कविता करते थे। उनकी पहेलियां तथा कह-मुकरणियां प्रसिद्ध हैं। चौदहवीं शताब्दी की भाषा का परिचय कराने के लिए उन की एक पहेली दी जाती है।

एक थाल मोती से भरा, सब के सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर थाल वह फिरे, मोती उससे एक ना गिरे॥

(आकाश)

कबीर (सं० १४५६—१५७५) की रचनाओं में भी खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए उनके दो दोहे नीचे दिये जाते हैं।

ना कुछ किया न करि सक्या, ना करने योग शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, तार्थे भया कबीर॥
कबीर हरिरस यौं पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुंभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि॥

"चंद छंद बरनन की महिमा" जिसे गंग भट्ट ने १६ वीं शताब्दी में लिखा था व्रज मिश्रित खड़ी बोली में है।

कहा जाता है कि अठारहवीं शताब्दी में कुछ और द

कहेंगे, हमें इस बात का डर नहीं। जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिए, कोई बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका (जो) सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइ और फुसलाइ और सत्य छिपाइए, व्यभिचार कीजिए और सुरापान कीजिए और धन द्रव्य इक ठौर कीजिए और मन को जो तमोवृत्ति से भर रहा है, निर्मल न कीजिए। तोता है सो नारायण का नाम लेता है, परन्तु उसे ज्ञान तो नहीं है।"

इसी समय में सय्यद इन्शा अल्लाखां ने 'उदैभान चरित्र' अथवा 'रानी केतकी की कहानी' लिखकर खड़ी बोली के गद्य-साहित्य में एक ग्रन्थरत्न की वृद्धि की। इसकी भाषा ठेठ, चटकीली खड़ी बोली है। इसकी भाषाके विषय में वह स्वयं कहते हैं-

"एक दिन बैठे २ यह बात अपने ध्यान में चढ़ आई कि कोई कहानी ऐसी कहिये कि जिस में हिन्दुवी छुट और किसी बोली की पुटन मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप से खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उस के बीच न हो। अपने मिलने वालों में से एक कोई पढ़े लिखे, पुराने, घराने, बूढ़े घाग यह पटराग लाए, सिर हिलाकर मुंह बनाकर, नाक भौं चढ़ाकर, आंखें फिराकर लगे कहने 'यह बात होवी दिखाई नहीं

जैसे "मडोवर का वर्णन" तथा "चकत्ता की पातस्याही की परम्परा" भी खड़ी बोली गद्य में लिखे गए।

हिन्दी गद्य का विस्तार काल

सन् १८०० ई० में कलकत्ते में फ़ोर्ट विलियम कालेज स्थापित हुआ। डा० गिल्क्राइस्ट इसके आचार्य नियुक्त हुए। ईस्ट इंडिया कंपनी के अंग्रेज कर्मचारियों के लिए डा० महोदय ने हिन्दी तथा उर्दू की कई पाठ्य पुस्तकें लिखवाईं। इन्हीं आचार्य जी की प्रेरणा से लल्लूलाल जी ने पहले चार पुस्तकों का अनुवाद उर्दू में किया और फिर खड़ी बोली में प्रेम सागर का निर्माण किया। लल्लूलाल जी के समकालीन और भी तीन सज्जन थे—मुन्शी सदासुख लाल, इन्शाअल्ला खां और सदल मिश्र—जिन्होंने खड़ी बोली में गद्य साहित्य का पौदा लगाया।

मुंशी सदासुखलाल जी ने १८१८ ई० में श्री मद्भागवत का शुद्ध हिन्दी में सुखसागर नामक स्वतन्त्र अनुवाद किया। यह पुस्तक स्वान्तः सुखाय लिखी गई थी, किसी की प्रेरणा से नहीं। इस की भाषा शिष्ट हिन्दुओं की संस्कृत मिश्रित खड़ी बोली थी, भाषा का स्वरूप नीचे दिये गए उद्धरण में देखिये—

सुखसागर (सन् १८१८ ई०)

"इससे जाना गया कि संस्कार का भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष चंडाल से ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरन्त ही ब्राह्मण से चांडाल होता है। यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक

कहेंगे, हमें इस बात का डर नहीं। जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिए, कोई बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका (जो) सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइ और फुसलाइ और सत्य छिपाइए, व्यभिचार कीजिए और सुरापान कीजिए और धन द्रव्य इक ठौर कीजिए और मन को जो तमोवृत्ति से भर रहा है, निर्मल न कीजिए। तोता है सो नारायण का नाम लेता है, परन्तु उसे ज्ञान तो नहीं है।"

इसी समय में सय्यद इन्शा अल्लाखां ने 'उदैभान चरित्र' अथवा 'रानी केतकी की कहानी' लिखकर खड़ी बोली के गद्य-साहित्य में एक ग्रन्थरत्न की वृद्धि की। इसकी भाषा ठेठ, चटकीली खड़ी बोली है। इसकी भाषाके विषय में वह स्वयं कहते हैं–

"एक दिन बैठे २ यह बात अपने ध्यान में चढ़ आई कि कोई कहानी ऐसी कहिये कि जिस में हिन्दुवी छुट और किसी बोली की पुटन मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप से खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उस के बीच न हो। अपने मिलने वालों में से एक कोई पढ़े लिखे, पुराने, घराने, बूढ़े घाग यह खटराग लाए, सिर हिलाकर मुंह बनाकर, नाक भौं चढ़ाकर, आंखें फिराकर लगे कहने 'यह बात होती दिखाई नहीं

देती, हिन्दुवीपन भी न निकले और भाखापन भी न होने जाए।'

सदल मिश्र भी फ़ोर्टविलियम कालेज में काम करते थे और इन्होंने भी कालेज के अधिकारियों की प्रेरणा से नासिकेतोपाख्यान लिखा। इसका तथा 'प्रेमसागर' दोनों का निर्माण काल लगभग एक ही था। परन्तु दोनों की शैली में बहुत अन्तर है। जहां प्रेम सागर में तुकबन्दी और ब्रजभाषा के अनेक रूप पाये जाते हैं, वहां 'नासिकेतोपाख्यान' में प्रायः व्यवहारोपयोगी खड़ी बोली ही प्रयुक्त की गई है। हां, यह अवश्य मानना पड़ेगा कि इस में भी ब्रजभाषा के कुछ रूप मिलते हैं, जैसे, सुनी, सोनन्ह के थंभ आदि और पूरबी बोली के शब्द तो स्थान स्थान पर विद्यमान हैं, जैसे इहां, मतारी, आदि।

भीतर-बाहर, उथल-पुथल, फूलो-फलो, पेहार-सोहार, आदि दोहरे शब्दों के प्रयोग करने की परिपाटी इन्होंने ही चलाई। इनकी भाषा मुहावरेदार है उसे देखकर ऐसा जान पड़ता है कि मिश्र जी ने गद्य शैली का निर्माण करने में पथ-प्रदर्शक का काम किया।

जटमल ने संवत १६८० में गोरा बादल की बात राजस्थानी पद्यों में लिखी थी। संवत १८८१ में किसी ने इसका अनुवाद खड़ी बोली में किया। इस अनुवाद गद्य का नमूना देखिये।

"गोरा बादल की कथा गुरु के बस, सरस्वती के मेहरबानगी से, पूरन भई। तिस वास्ते गुरु कूँ व सरस्वती कूँ नमस्कार

करता हूँ। ये कथा सोलः से असी के साल में फागुन सुदी पूनम के रोज बनाई। ये कथा में दो रस हे—वीर रस व सिंगार रस हे, सो कथा मोरछड़ो नाँव गांव का रहने वाला कवेसर। उस गांव के लोग भोहोत सुखी हे। आनंद होता है, कोई घर में फकीर दीखता नहीं।"

ऊपर जो कुछ बताया गया है, उससे ज्ञात होता है कि गद्य के लिये पहले राजस्थानी प्रयुक्त की जाती थी। उसके पीछे ब्रज भाषा ने उसका स्थान ले लिया। यह भी देखा गया कि इस समय में भिन्न भिन्न मार्गों से हिन्दी गद्य का विस्तार हुआ—किसी ने धार्मिक कथा द्वारा तथा किसी ने प्रेम कहानी द्वारा इसका प्रचार किया। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने कर्मचारियों को देशी भाषाएं सिखलाने के निमित्त इस काम में सहयोग दिया और पादरियों ने धर्मप्रचार तथा शिक्षा-प्रसार के लिये गद्य साहित्य की वृद्धि की

उन्नति काल

राजा शिवप्रसाद [सं १८८०—१९५२, सन् १८२३—१८९५ ई०] के साथ हिंदी गद्य के "उन्नति" काल का आरंभ होता है। १८८८ ई० में सर चार्ल्स वुड ने देसी भाषाओं में ग्राम वासियों के शिक्षा देने की योजना बनाकर भेजी थी। यदि ठीक समय पर राजा साहब परिश्रम करके हिंदी में कुछ पाठ्य पुस्तकें तैयार न करते, तो हिंदी को उस योजना में स्थान न मिलता और यह इसके लिये बहुत हानिकारक होता।

पहले पहल राजा साहब ने "राजा भोज का सपना" और "मानव-धर्मसार" आदि कृतियों में बहुत मनोहर भाषा का प्रयोग किया, परंतु आगे चलकर ये उर्दू-मय हिंदी के पक्ष में हो गए।

सच तो यह है कि राजा साहब की कृतियों में ठेठ हिंदी, संस्कृत पूर्ण हिंदी और उर्दू पूर्ण हिंदी-तीनों प्रकार की भाषाएं मिलती हैं। उनके नमूने नीचे दिये जाते हैं :-

१. ठेठ हिन्दी :-

"वह कौन सा मनुष्य है, जिसने महाप्रतापी भोज का नाम न सुना हो, उसकी महिमा और कीर्ति सारे जगत् में व्याप रही है। बड़े बड़े महिपाल तो उसका नाम सुनते ही कांप उठते और बड़े बड़े भूपति उसके पांव पर अपना सिर नवाते। सेना उसकी समुद्र की तरंगों का नमूना और खज़ाना उसका सोने, चाँदी और रत्नों की खान से भी दूना। उसके दान ने राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया और उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया।

—राजा भोज का सपना

२. संस्कृत-पूर्ण शैली :-

"मनुस्मृति हिन्दुओं का मुख्य धर्म्म ग्रन्थ है। उसको कोई भी हिन्दू अप्रमाणिक नहीं कह सकता। वेद में लिखा है कि जो कुछ मनुजी ने कहा, उसे जीव के लिये ओषधि समझना और बृहस्पति लिखते हैं कि धर्म्म शास्त्राचार्यों में मनुजी सब से प्रधान और अति मान्य हैं, क्योंकि उन्होंने अपने धर्म शास्त्र में सम्पूर्ण वेदों का तात्पर्य लिखा है। खेद की बात है कि हमारे

देशवासी हिन्दू कहला के अपने मानव-धर्म-शास्त्र को न जानें और सारे कार्य उसके विरुद्ध करें।"

—मानव-धर्म-सार

१. उर्दू-पूर्ण हिन्दीः—

इस शैली का नमूना उनके चलाये हुए 'बनारस अखबार' नामक पत्र में तथा 'इतिहास तिमिर-नाशक' और 'भाषा का इतिहास' आदि बाद के लिखे हुए ग्रन्थों में मिलता है—

'यहां जो नया पाठशाला कप्तान किट साहब बाहदुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं के मदद से बनता है, उसका हाल कई दफ़ा ज़ाहिर हो चुका है। अब वह मकान एक आलीशान बनने का निशान तैयार हर चेहार तरफ़ से हो गया, बल्कि इसके नक़शे का बयान पहले मुंदर्ज है सो परमेश्वर की दया से साहब बहादुर ने बड़ी तंदेही मुस्तैदी से बहुत बेहतर और माकूल बनवाया है।"

—बनारस अखबार

उस समय की परिस्थिति का विचार करते हुए आप लिखते हैं—

"शुद्ध हिन्दी चाहने वाले को हम यह यक़ीन दिला सकते हैं कि जब तक कचहरी में फ़ारसी हरफ़ जारी हैं, इस देश में संस्कृत शब्दों के जारी करने की कोशिश बेफ़ायदा होगी।"

इनकी भाषा में अनुप्रासालंकार स्थान २ पर पाया जाता है और तुकबन्दी की भी कमी नहीं।

राजा लक्ष्मणसिंह (सं० १८८७-१९५६) ने हिन्दी का स्वत्व स्थापित करने का भरसक यत्न किया। यहां की संस्कृति को ध्यान में रखते हुए ठीक भी यही था। भाषा का रूप कैसा होना चाहिये—इस विषय में वे लिखते हैं—

"हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी २ हैं। हिन्दी इस देश के हिन्दू और उर्दू यहां के मुसलमानों और फ़ारसी पढ़े हुए हिन्दुओं की बोल चाल है। हिन्दी में संस्कृत के शब्द बहुत आते हैं और उर्दू में अरबी और फ़ारसी के। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि अरबी फ़ारसी शब्दों के बिना उर्दू न बोल जाय और न हम उस भाषा को हिन्दी कहते हैं जिसमें अरबी फ़ारसी के शब्द भरे हों।"

इनकी भाषा संस्कृत-गर्भित होती थी।

स्पष्ट है कि जहां राजा शिवप्रसाद हिन्दी को फ़ारसी-मय देखा चाहते थे, वहां राजा लक्ष्मणसिंह इसे संस्कृत मय बनाना चाहते थे। दोनों की शैलियां भिन्न थी, परन्तु अपने २ ढङ्ग से दोनों ने हिन्दी की सेवा की। पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय के शब्दों में 'यदि राजा शिवप्रसाद ने हिन्दी गद्य के अस्थिपंजरावशिष्ट शरीर में श्वास का आना जाना सुरक्षित रक्खा तो राजा लक्ष्मणसिंह ने उसके शरीर में अत्याधिक मात्रा में स्वास्थ्य का संचार किया और उसे नवजीवन दिया।

जिस समय संयुक्त प्रान्त में राजा शिवप्रसाद हिन्दी का हित कर रहे थे, उसी समय महाशय नवीन चन्द्रराय पंजाब में इसकी

सेवा कर रहे थे। इन्होंने कुछ पाठ्य पुस्तकें स्वयं लिखीं और कुछ दूसरे लेखकों से लिखवाईं। इनकी भाषा का परिचय कराने के लिए इनकी बनाई हुई पुस्तक "विधवा विवाह व्यवस्था" से एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

"विधवा विवाह शास्त्र सम्मत अथवा शास्त्र विरुद्ध कर्म है, इस विषय की मीमांसा में प्रवृत्त होना हो तो पहले यह निरूपण करना आवश्यक है कि वह शास्त्र कौन सा है जिसके सम्मत होने से विधवा विवाह कर्तव्य समझा जावे और जिसके विरुद्ध होने से अकर्तव्य समझा जावे। व्याकरण काव्य अलंकार दर्शन पभृति शास्त्र विषय के शास्त्र नहीं हैं।"

इसी समय स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४-१८८३ ई०) (सं० १८८१-१९४०) ने देश तथा जाति को उन्नत करने तथा पुरानी संस्कृत को पुनर्जीवित करने के लिये वैदिक मत का प्रचार किया। सं० १९ २ में उन ने आर्यसमाज की स्थापना की। गुजराती होते हुए भी उन्होंने हिन्दी में ग्रन्थ लिखे। उनके प्रभाव से देश भर में [illegible] ति पैदा हो गई। पंजाब पर इनका प्रभाव बहुत अधिक पड़ा। आर्यसमाज के आधीन जो स्कूल खुले, उन से हिन्दी को प्रधानता दी जाने लगी, संस्कृत के प्रेमी होने के कारण आर्यसमाज के लेखकों तथा प्रचारकों ने न केवल संस्कृत प्रधान हिन्दी ही को अपनाया, अपितु संस्कृत का भी यथासम्भव प्रचार किया।

भारतेन्दु युग (सं० १६२४–१६६०)

राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह और स्वामी दयानन्द सरस्वती समकालीन थे। इन तीनों की शैलियां अलग अलग थीं। इनके पीछे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र (सं० १६०७—४२, अथवा १८५०—१८८५ ई०) का साहित्य क्षेत्र में अवतरण हुआ इनसे पहले कुछ लेखकों ने संस्कृत-गर्भित भाषा को अपनाया और कुछ ने अरबी-फ़ारसी-प्रधान भाषा को। भारतेन्दु जी ने मध्यममार्ग का अनुसरण करते हुए हिन्दी को प्रचार तथा प्रसार के योग्य बनाया। इनकी भाषा सरल तथा व्यावहारिक है। साथ ही इसमें मुहाविरों का भी पर्याप्त पुट मिला रहता है—इस से उसमें अधिक सरसता आ गई है। इनके नाटकों का गद्य तो और भी बढ़िया है। उसकी भाषा इतनी उत्कृष्ट तथा सबल है कि उसे निःसंकोच टकसाली भाषा कहा जा सकता है। हिंदी को चलती तथा ठेठ भाषा बनाने के कारण ये हिन्दी गद्य के जन्म दाता माने जाते हैं।

भारतेन्दु जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। इन्होंने हिंदी साहित्य के अनेक रिक्त अङ्गो की पूर्ति स्वयं की तथा दूसरे लेखकों से कराई।

यहां यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि भारतेन्दु युग में कई एक पत्रिकाएं निकलीं। इन के द्वारा भी हिन्दी का बहुत प्रचार तथा लाभ हुआ। इनकी सहायता से हिन्दी को साहित्यिक तथा परिष्कृत रूप मिल गया।

यह समय हिन्दी की उन्नति का था। इसमें हिन्दी के प्रचार तथा उद्धार के लिये लेखकों का मैदान में आना स्वाभाविक था। ऐसे हिन्दी-प्रेमी महानुभावों में प्रमुख पं० प्रतापनारायण मिश्र तथा बालकृष्ण भट्ट थे।

पं० प्रताप नारायण मिश्र स्वतंत्र प्रकृति के थे। उनकी सभी बातों से स्वतंत्रता टपकती है, यहां तक कि उनकी भाषा में भी स्वतंत्रता का नाम अधिक है--उसमें भी वह मनमानी करते हैं। उनकी भाषा में कहावतों तथा मुहाविरों की मात्रा पर्याप्त होती है। उसमें प्रवाह है, लोच है। ऐसी भाषा लिखना टेढ़ी खीर है।

मिश्र जी के समकालीन पं० बालकृष्ण भट्ट भी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक थे। वे चाहते थे कि गद्य-साहित्य की दरिद्रता दूर करके इसे सुसंपन्न किया जाय। उन्होंने "हिन्दी प्रदीप" पत्र द्वारा ३२ वर्ष हिन्दी साहित्य की अनथक सेवा की। उनके लेखों में स्थान २ पर उनकी विद्वत्ता तथा साहित्यिकता का परिचय होता है।

भट्ट जी थे तो शुद्धिवादी, परन्तु इतने कट्टर नहीं। वे आवश्यकतानुसार उर्दू तथा अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करने में हिचकते न थे। वे लेखों में संस्कृत सूक्तियों का भी प्रयोग कर लेते थे। वे नये शब्दों के गढ़ने में भी सिद्धहस्त थे। सारांश यह है कि उन्होंने उच्च कोटि की भाषा प्रयुक्त करके हिन्दी गद्य को शुद्ध तथा परिमार्जित कर दिखाया।

बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने "आनन्द-कादंबिनी"

साहित्यिक पत्रिका निकाली। इनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता होती थी और अनुप्रास तथा तुकबंदी की मात्रा भी पर्याप्त रहती थी।

श्री निवासदास ने तीन नाटक तथा एक मौलिक उपन्यास लिखकर गद्य-साहित्य की वृद्धि की। इनके नाटकों से इनके बहु-भाषाज्ञान का परिचय होता है। इनकी भाषा मुहावरेदार तथा स्वाभाविक थी।

पं० अम्बिकादत्त जी व्यास काशी के रहने वाले थे। वे संस्कृत के अच्छे विद्वान तथा सनातन धर्म के स्तंभ थे, इनकी भाषा सबल और शैली तर्कयुक्त थी।

उपरोक्त हिन्दी-हितैषियों के अतिरिक्त कुछ पश्चिमी विद्वानों ने भी इसकी बहुत सेवा की। उनमें फ्रैडरिक पिनकाट तथा सर जार्ज ग्रियर्सन के नाम विशेषः उल्लेखनीय हैं। इन्होंने अनेक हिन्दी ग्रन्थों का संपादन किया। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में भी ग्रियर्सन साहब ने उच्चकोटि का काम किया।

हिन्दी गद्य के विकास में दो और घटनाएं स्मरण रखनी चाहिएँ—१. सं० १६५० में काशी नागरी प्रचारणी सभा की स्थापना, जिससे हिन्दी का प्रचार अधिकाधिक होने लगा।

२. सं० १६५७ में कचहरियों में नागरी का प्रवेश हुआ। इससे भी हिन्दी की प्रतिष्ठा अधिक हो गई।

राजस्थान में गद्य लिखने की परम्परा बहुत पुरानी है। रुक्कों तथा परवानों के विषय में पहले कहा गया है कि वह

राजस्थानी गद्य में थे। इनके पीछे जैन लेखकों ने कुछ गद्य ग्रन्थ लिखे। फिर जटमल नामक कवि ने राजस्थानी में "गोरा बादल री बात" लिखी। जटमल के पीछे दामोदरदास नामक दादूपन्थी साधु ने मार्कण्डेय पुराण का अनुवाद गद्य में किया। इसकी रचना-काल संवत १७१२ के लगभग बताया जाता है, तत्पश्चात् राजस्थानी गद्य साहित्य ख्यातों तथा बातों के रूप में मिलता है। इन ख्यातों में "जोधपुर रा राठोड़ां री ख्यात" तथा "बीकानेर रा राठोड़ां री ख्यात" प्रसिद्ध हैं। बात साहित्य के अन्तर्गत अनेक विषयों पर लिखी गई बातें हैं।

राजस्थानी में काव्य तथा गद्य-साहित्य तब तक बनते रहे, जब तक ब्रज तथा खड़ी बोली ने क्रमशः उसे पदच्युत न कर दिया।

भक्ति काल में गद्य तथा पद्य दोनों के लिये ब्रज ही उपयुक्त समझी जाती थी, इसलिये सगुण धारा की कृष्ण भक्ति शाखा से प्रभावित होकर जो साहित्य रचा गया, वह ब्रज में था। सूरदास, नन्ददास, कुंभनदास, गोस्वामी विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ आदि सबकी रचनाएं ब्रज में हैं। प्रारंभिक काल [सं० १९२४-६०]-में खड़ी बोली ने ब्रज को गद्य के क्षेत्र से बाहर निकाल स्वयं उसका स्थान ले लिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं० प्रताप-नारायण मिश्र, पंडित बालकृष्ण भट्ट आदि ने खड़ी बोली में गद्य की पुस्तकें लिखकर इसका प्रचार करने तथा इसे साहित्य के योग्य बनाने का यत्न किया। परन्तु फिर भी इस समय के गद्य में वे कमजोरियां पाई जाती हैं।

(क) शैली का रूप स्थिर नहीं हो सका।

(ख) भाषा इतनी परिमार्जित और सुसंस्कृत न थी।

इस समय में पद्य में ब्रज भाषा ही का बोल बाला रहा। आगे चलकर द्विवेदीकाल में [सं० १९६०-७५] अर्थात अगले पन्द्रह वर्षों में पद्य के लिये भी खड़ी बोली का सफलतापूर्वक उपयोग किया जाने लगा। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, बाबू मैथिली शरण गुप्त आदि ने खड़ी बोली में सुन्दर काव्यों की रचना करके इसे उत्तरी भारत की प्रमुख साहित्यक भाषा बनाने का यत्न किया।

साराँश

हिन्दी गद्य का जन्म तो बारहवीं शताब्दी में हो चुका था, क्योंकि महाराज पृथ्वीराज आदि के कुछ पत्र अथवा परवाने इसी समय के हैं, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि १२०० से १८०३ तक अर्थात् छः शताब्दियों में गद्य साहित्य की वृद्धि नहीं के बराबर है, केवल पांच छः ग्रन्थ लिखे गये और कुछ टीकायें तैयार की गईं। इनकी भाषा प्रायः ब्रज अथवा राजस्थानी होती थी।

१८०३ से १८८४ तक हिन्दी गद्य साहित्य का मध्यकाल समझा जाता है। कुछ विद्वानों ने इसके दो भाग करके पहले भाग को *विस्तार काल और दूसरे को उन्नतिकाल कहता है।

---

* विस्तार-काल में खड़ी बोली का मान बढ़ा और इसके कई कारण थे-खड़ी बोली हिंदुओं की बोल-चाल की भाषा तो थी ही, मुसलमान भी चिरकाल से इसी का रूपांतर उर्दू का व्यवहार

विस्तार-काल में मुंशी सदा सुखलाल, लल्लू लाल जी, पं० सदल मिश्र तथा सय्यद इन्शाअल्ला खां आदि हुए हैं। इन सब ने भिन्न भिन्न प्रकार की खड़ी बोली में ग्रन्थ लिखे। विलियम केरे [William Carey] तथा अन्य पादरियों ने विशुद्ध खड़ी बोली को अपनाया और इसी में इंजील का अनुवाद तथा अन्य पुस्तकों का निर्माण किया। ये सभी पुस्तकें शिक्षा अथवा धर्म प्रचार के निमित्त लिखी गईं।

परन्तु अभी तक गद्य भाषा विविध विषयों के उपयुक्त और भिन्न २ विचारों को प्रकट करने के योग्य न हुई थी। उन्नति काल में यह निबंध, नाटक, उपन्यास तथा समालोचना आदि अनेक विषयों के लिये व्यवहृत होने लगी। इस समय में राजा शिवप्रसाद, राजालक्ष्मण सिंह, स्वामी दयानन्द जी, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, प० प्रतापनारायण मिश्र, पं० गोविन्द नारायण मिश्र, पं० बद्री नारायण चौधरी "प्रेमघन" तथा बालकृष्ण जी भट्ट आदि प्रमुख लेखकों तथा सुधारकों ने हिंदी गद्य को उन्नत करने के लिये पूरा पूरा यत्न किया।

इसके पीछे द्विवेदी युग में भाषा से व्याकरण के दोषों को

कर रहे थे। अंग्रेजी ने भी उर्दू का कचहरी की भाषा बनाकर मानो खड़ी बोली ही का सत्कार किया। पादरियों ने भी जनता की भाषा ठेठ खड़ी बोली में ही प्रचार करना उचित समझा। इस प्रकार कई कारणों से खड़ी बोली गद्य के लिए उपयुक्त समझी गई तथा अपनाई गई।

दूर करने का यत्न किया गया। साथ ही लेखकों का ध्यान विविध प्रकार की साहित्य-रचना की ओर आकर्षित किया गया। फलतः आज हमें ठोस, गम्भीर तथा मौलिक साहित्य मिलने लगा है।

संग्रह

इस संग्रह में हिंदी-गद्य के आविर्भाव से लेकर भारतेंदु युग तक के जो गद्य-लेख रखे गए हैं, अब उन के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें बताई जाती हैं।

वैष्णव वार्ताएं

"दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता" में से कुछ वार्ताएं इस संग्रह में दी गई हैं। विष्णुभक्तों को चाहे आज भी ये वार्ताएं मुग्ध करती हों, परन्तु साहित्यिक दृष्टि से इनका अधिक मूल्य नहीं। न ही इन में विचारों की गंभीरता है और न ही कहने के ढंग में चमत्कार है। एक ही बात कई स्थानों पर दुहराई गई है जैसे:—"वे गोविंद दास ऐसे कृपापात्र हते।
तथा "सो वे छीतस्वामी ऐसे कृपापात्र हते" आदि।

इन वार्ताओं का लक्ष्य एक ही है—विष्णुभक्ति को दृढ़ करना इन का विषय एक ही है—भक्ति के अद्भुत फल दिखाना

इन वार्ताओं का महत्त्व इसलिए है कि इनके बिना भक्ति का तथा गद्य विकास दोनों का चित्र अधूरा रह जाएगा।

प्रेमसागर

इस संग्रह का लग भग आधा भाग इसी ग्रन्थ से लिया गया है पं० लल्लूलाल जी ने इसे सन १८१० ई० में लिखा। इस

भागवत पुराण के दशम स्कंध की कथा वर्णन की गई है, यह इसका अनुवाद नहीं हैं। भागवत पुराण निःसंदेह पौराणिक साहित्य का विख्यात-तम ग्रन्थ है। वैष्णव तो इसे बहुत ही पवित्र धर्मग्रन्थ समझते हैं। विष्णुभगवान् के असंख्य भक्तों के जीवन तथा विचारों पर आज भी इसका बहुत प्रभाव पड़ रहा है। यह पुराण बारह स्कंधों में विभक्त है। इन सब में दशम स्कंध बहुत ही लोक-प्रिय है, कारण इसमें कृष्ण भगवान् का जीवन विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। इसकी लोक-प्रियता का एक प्रमाण यह भी है कि इस स्कंध के भाषांतर प्रायः सभी प्रांतीय भाषाओं में पाए जाते हैं।

प्रेम-सागर खड़ी बोली में लिखा गया। भाषा यद्यपि ठेठ नहीं तो भी एक गुण इसमें अवश्य दीख पड़ता है—वह है विदेशी अर्थात् अरबी, फ़ारसी शब्दों का अभाव। यद्यपि प्रेम-सागर खड़ी बोली में रचा गया, तो भी ब्रज भाषा की छाप उस पर है ही, क्योंकि कृष्ण-चरित्र तथा ब्रज भाषा में घनिष्ठ संबंध है।

प्रेम-सागर को गद्यमय काव्य कहा जाय तो इसमें कुछ अनौचित्य न होगा। ऐसा होना स्वाभाविक था—लल्लू लालजी ठहरे कवि। अतः इनके गद्य तथा पद्य दोनों में रस है। गद्य में भी तुकांत विद्यमान है, अनुप्रास की छटा है, भक्ति-भाव सर्वत्र ओत-प्रोत है।

रानी केतकी की कहानी

यह इन्शा की प्रतिभा का अद्भुत फल है। एक देसी कहानी

है जो ठेठ हिन्दी में लिखी गई है। जिसमें अरबी फ़ारसी आदि विदेशी भाषाओं का एक शब्द भी नहीं आने पाया। कहानी भी मनोरंजक और लेखन शैली भी चित्ताकर्षक है। भाषा में प्रवाह है और उक्तियों में भावुकता भरी पड़ी है। कहानी क्या है—रस, सहृदयता तथा चंचलता की धारा है।

नासिकेतोपाख्यान

नासिकेतोपाख्यान पं० सदल मिश्र कृत संस्कृत ग्रंथ का अनुवाद है। 'नासिकेतोपाख्यान' ब्रह्मांड पुराण का एक भाग है और यह नचिकेता की कथा ही का रूपांतर है। नचिकेता की कथा "कठोपनिषद्" में भी वर्णन की गई है।

नासिकेतोपाख्यान की हिन्दी शुद्ध तथा सुव्यवस्थित नहीं। कहीं ब्रज भाषा के रूप पाये जाते हैं तो कहीं पूरबी के शब्द दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें कुछ ऐसे रूप तथा प्रयोग भी मिलते हैं जो खड़ी बोली के व्याकरण के अनुसार ठीक नहीं, जैसे—

'विनती किया'—खड़ी बोली में 'विनती की' होगी।

'झुठाने नहीं सकता'—इसके स्थान में 'झुठा नहीं सकता' होना चाहिए।

"बाजन लगे बाजने" में क्रमविपर्यय पाया जाता है। 'बाजन बाजने लगे'—ऐसा प्रयोग समीचीन होगा।

सोनन्ह, मोतिन्ह आदि में 'ह' का आगम भी इस हिन्दी की विशेषता है।

राजा भोज का सुपना

यह राजा शिवप्रसाद जी की लिखी एक कहानी है। यद्यपि राजा साहब आगे चलकर "आम फ़हम" और 'खास-पसन्द' भाषा के पक्ष-पाती हो गये, तथापि पहले इन्होंने सरल हिन्दी ही को अपनाया। "राजा भोज का सुपना", "वीरसिंह का वृत्तांत" "आलसियों का कोड़ा" आदि कहानियों की भाषा में वह उर्दूपन नहीं आया, जो उनकी पिछली किताबों में पाया जाता है।

राजा लक्षमण सिंह शुद्ध हिन्दी के पक्षपाती थे। उनका शकुंतुला नाटक सं० १९१९ में लिखा गया। इस की भाषा से फ्रेडरिक पिन्काट बहुत प्रसन्न हुए थे। और उन्हों ने इसका परिचय भी लिखा। शुद्ध हिन्दी गद्य का नमूना दिखाने के लिए शकुन्तला नाटक के चौथे अङ्क का वह भाग इस संग्रह में रखा गया है, जो सारे नाटक में श्रेष्ठ समझा जाता है।

स्वामी दयानंद जी के गद्य का नमूना सत्यार्थ-प्रकाश के दशम समुल्लास में से लिया गया है। इसका विषय है आचारानाचार-भक्ष्याभक्ष्य। सत्यार्थप्रकाश का निर्माण सं० १९३१ वि०में हुआ। जैसा पहले बताया जा चुका है, स्वामी जी की हिन्दी संस्कृत-मिश्रित है।

तत्पश्चात् भारतेन्दु जी के दो लेख रखे गए हैं। ये भारतेन्दु नाटकावली में से लिए गए हैं। इन में पहला "सत्य हरिश्चन्द्र" नाटक का उपक्रम है और दूसरा 'परिशिष्ट' से उद्धृत किया गया है।

श्री गुसाईं जी के सेवक छीत स्वामी चौवे तिनकी वार्ता

सो वे छीतस्वामी मथुरा में रहते हते और मथुराजी में पांच चौबे बड़ा गुंडा हते और ठगाई करते और छीत चौवे विन पांचन में मुख्य हतो। सो विननें विचार करयो जो कोई गोकुल में जाय है सो श्री विट्ठलनाथ जीके वस होय जाय है। जासूं ऐसो दीसे हैं जो श्री विट्ठलनाथ जी जादू टोना बहोत जाने हैं। परंतु हमारे ऊपर टोना चले तब सांची मानें ये विचार पांचौं चौवे ने करयो तब एक खोटो नारियल और खोटो रुपैया लेकैं पांचौं चौवे श्री गोकुल आये तब चार चौवे तो बाहेर बैठ रहे। और मुख्य जो छीत चौबे हतो बिनकुं भीतर पठायो। सो वे छीत चौवे न खोटो नारियल तथा खोटो रुपैया जाय के भेंट धरयो तब श्री गुसाईं जी ने स्ववास सूं आज्ञा करो। जो या रुपैया के पैसा ले आव। जब रुपैया के पैसा आए और नारियल फोड्यो तब सफेद गरी निकसी। तब छीतस्वामी देखि के मन में विचारी। जो ये तो साक्षात् ईश्वर हैं। जब छीत स्वामी नें कही जो महाराज मोकुं शरण लेओ। जब श्री गुसाईं जी ने छीतस्वामी कुं नाम सुनाःयो। पाछे श्री नवनीत प्रिया जी के दर्शन करवे कुं गये।

भीतर देखें तो गुसांईं जी बिराजे हैं और बाहेर आयके देखें तो बिराजे हैं। जब छीतस्वामी ने विचारी जो श्री गुसांईं जी की ईश्वरता जीव सा जानी नहीं जाय है। जब वे चार चोवे बाहेर बैठे हते तिनने छीतस्वामी कुं बुलाये। तब श्री गुसांईं जी ने आज्ञा करी जो तुमारे संगी बाहेर तुमकुं बुलावत है सो तुम जाओ। तब छीतस्वामी नें बाहर आयके चारों चौबान से कही मोकुं टोना लग गयो है तुम भाग जावो नहीं तो तुमको लग जायगो ये सुनके चारौं चौवे भाग गए छीतस्वामी नें एक पद करके गायो।

राग नट।

भई अब गिरिधर सों पहेचान।
कपट रूपधरि छलवे आयो पुरुषोत्तम नहि जान ।१।
छोटो बड़ो कछू नयि जान्यो छाय रह्यो अज्ञान।
छीतस्वामी देखत अपनायो
श्रीविट्ठल कृपा निधान। २।

ये पद सुनके श्री गुसांईं जी प्रसन्न भए। और छीतस्वामी कुं श्री गुसांईं जी नें निवेदन करवाये। तब छीतस्वामी कुं साक्षात् कोटिकंदर्प लावण्य पूर्णपुरुषोत्तम के दर्शन भये। और भगवल्लीला को अनुभव भयो और श्री गुसांईं जी तथा श्री ठाकुर जी के स्वरूप में अभेदनिश्चय भयो दोनों स्वरूप एक है ऐसे जानन लगे तब छीतस्वामी गोपालपुर श्रीनाथ जी के दर्शन कुं गये। वहां श्रीनाथजी के पास श्रीगुसाईं जी कूं देखे।

जब बाहेर निकस के पूंछी जो श्री गुसांई जी कब पधारये हैं। तब वहां के लोगन नें कही जो श्री गुसांई जी तो गोकुल विराजे है। तब छीतस्वामी वहां ते श्रीगोकुल में आयके श्रीगुसांई जी के दर्शन किए। जब छीतस्वामी ने ये निश्चय कियो जो श्री नाथ जी तथा श्रीगुसांई जी एक ही स्वरूप हैं। जब सूं छीत स्वामी जी ने "गिरिधरन श्रीविठ्ठल" ऐसी छाप के बहुत पद गाए सो वे छीत स्वामी ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते ॥ प्रसंग ॥ (१)
सो वे छीतस्वामी बीरबल के पुरोहित हते। सो ये बीरबल के पास बसौंधी लेवेकुं गए तब सवार के समें छीत स्वामी ने यह पद गाये:—

"जो बसुदेव किये पूरण तप सोई फल फलित श्री वल्लभ देह।"

ये पद सुन के बीरबल बोले जो मैं तो वैष्णव हूँ परन्तु ये बात देशाधिपति सुनेंगे तो तुम कहा जवाब देओगे। आज पीछे तेरो मुंख न देखूंगो ऐसे कहे के छीत स्वामी चले गए। ये बात देशाधिपति ने सुनी तब बीरबल सूं पूंछो जो तुमारे पुरोहित क्यों रिसाय गए। तब बीरबल ने सब बात देशाधिपति आगे कही। ब्राह्मण लोग वृथा रिस बहुत करे है। तब देशाधिपति ने कही जो तुम और हम नाव पे बैठे हते जब दीक्षित जी ने मोकुं आशीर्वाद दियो हतो तब मैंने मणी भेट करी हती वे मणी कैसी हती जो पांच तोला सोना नित्य देती हती सो वे मणी दीक्षित जी ने श्री यमुना जी में पटक दीनी। जब मेरे मन में बड़ो गुस्सा लग्यो तब मैंने मणी मांगी

तब दीक्षित जी ने श्री यमुनाजी में सुं खोच भरि के मांणु काढी तब हम कुं कहि तुम्हारी होय सो पहिचान लेओ। जब हम कुं ये निश्चय भयो ये साक्षात ईश्वर है ईश्वर बिना ऐसो कारज नहीं होयगो ये बात विचार करतें तुमारे पुरोहित की सब बात साची है सो तुमने क्यों विचार न कर्यो ये बात सुनके बीरबल बहुत खिसानों भयो। और काछू बोल्यो नहीं और ये बात श्री-गुसाईं जीने सुनी तब लाहोरके वैष्णव आये हते विनसों आज्ञा करी जो छीत स्वामी की खबर रखते रहियो जब छीत स्वामी बोले जो मैंने वैष्णवधर्म विक्रय करवे कुं लियौ नहीं है मेरे तो विश्रांत-घाट है सो आपकी कृपा सों सब चलेगो। ये बात सुनके श्री गुसाईंजी वहोत प्रसन्न भये ॥प्रसंग॥२॥औरएक दिन बीरबल देशाधिपति सों रजा लेके श्रीगोकुल में जन्माष्टमी के दरश कुं आयो पाछे भेष पलटाय के देशाधिपति हूँ छाने २ आयो। तब जन्माष्टमी के पालना के दर्शन करे। मनुष्यन की भीड़ में तव देशाधिपति कुं श्री गुसाईं जी बिना और कोई ने पहिचान्यो नहीं।

तब छीतस्वामी कीर्तन करते हते। और श्री गुसाईं जी श्रीनवनीतप्रियाजी कुं झुलावते हते। तब छीत स्वामी ने ये पद गायो।

प्रिय नवनीत पालने झूलें श्री विट्ठलनाथ झुलावे हो।
कबहुक आप संग मिल झूलें कबहुक उतर झुलावे हो॥
कबहुंक सुरंग खिलौना लै २ नाना भांति खिलावे हो।
चकई फिर कलीलेविंगीटु झुण २ हात बजावें हो॥
भोजन करत थाल एक भारी दोउ मिल खाव खवावें हो।

गुप्त महारस प्रकट जनावे प्रीति नई उपजावें हो।
धन्य भाग्य दास निज जन के जिन यह दर्शन पाएं हो।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल निगम एक कर गाएं हो।

ऐसे दर्शन छीत स्वामी कू भए। और देशाधिपति कूं हूं ऐसे दर्शन भए। और मनुष्य कूं साधारण दर्शन भए। तब देशाधिपति चले तब श्रीगुसांईंजी ने गुप्त रीति सूं देशाधिपति कूं महाप्रसाद दिवाए। तब देशाधिपति आगरे आए। फेर दूसरे दिन बीरबल हूं आए। तब देशाधिपति ने बीरबल सूं पूछी जो दर्शन किए तब बीरबलने कही श्रीनवनीतप्रिया जी पालना झूलने हते और श्रीगुसांईंजी झुलावते हते। तब देशाधिपति ने कही ये बात झूठी है। श्री गुसांईं जी पालना झूलते हते और श्रीनवनीतप्रियाजी झुलावते हते। मोकूं ऐसे दर्शन भये हैं। और छीतस्वामी तुमारे पुरोहित ऐसे कीर्तन गावते हते। और मैं तेरे पास ठाडो हतो। तब बीरबल ने कही मोकूं ऐसे दर्शन क्यों नहीं। तब देशाधिपति ने कही तुमकूं गुरु के स्वरूप को ज्ञान नहीं है। और तुमारे पुरोहित छीतस्वामी जिनकूं इन बात को अनुभव है एसेन सों तुमारी प्रीति नहीं है। जब तुमकूं ऐसे दर्शन काहे कूं होवे। सो वे छीतस्वामी एसे कृपापात्र हते।

श्री गुसांईं जी के सेवक चाचा हरिवंश जी तिनकी वार्ता

सो चाचा हरिवंश जी क्षत्री हते तिनकूं श्री गुसांईं जी ने आज्ञा करी। जो श्री नाथ जी को अभिप्राय पुष्टि मार्ग बढ़ यवे को है। जासू तुम परदेशन में जाय हमारी आज्ञा सूं सबको

नाम सुनावो और वैष्णव जो भेट काढ़े सो ले आवो तब चाचा हरिवंश जी गुजरात आये। सो राजनगर के पास असारवा गाम है। तहां भाईला कोठारी के घर में रहे। सो जहां ते भेट लगाय के खंभात में माल लेने के लिए गए। सो वहां गाम में पूंछी जो भले आदमी कौन हैं। तब माधवदास दलाल ने कही जो सहजपाल दोसी भले आदमी हैं। जब माधव दलाल के साथ सहजपाल दोसी के इहां जाय सब माल लियो सो उत्तम ते उत्तम वस्तु लीनीं। और जीवा पारिख के ऊपर की हुंडी लाए हते सो माधवदास दलालकूं दीनो और कही जो इनके मोल को दाम सब चुकाए के बचे सो नारायण सरपें हमारो डेरा है। तहां पहुंचाय दीजियो। जब माधवदास जी तो द्रव्य लेके विनके डेरा पर पहुंचावन गए। तब माधवदास ने विनको आचार क्रिया देखिके विस्मय भये। तब माधवदासजी ने विचार करयो जो ये कोई महापुरुष हैं। तब माधवदास ने कहा जो तुमारो धर्म महकूं सिखावो। तब चाचा जी ने विनकूं नाम सुनाये। जब माधवदास सब रीत भांति सीखिके सहेजपाल दोसी तथा जीवा पारिखसूं कहीं जो ये तो बड़े महत्पुरुष हैं। ये बात सुनके वे दोनों जने चाचाजी के पास नाम पाए। जब खंभात सूं वे तीनों जने चाचा जी के साथ श्री गोकुल आए। तब आयके श्री गुसाईं जी के पास निवेदन करवाए। तब श्री नाथ जी के दर्शन करि के बहुत प्रसन्न भए। सो वे चाचा जी ऐसे कृपापात्र हते।

प्रसंग। (१) फेर चाचाजी एक दिन गुजरात के परदेसकुं गए। सो रस्ता भूलि गए। सो भीलन के गाम में गए वहां कुंवा पर एक स्त्री जल भरत हती वा स्त्री ने विनके आचार विचार देखिके अपने घरकुं ले गई। और विनके पास नाम पायो और सब रीतभातसूं भोग धरिवे लगीं। चाचाजीने विनसूं पूछो जो तुमहारे घर के पुरुष कहां गए हैं। तब विनने कही जो चोरी करवे कुं गए हैं हमारो एही धन्धो है तब चाचा जीने कही जो ये धंधो आछो नहीं है। जब वह स्त्री ने बीनतो करी जो आप इहां रहिके विनकूं वैष्णव करिके फेर तुम जावो तब चाचा जी वहां रह गए तब वा बाई को बेटा गाम को मुखी हतो वा ने चाचाजी के दर्शन करतमात्र ही वाको चित लौकिक मेंसू निकस के प्रभुन के चरणारविन्द में लायो। सो सूरदास जी ने गायो है। सो पद

"जा दिन संत—पाहुने आवें।

तीरथ कोटी स्नान करन फल दर्शन ही तें पावें"।

जासूं या भील का मन झट फिर गयो।

तब आखो गाम वैष्णव भयो। जब चाचा जी विनकुं सब सेवा की रीति सिखाय के उहां से विदा भए। तब वे भील चोरी को धंधा छोड़िके खेती करवे लगे। जब रास्ता में चाचाजी कुं स्वप्न में श्रीनाथ जी ने आज्ञा करी। वे भाव अचार क्रिया आछी पाले है परन्तु भोग चाखके धरें हैं सो मोकूं नित्य भीलन की जूठन लेनी परे है जासु विनको तुम शिक्षा आछी तरह सूं दीजियो। जब चाचा जी फिर के वा गाम में आय दो महीना

रहे के सेवा की रीति और आचार धर्म सब पक्का करायो और सब रीति सिखाय के श्री गुसाईं जी की भेट लेके गऐ। सो वे चाचा जी ऐसे कृपापात्र हते।

प्रसंग (२) एक समें चाचा हरिवंश जी श्री गोकुल उज्जैनकुं चले सो रस्ता में क्षत्री वैष्णव के घर आए। वा क्षत्री वैष्णव ने चाचा जी के मुख से भगवद्वार्ता सुनके संसार में सूं आसक्ति काढ़ डारी। तब चाचा हरिवंशजी कुं वा वैष्णव ने कहि जो ये सर्वस्व श्री गुसाईं जी के पास ले जावो चाचा जी ने कही जो मैं उज्जैन कुं जायके जाऊंगी जब पाछे आय के ले जाऊंगो तब चाचा जी उज्जैन कुं आए कृष्ण भट्ट सूं बात करी तब कृष्ण भट्ट ने कही वे क्षत्री तो अनाचारी हैं तब चाचा जी ने कही जिनकी संसार में आसक्ति नहीं है तिनकों आचार विचार को कहा काम है। फेर चाचा जी वा क्षत्री वैष्णव के घर आये। तब वा वैष्णव ने सब द्रव्य श्री गुसाईंजीकी भेट करयो। जब चाचा जी तीन हजार रुपैया ले गये। और दो सौ रुपैया वा वैष्णव कुं जोर सूं दे गए व्यवहार चलाइवेकुं। वे चाचाजी ऐसे कृपापात्र हते जिनके संग सूं हजारों वैष्णव की संसार—आसक्ति छूट गई हती।

प्रसंग। (३) एक समें श्रीगुसाईंजी परदेश पधारे हते रस्ता में एक गाम आयो। वा गाम में वैष्णव कोई न हतो। तब श्रीगुसाईं जी ने कही चाचा जी ये रस्ता नहीं निकले होंगे।

सो चाचा जी ऐसे कृपापात्र हते। जो रस्ता निकसते और जिन लोगन सूं प्रसंग पड़तो तिनको मन श्रीप्रभुन में लगा देते।

प्रसंग । (४) और एक समें चाचा हरिवंश जी श्रीनाथ जी के लिये श्रीगोकुल में सु सामग्री लेवे को गये। सो सामग्री एक वैष्णव के माथे पधराय के श्रीगोकुल ते चले। तब यमुना जी के घाट पर आए तब नाव नहीं हती सांझ हो गई हती। जब चाचा जी ने विचार करयो जो सवारे छे घड़ी रात रहेगी तब ये सामग्री चाहियेगी और रात कुं सिद्ध भई चाहिये। और गोपालपुर तो दस कोस दूर है सो कैसे पाहोंचेगे। ये विचार के वा वैष्णव सों कही जो मैं यमुना जी के ऊपर चलूं हूँ जहां मैं पांव धरि के उठाऊं वा ठिकाणे तुम पांव धरत आईयो। तब चाचा हरिवंश जी श्री-यमुना जी के ऊपर चलवे लगे और भगवन्नाम लेवे लगे। जब वे वैष्णव पिछाड़ी भगवन्नाम लेत चल्यो। तब वा वैष्णव ने मन में विचार करयो जो चाचा जी भगवन्नाम लेते हैं। और मैं भगवन्नाम लेत हुं इनके पग ऊपर पग काहे को धरूं। जब दूसरे ठिकाणे पर धरवे लग्यो। तब यमुना जी में डूबवे लग्यो। तब चाचा जी ने आयके वाको हाथ पकर के पार ले गये। जब चाचा जी ने कही मैं जा ठिकाणे सूं पांव उठाव तुमने वही ठिकाणे

क्यों नहीं धरे। वा ने कही मैं भगवन्नाम लेत हु तुमहु भगवन्नाम लेतो हो। जब चाचा जी ने कही मेरी सुनि हैं तेरी अब सुनेंगे। सो वे चाचा जी ऐसे कृपापात्र हते जिनकी प्रभू ने सुनी हती।

प्रसंग। (५) एक दिन श्रीगुसांई जी सो चाचा जी सों भगवद्वार्ता करने लगे सों ऐसें रसावेश भये जो आधी रात चली गई। हाथ में से नीचे मारी धीर वे की सुध न रहि। और चाचाजी कु तो तीन दिन सुधि रसावेश रह्यो। वे ऐसे भगवद्रस के पात्र हते।

प्रसंग (६) एक दिन चाचा जी गिरिराज ऊपर गए। और शंखनाद की तैयारी हती। चाचा हरिवंश जी कु ऐसो अनुभव भयो की श्रीनाथ जी निर्भर निद्रा में हैं। तब शंखनाद होवे न दियो। सब भीतरिया ठाडे रहे। दो घड़ी पीछे श्रीगुसाईं जी पधारे। जब शंखनाद कराये तो हूँ श्रीनाथ जी जागे नहीं। तब सूरदासजी ने कीर्तन गायों। सो पद। "कौन पुरी नंदलालँ बान। प्रात समय जागन की बिरिया सोवत है पीतांबरतान।" ये पद सुन के श्रीनाथ जी जागे। जो चाचा जी ऐसे कृपा पात्र हते। जिनकी मान श्री गुसांई जी राखते। और जिनकू श्रीठाकुर जी की कृती की सब सुध रहेती।

प्रसंग। (७) एक दिन श्रीगुसांईं जी शय्या मन्दिर में पधारतें हते। जब श्रीनाथ जी श्रीगुसाईं जी की आड़ि देखवे लगे। तब चाचा जी ने श्रीगुसाईं जी सों बीनति करी जो श्रीनाथ जी तो आपकी ओर चितवें हैं।

और आप भीतर कैसे पधारते हो। तब श्रीगुसांईं जी आज्ञा करी जो श्रीनाथ जी तो बालक है। परन्तु सेवा तो करी चाहिए। जब श्रीगुसांईं जी सेवा करवे को पधारे। सो वे चाचा जी ऐसे कृपापात्र हते। जिनकुं श्रीनाथजी की घड़ी२ की खबर पड़ती हती।

प्रसंग। (८) और एक दिन चाचा जी कुं ठोकर लगी हती। जब दुखी होय बैठ रहे हते। तब रुक्मिणी बहूजी के आगे बात निकसी हती। श्रीगुसांईं जी ने कही जो सब वैष्णव हमारे अंग हैं। तब रुक्मिणी बहू जी ने कही चाचा जी कौन सो अंग हैं। तब श्रीगुसाईंजी ने आज्ञा करी जो हमारे नेत्र हैं। जो देखो चाचा जी दुखी हैं तो हमारे नेत्र दूखें हैं। सो वे ऐसे कृपापात्र हते।

प्रसंग (९) एक समें चाचा हरिवंश जी कुं आज्ञा करी जो तुम परदेश कुं जाओ। तब चाचा जी ने कही हमकुं तो आप के दर्शन विना रह्यो नहि जाय तब श्रीगुसाईं जी ने आज्ञा करी जहां तुम जाओगे तहां हम तुमकुं नित्य दर्शन देवेंगे। वाको कारण य हतो जो श्रीगुसांईं जी कुं आसुर व्यामोह लीला करनी हती तासूं चाचाजी ता समें ईहां होएने तो इनको देह न रहेगो। अब श्री गोकुलनाथ जी तथा श्रीरघुनाथ जी तथा यदुनाथ जी तथा घनश्याम जी इनकुं स्वमार्गीय ग्रंथन की परिपाटी कौन बतावेगो। श्री गिरिधर जी कुं तो सेवा में सों अवकाश नहीं है। ये विचार करके श्रीगुसांईं जी ने चाचा हरिवंश जी कुं परदेश बिदा किया तब चाचा हरिवंश जी गुजरात गए। ता पाछे

श्रीगुसांईं जी ने आतुर व्यामोह लीला दिखाई। जब चाचा जी ने गुजरात में ये बात सुनी तब तत्क्षण मूर्छित होय गए। जब श्रीरघुनाथ जी ने आय के चाचा जी सों कही। जो हाल तुमारो पृथ्वी ऊपर रहनों हैं मेरी ऐसी आज्ञा है जब चाचा जी ने अपनो देह राख्यो। तब चाचा जी व्रज में आय के सब बालकन के पास तें सुबोधिनी जी सुनवे के मिष करके पढ़ावते। कारण वे चाचाजी ज्ञाती के क्षत्री हते। सो ब्राह्मण कुलकुं कैसे पढ़ावे। जासूं सुनवे कि मिष तें सब बालकन कुं पढ़ाए। सो वे ऐसे कृपापात्र हते। जिनकुं श्री गुसांईं जी भाग की परिपाटी बतावे के लिए पृथ्वी पर छोड़ गये जैसे महाप्रभु जी दामोदरदास हरसानी कुं परिपाटी बतावें के लिए छोड़ गये हते याही ते श्रीगुसांईं जी ने शृंगार रसमंडन ग्रंथ में कह्यो है।

श्लोक

यस्मात्सहायभूतौ दामोदरदास हरिवंशौ।
विट्ठल रचितमिदं शृंगाररसमंडनं पूर्णम।१।

या श्लोक में ते ऐसो निश्चय होवे है। जो दामोदरदास जी तथा हरिवंश जी को अधिकार एक सरीखे है वे पृथ्वी ऊपर एक सो पचीस वर्ष के आसरे रहे हते। जिनकुं काल कछु बाधा कर सक्यो नहीं।

श्री गुसाईं जी के सेवक हरिदास की बेटी तिनकी वार्ता

जब वे पुरोहित हरिदास की बेटीकुं परनाय के सासरा में अरिगयो ॥ वाको नाम कृष्णाबाई हती सोवा कृष्णाबाई ने सासरा के घर को अनाचर देख के ये विचार कियो जो अन्नजल न लेनो और देहत्याग करनो । जासूं वानें तीन दिन सूवी अन्न जल लियो नहीं ॥ जब वाकी सास को स्वभाव दया युक्त बहुत हतो जासूं वाकुं दया आई ॥ जब वाकी सासूने कही बहू तूं क्यों खावें नाहीं है । जब वा कृष्णानें कही मैं मेरे हाथसूं करके लेऊं दूसरे के हाथ को जलहूं न लेऊं ॥ जब वाकी सासूनें वाधों कही तूं तेरे हाथ से जल भर लाय के रसोई कर और बासन बहूनें कहे सो सब सासूनें मंगाय दीने । तब वा बहूनें रसोई करकें भोग धरयो और भोग सराय के एक पात्र अपनी कर लीनी और सब महाप्रसाद विनकुं हाय दीनो । सो महाप्रसाद

होतमात्र ही विनकी बुद्धि निर्मल भई। जब वे घर में वा कृष्णा की सराहना करवे लगे। और वे कृष्णा गाम बाहेर कुवा हतो जहां नित्य जल भरनेकु' जाती हती। वा कुवा पर एक वैष्णव विनकुं मिल्यो। जब वासू हरिदास जी की पहेचान काढी। तब वैष्णव नित्य कुवा पर वा बाई को भगवत्स्मरण करते। वे कृष्णा विनसों भगवत्स्मरण करे बिना प्रसाद न लेती और जा दिन वे कुवा पर न मिलते जब विनके घर जायके भगवत्स्मरण कर आवती। काहेतें जो श्रीमहाप्रभुजीनें आज्ञा करी है नवरत्न ग्रंथमें॥ "निवेदनंतु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः"॥ यातें नित्य भगवत्स्मरण करे विना प्रसाद लेती न हती। एक दिन वे वैष्णव कोई गाम गए हते सो तीन दिनमें आये। जब वा कृष्णानें तीन दिन सुधी प्रसाद न लियो हतो। जब वा कृष्णाकुं सासूनें कही तूं प्रसाद की पातर नित्य क्यों गायकुं देवे है। और लेत क्यों नहीं हैं। तब वा कृष्णानें कही एक मेरो गुरुभाई नित्य कुवा पर मोकुं मिले हैं। और जब न मिले तब वाके घर जायके भगवत्स्मरण कर आवुं हूँ। सो अब तीन दिन भये मिले नहि तासूं महा-प्रसाद न लियो। सो वे सासू वाको साच देखके वहोत प्रसन्न भई। और कहेवे लगी मैं तेरे संग चलुं मोकुं वा वैष्णव को

श्री गुसाईं जी के सेवक हरिदास की बेटी तिनकी वार्ता

जब वे पुरोहित हरिदास की बेटीकुं परनाय के सासरा में धरिगयो ॥ वाको नाम कृष्णाबाई हती सोवा कृष्णाबाई ने सासरा के घर को अनाचर देख के ये विचार कियो जो अन्नजल न लेनो और देहत्याग करनो । जासूं वानें तीन दिन सूधी अन्न जल लियो नहीं ॥ जब वाकी सास को स्वभाव दया युक्त बहुत हतो जासूं वाकुं दया आई ॥ जब वाकी सासूने कही बहू तूं क्यों खावें नाहीं हें । जब वा कृष्णानें कही मैं मेरे हाथसूं करके लेऊं दूसरे के हाथ को जलहूँ न लेऊं ॥ जब वाकी सासूनें वासों कही तूं तेरे हाथ से जल भर लाय के रसोई कर और बासन बहूनें कहे सो सब सासूनें मंगाय दीने । तब वा बहूनें रसोई करके भोग धरयो और भोग सराय के एक पात्र अपनी कर लीनो और सब महाप्रसाद विनकुं हटाय दीनो । सो महाप्रसाद

लेतमात्र ही विनकी बुद्धि निर्मल भई। जब वे घर में या कृष्णा की सराहना करवे लगे। और वे कृष्णा गाम बाहेर कुवा हतो जहां नित्य जल भरनेकुं जाती हती। वा कुवा पर एक वैष्णव विनकुं मिल्यो। जब वासू हरिदास जी की पहेचान काढी। तब वैष्णव नित्य कुवा पर वा बाई को भगवत्स्मरण करते। वे कृष्णा विनसों भगवत्स्मरण करे विना प्रसाद न लेती और जा दिन वे कुवा पर न मिलते जब विनके घर जायके भगवत्स्मरण कर आवती। काहेतें जो श्रीमहाप्रभुजीनें आज्ञा करी है नवरत्न ग्रंथमें॥ "निवेदनंतु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः"॥ यातें नित्य भगवत्स्मरण करे बिना प्रसाद लेती न हती। एक दिन वे वैष्णव कोई गाम गए हते सो तीन दिनमें आये। जब वा कृष्णानें तीन दिन सूधी प्रसाद न लियो हतो। जब वा कृष्णाकुं सासूनें कही तूं प्रसाद की पातर नित्य क्यों गायकुं देवे है। और लेत क्यों नहीं है। तब वा कृष्णानें कही एक मेरो गुरुभाई नित्य कुवा पर मोकुं मिले है। और जब न मिले तब वाके घर जायके भगवत्स्मरण कर आउं हूँ। सो अब तीन दिन भये मिले नहि जासूं महाप्रसाद न लियों। सो वे सासू वाको साच देखके बहोत प्रसन्न भई। और कहेवे लगी मैं तेरे संग चलुं मोकुं वा वैष्णव को

घर दिखावेगी। तब वा सासू को वा वैष्णव के घर ले गई। जब वे वैष्णव तीन दिन में फेर घर आयो हुतो जब वा कृष्णानें वा वैष्णवसों भगवत्स्मरण करयो। जब वाकी सासू वैष्णवकुं हाथ जोर के कहेवे लगी। जो ये तीन दिनसुं भूखी है। और तुम कृपाकरिके हमारे घर नित्य आयके याकुं भगवत्स्मरण कर जावो तो मैं तुमारो वड़ो उपकार मानुंगी। और कछु तुमारों संग सों मेरो आछो होयगो। जब वा वैष्णवने नित्य आयवे की हां कही। जबतें नित्य वाके घरजाय के भगवत्स्मरण करते। जबतें वा कृष्ण की सासू और सासरा और धणी और सब घर के वा वैष्णव कुं पहेचानवे लगे और वा वैष्णवकुं कहेवे लगे जो तुमारो धर्म हमकुं समभाओ और हम सब तुमारे शिष्य होएंगे जब वानें कहा हमारे धर्म में तो सब श्रीगुसांईजी के सेवक होवे हें। जब वाको सासूनें कहा जो वे श्रीगुसांईजी कहां रहें हें इहां कैसे पधारें सो तुम उपाय करो द्रव्य तो हमरे ईहां बहोत है। तुम कहो सो में खरचूंगी। जब वा वैष्णव नें पत्र लिखाय के कासिद पठायो। तब श्रीगुसांईजी उहां पधारे और वे सब सेवक भए और विनके संग सों सब गाम के वनियां हूँ वैष्णव

भए। सो वे हरिदास की बेटी श्री गुसांईं जी की एसी कृपापात्र हती जिनके संगसूं सब गाम में वैष्णव भए। प्रसंग (१) श्रीगुसांईं जी उहां ते द्वारका पधारे और एकदिन वा कृष्णा की सासूनें रसोई करी। जब वा कृष्णा कुं बड़ो ताप भयो जो अब मोसों भगवत्सेवा छूटी और रसोई करवे के समें श्रीठाकुर जी आयके मोकुं सिखावते और इच्छा आवती सो सामग्री करावते और बालभाव जनावते। सो वे सुख मोकूं तो न मिलेगो ये विचार के बहुत विप्रयोग करवे लगी। विनको ताप श्रीठाकुर जी सही न सके जब वाकी सासूकुं श्री ठाकुर जी ने स्वप्न में जताए जो मोकू कृष्णा के हाथ की रसोई बहुत आछी लगे है। जासूं तुम दूसरी सेवा करो। फेर दूसरेदिन वा कृष्णा कूं सासूने कही जो रसोई तुम करो मैं दूसरी सेवा करूंगी और श्रीगुसांईं जी कूं हूं श्री ठाकुर जी ने जताइ जो आप कृष्णाकुं भला भए करो जो रसोई की सेवा न छोड़े। तब श्री गुसांईं जी द्वारका सुं पाछे वा गाम में पधारे जब वे कृष्णा श्रीगुसांईं जी के दर्शन कुं आवती जासू रसोई की बहुत अबार जानके वाकी सासू रसोई करती। जब श्रीगुसांईं जी ने वां कृष्णा सों आज्ञा

घर दिखावेगी। तब वा सासू को वा वैष्णव के घर ले गई। जब वे वैष्णव तीन दिन में फेर घर आयो हुतो जब वा कृष्णानें वा वैष्णवसों भगवत्स्मरण करयो। जब वाकी सासू वैष्णवकुं हाथ जोर के कहेवे लगी। जो ये तीन दिनसुं भूखी है। और तुम कृपाकरिके हमारे घर नित्य आयके याकुं भगवत्स्मरण कर जावो तो मैं तुमारो बड़ो उपकार मानुंगी। और कछु तुमारों संग सों मेरो आछो होयगो। जब वा वैष्णवने नित्य आयवे की हां कही। जबतें नित्य वाके घरजाय के भगवत्स्मरण करते। जबते वा कृष्ण की सासू और सासरा और धणी और सब घर के वा वैष्णव कुं पहेचानवे लगे और वा वैष्णवकुं कहेवे लगे जो तुमारो धर्म हमकुं समझाओ और हम सब तुमारे शिष्य होएंगे जब वानें कहा हमारे धर्म में तो सब श्रीगुसांईजी के सेवक होवे हें। जब वाको सासूनें कहा जो वे श्रीगुसांईजी कहां रहें हें इहां कैसे पधारें सो तुम उपाय करो द्रव्य तो हमरे ईहां बहोत है। तुम कहो सो मैं खरचूंगी। जब वा वैष्णव नें पत्र लिखाय के कासिद पठायो। तब श्रीगुसांईजी उहां पधारे और वे सब सेवक भए और विनके संग सों सब गाम के वनियां हूँ वैष्णव

भए। सो वे हरिदास की वेटी श्री गुसांईं जी की एसी कृपापात्र हती जिनके संगसूं सब गाम में वैष्णव भए। प्रसंग (१) श्रीगुसांईं जी वहां ते द्वारका पधारे और एकदिन वा कृष्णा की सासूनें रसोई करी। अब वा कृष्णा कुं बड़ो ताप भयो जो अब मोसों भगवत्सेवा छूटी और रसोई करवे के समें श्रीठाकुर जी आयके मोकुं सिखावते और इच्छा आवती सो सामग्री करावते और बालभाव जनावते। सो वे सुख मोकूं तो न मिलेगो ये विचार के बहुत विप्रयोग करवे लगी। विनको ताप श्रीठाकुर जी सही न सके जब वाकी सासू कुं श्री ठाकुर जी ने स्वप्न में जताए जो मोकू कृष्णा के हाथ की रसोई बहुत आछी लगे है। आसूं तुम दूसरी सेवा करो। फेर दूसरेदिन वा कृष्णा कूं सासूने कही जो रसोई तुम करो मैं दूसरी सवा करूंगी और श्रीगुसांईं जी कूं हूँ श्री ठाकुर जी ने जताइ जो आप कृष्णाकुं भला भए करो जो रसोई की सेवा न छोड़े। तब श्री गुसांईं जी द्वारका सुं पाछे वा गाम में पधारे जब वे कृष्णा श्रीगुसांईं जी के दर्शन कुं आवती जासू रसोई की बहुत अवार जानके वाकी सासू रसोई करती। जब श्रीगुसांईं जी ने वा कृष्णा सों आज्ञा

करी जो तेरे हाथ की रसोई श्री ठाकुरजी कुं भावे है जासूं तुम श्रीठाकुर जी सों पहुंच के हमारे दर्शन कुं आइयो। श्रीप्रभुन कुं भ्रम होय ऐसो करणो नहीं ये दासको मुख्य धर्म है। जा दिन तें कृष्णाबाई रसोई की सेवा विशेष करके आपही करती सो वे कृष्णाबाई ऐसी कृपापात्र हती।

श्री गोसाईं जी के सेवक दोऊ भाई साचोरा तिनकी वार्ता

सो वे दोंउ भाई साचोरा गुजरात में रहते हते। एक समय श्रीगुसांईजी गुजरात पधारे॥ तब दोउ भाइनकुं नाम निवेदन कराए तब वे दोंनों भाई श्रीठाकुर जी की सेवा करन लगे और दिवसरात्र भगवद्वार्ता करते और श्रीसुबोधिनी जी वांचते और कछू धंदा नहीं करते भगवदिच्छासुं निर्वाह करते। एकदिन वैष्णव-वन को साथ श्रीगोकुल जातो हतो तब वा गाम में वा साचोरान के घर में जाय के उतरे बिन के घर कछु हतो नहीं जब बिन दोनों भाइनने बिचार कर्यो जोये वैष्णव आये हैं सो हमारे घरतें प्रसाद लीये विना न जाय तो ठीक तब विननें ऐसों विचार कर्यो जो अमुक बनिया की दुकान अपने परोस में हैं और वो आपनो मित्र है वाकी दुकान खोल के जितनी सामग्री चहिए इतनी काढ लेवें फेर ये बनिया आवेगो जब दाम चुकाय देवेंगे ऐसे बिचार के रातकुं वाकी दुकान खोली और जे सामग्री जितनी

चहीती हती इतनी तोल के लीनी तब बडो भाई सामग्री लेके घर आयो और छोटो भाई दुकान बन्द करवेकुं रह्यो जब सरकार के मनुष्यन नें वाकुं चोर जान के पकर्यो फेर छोटे भाई नें बड़े भाईकुंखबर दीनीजो तुम रसोई करके वैष्णवनकुंप्रसादलेवाइओ और मैं राजसूं निवट के काल आवुंगो ये वात वा साचोराके परोसीननें जानी विनने राज्य में जाय के कही में इनके परोस में रहूँ हूँ ये नित्य बहोत चोरी करके घरमें लावेंहें और लोगनकुं लुट लावें हें और सब जगा में डाको पाडे हें ऐसे झूठी वातें बनाय के सरकार के मनुष्यनकुं समझायो याकुं मार डारो तो बहुत आछो तब सरकार के मनुष्यननें वा परोसी की वात सांची मान के वाकुं मार डार्यो और गाम के दरवाजा पर वाको माथो टांग दियो और वृक्षसों वाको धड़ बांध दियो और गाम में जाहेर कर्यो जे कोई मनुष्य चोरी करेगो वाके ये हाल होवेंगे और वाको बडो भाई घर में न्हाय के रसोई कर के भोग धर के वैष्णवनकुं प्रसाद लिवाये ॥ विन वैष्णवनकुं जावेकी उतावली हती सो दो पातर घर में करधरी एक अपनी और भाई की जब भाई आवेगो तब प्रसाद लेउंगो ऐसे विचार के दो पातर ढांक के विन वैष्णवनकुं पहोंचावे गयो गाम के दरवाजा पर देखे भाई को धड़ और माथो टांग्यो है ॥ देख के बहुत उदास भयो और सेवा में न्हायो हतो छोटो भाई मार्यो गयो ऐसी खबर बडो भाईकुं पेहेले पडी हती

जब दरवाजा पर देखके रोवे लग्यो और वोधड हतो सो हाथ जोड़ के वैष्णनकुं जय श्रीकृष्ण करन लग्यो सो वैष्णव देखके बहुत चकित भये और वाको धड़ छोड़ के और शीश छोड़के धड़ के ऊपर मिलाय दियो और श्रीनाथ जी को प्रसादी वस्त्र हतो सो वाके गला में वांध दियो और चरणामृत वाके मुख में मेल्योसो वैष्णवनकी कृपातें छोटो भाई जीवतो भयो और उठके वैष्णवन्कु दंडवत करन लग्यो और वैष्णवनकुं वीनती करा आज को दिन कृपा करके इयां रहो इतने में वा राजा के मनुष्यननें राजाकु खवर करी जो वा ब्राह्मणकुं आज सवारे मरायो हतो सो वैष्णवननें जीवतो कर्यो तब वे राजा सुन के बहोत डर्प्ये आय के वैष्णवन के पांवन पर्यो और वीनती करी मेरे अपराध क्षमा करो और मोकुं तुमारो दास करौ और जैसे वने तैसे मोकुं शरण लेऊ फेर वा राजा नें वा साचोरा दोनो भाईन के परोसीकुं पकड़ाय के मार डारवे कों हुक्म कर्यो तव वैष्णवननें छोडायो फेर राजा नें कही ये 'वैष्णव-द्रोही और धर्म-द्रोही मेरे गाम में नहीं चाहिए राजा नें वाकुं देश मेंसुं बाहेर काढ्यो और वाको घर लूट लियो फेर राजा विन वैष्णवन के संग श्री गोकुल गयो और वैष्णव भयो सो वे दोनो भाई साचोरा ऐसे कृपापात्र हते जिन की चित्त की वृत्ति दिवस-रात्र श्री गुसांईं जी के चरणारविन्द में और वैष्णवन की

सेवा में रहेती हती ॥ फेर वा राजानें दोनों भाई साचोरानकुं आजीविका कर दीनी सो वे दोउ भाई साचोरा ऐसे कृपा पात्र भगवदीय हते ॥ वार्ता सम्पूर्ण ॥ वैष्णव ॥ ७४ ॥

लल्लूलाल

(सं० १८२०—१८८२ वि०)

लल्लूलालजी गुजराती ब्राह्मण थे। इनके पिता पं० चैनसुख थे जो आगरा ज़िले के निवासी थे। लल्लूलाल जी के तीन भाई थे—दयाल, मोतीराम तथा चुन्नीलाल। ये निर्धन थे। प्रारम्भिक जीवन कुछ कष्टमय था। यह उर्दू तथा ब्रजभाषा के अच्छे जानकार थे। संस्कृत का भी इन्हें साधारण ज्ञान था।

ये कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज में जान गिलक्राइस्टकी अध्यक्षतामें अध्यापकका काम करते थे और उन्हीं की प्रेरणा से इन्होंने भागवतके दशम स्कन्धका प्रेमसागर नामक हिन्दी अनुवाद किया। उसी संस्था में २४ वर्ष काम करके यह पेंशन पाकर अपने देश को चले गये।

इनके यहां संतान न थी। हां, इनके और भाइयों के लड़के-बच्चे थे।

लल्लूलाल जी ने १०-१२ पुस्तकें लिखीं। उनमें से अधिक अनुवाद ही हैं। उन्होंने खड़ी बोली में गद्य लिखा इसीलिए यह हिंदी-गद्य के जन्मदाता माने जाते हैं। इनकी मुख्य कृतियां ये हैं:—

१. सिंहासन बत्तीसी।

२. बैताल पच्चीसी——शिवदासकृत "वैताल—पंचविंश-तिका" का अनुवाद ।

३. शकुन्तला नाटक—कालिदास के नाटक का अनुवाद ।

४. माधोनल———"माधवानल-कामकंदला" की प्रसिद्ध संस्कृत कथा का अनुवाद है ।

५. प्रेमसागर—यह पहले पहल १८१० ई० में छपा था ।

इनमें पहले चार ग्रन्थों की भाषा उर्दू है, परन्तु प्रेमसागर की भाषा शुद्ध हिन्दी है । हां, इसकी खड़ी बोली में ब्रज-भाषा का पुट अवश्य विद्यमान है । इसके गद्य में तुकबंदी के कारण पद्य का रंग दिखाई देता है । अनुप्रास स्थान २ पर पाया जाता है । ऐसी शैली कथा के लिए भले ही उपयुक्त हो, साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं समझी जा सकती, क्योंकि वह स्वभाविक न रहकर बनावटी हो गई है ।

प्रेमसागर

१

उपोद्घात

महाभारत के अंतमें जब श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हुए तब पांडव तो महा दुखी हो हस्तिनापुर का राज परीक्षित को दे हिमालय गलने गये और राजा परीक्षित सब देश जीत धर्मराज करने लगे । कितने एकदिन पीछे एक दिन राजा परीक्षित आखेट को गये

तो वहां देखा कि एक गाय और बैल दौड़े चले आते हैं, तिनके पीछे मूसल हाथ लिए, एक शूद्र मारता आता है। जब वे पास पहुंचे तब राजाने शूद्रको बुलाय दुखपाय झुंझलायकर कहा-अरे तू कौन है,अपना बखान कर,जो मारता है गाय और बैलको जान कर। क्या अर्जुनको तै ने दूर गया जाना तिससे उसका धर्म नहीं पहचाना। सुन,पंडु के कुलमें ऐसा किसीको न पावेगा कि जिसके सोंही किसा दीन को सतावेगा इतना कह राजा ने खड्ग हाथ में लिया। वह देख डर खड़ा हुआ, फिर नरपतिने गाय और बैल को भी निकट बुला के पूछा कि तुम कौन हो, मुझे बुझाकर कहो देवता हो कै ब्राह्मण और किस लिए भागे जाते हो,यह निधड़क कहो, मेरे रहते किसी की इतनी सामर्थ नहीं जो तुम्हें दुख दे।

इतनी बात सुनो तब तो बैल सिर झुका बोला—महाराज यह पापरूप काले वरन डरावनी मूरत जो आपके सनमुख खड़ा है सो कलयुग है, इसी के आने से मैं भागा जाता हूँ। यह गाय स्वरूप पिरथी है सो भी इसी के डर से भाग चली है। मेरा नाम है धर्म, चार पांव रखता हूँ—तप, सत, दया और सोच। सतयुग में मेरे चरन बीस बिस्वे थे, त्रेता में सोलह, द्वापरमें बारह,अब कलयुग में चार बिस्वे रहे इसलिये कलिके बीच मैं चल नहीं सकता, धरत बोली-धर्मावतार मुझ से भी इस युग में रहा नहीं जाता क्योंकि शूद्र राजा हो अधिक अधर्म मेरे पर करेंगे तिनका बोझ मैं न सह सकूंगी इस भय से मैंभी भागती हूँ,यह सुनते ही राजाने क्रोधकर

कलियुग से कहा— मैं तुझे अभी मारता हूँ। वह घबरा राजा के चरनों पै गिर गिड़गिड़ाकर कहने लगा-पृथ्वीनाथ, अब तो मैं तुम्हारी शरन आया, मुझे कहीं रहने को ठौर बताइये, क्योंकि तीन काल और चारों युग जो ब्रह्मा ने बनाये हैं सो किसी भांति मेटे न मिटेंगे—इतना वचन सुनते ही राजा परीक्षित ने कलियुग से कहा कि तुम इतनी ठौर रहो—जुए, झूठ, मद की हाट, वेश्या के घर, हत्या, चोरी और सोनेमें। यह सुन कलिने तो अपने स्थान को प्रस्थान किया और राजा ने धर्म को मनमें रख लिया। पिरथी अपने रूप में मिल गई। राजा फिर नगर में आये और धर्मराज करने लगे।

कितने एकदिन बीते राजा फिर एक समै आखेटको गए और खेलते २ प्यासे भए, सिर के मुकुट में तो कलियुग रहता ही था, तिसने अपना औसर पा राजा को अज्ञान किया, राजा प्यास के मारे कहां आते हैं कि जहां लोमस ऋषि आसन मारे नैन मूंदे हरि का ध्यान लगाए तप कर रहे थे, तिन्हें देख परीक्षित मन में कहने लगा कि यह अपने तप के घमंड से मुझे देख आंख मूंद रहा है, ऐसी कुमति ठानि एक मरा सांप वहां पड़ा था सो धनुषसे उठा ऋषि के गलेमें डाल अपने घर आया, मुकुट उतारते ही राजाको ज्ञान हुआ तो सोचकर कहने लगा कि कंचनमें कलियुगका वास है यह मेरे सीस पर था इसीसे मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरासर्प ले ऋषि के गले में डाल दिया, सो मैं अब समझा कि कलियुगने मुझसे अपना पलटा लिया, इस महा पापसे मैं कैसे छूटूंगा बरन

धन जन स्त्री और राज, मेरा क्यों न गया सब आज, न जानूं किस जन्म में यह अधर्म जायगा जो मैंने ब्राह्मण को सताया है।

राजा परीक्षित तो यहां इस अथाह सोचसागर में डूब रहे थे और जहां लोमस ऋषि थे तहां कितने एक लड़के खेलते हुए जा निकले, मरा सांप उनके गले में देख अचम्भे रहे और घबराकर आपस में कहने लगे कि भाई कोई इनके पुत्र से जाके कहदे जो उपवन में कौशिकी नदीके तीर ऋषियों के बालकों में खेलता है। एक सुनते ही दौड़ा वहीं गया जहां शृंगी ऋषि छोकरों के साथ खेलता था—कहा बंधु तुम यहां क्या खेलते हो, कोई दुष्ट मरा हुआ काला नाग तुम्हारे पिता के कंठ में डाल गया है। सुनते ही शृंगी ऋषि के नयन लाल हो आए, दांत पीस २ लगा थर २ कांपने और क्रोधकर कहने कि कलियुग में राजा उपजे हैं अभिमानी, धन के मद से अन्धे होगए हैं दुखदानी।

अब मैं उसको दूहूँ श्राप, वही नीच पावेगा आप।

ऐसे कह शृंगी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल चुल्लू में ले, राजा परीक्षित को श्राप दिया कि यही सर्प सातवें दिन तुझे डसेगा।

इस भांति राजा को सराप दे अपने बाप के पास आ गले से सांप निकाल कहने लगा—हे पिता तुम अपनी देह सम्भालो, मैंने उसे श्राप दिया है जिसने आपके गले में मरा सर्प डाला था। यह वचन सुनते ही लोमस ऋषि ने चैतन्य हो नैन उघाड़ अपने

ज्ञान ध्यान से विचार कर कहा—अरे पुत्र तूने यह क्या किया, क्यों सराप राजा को दिया, जिसके राज में थे हम सुखी, कोई पशु पंछी भी न था दुखी, ऐसा धर्मराज था कि जिसमें सिंह गाय एक साथ रहते और आपस में कुछ न कहते। अरे पुत्र जिसके देश में हम बसे, क्या हुआ तिनके हँसे। मरा हुआ सांप डाला था उसे श्राप क्यों दिया।

तनक दोष पर ऐसा श्राप, तैंने किया बड़ा ही पाप।
कुछ विचार मन में नहीं किया, गुन छोड़ा औगुन ही लिया॥

साधु को चाहिए सील सुभाव से रहे, आप कुछ न कहे, और की सुन ले, सबका गुन ले २ औगुन तज दे। इतना कह लोमस ऋषि ने एक चेले को बुलाके कहा—तुम राजा परीक्षित को जाके जता दो जो तुम्हें शृंगी ऋषि ने श्राप दिया है भला लोग तो दोष देहींगे पर वह सुन सावधान तो हो। इतना वचन गुरू का मान चेला चला २ वहां आया जहां राजा बैठा सोच करता था। आते ही कहा—महाराज, तुम्हें शृंगी ऋषि ने यह श्राप दिया है कि सातवें दिन तक्षक डसेगा, अब तुम अपना कारज करो जिससे कर्म की फांसी से छूटो। सुनते ही राजा प्रसन्नता से खड़ा हो हाथ जोड़ कहने लगा कि मुझपर ऋषि ने बड़ी कृपा की जो श्राप दिया क्योंकि मैं माया मोह के अपार सोचसागर में पड़ा था सो निकाल बाहर किया। जब मुनि का शिष्य बिदा हुआ तब राजा ने आप तो वैराग लिया और जनमेजय को बुलाय राजपाट देकर कहा—बेटा, गौ ब्राह्मण की रक्षा कीजो और प्रजा को सुख दीजो।

इतनी कह आए रनवास, देखी नारी सबी उदास।

राजा को देखते ही रानियां पांओं पर गिर रो २ कहने लगीं—महाराज तुम्हारा वियोग हम अबला न सह सकेंगी, इससे तुम्हारे साथ जी दें तो भला। राजा बोले—सुनो, स्त्री को उचित है जिसमें अपने पति का धर्म रहे सो करे, उत्तम काज में बाधा न डाले।

इतना कह धन जन कुटुम्ब और राजकी माया तज निरमोही हो अपना जोग साधने को गंगाके तीरपर जा बैठा। इसको जिसने सुना वह हाय २ कर पछताय २ बिन रोये न रहा, और यह समाचार जब मुनियों ने सुना कि राजा परीक्षित शृंगी ऋषि के श्राप से मरने को गंगा तीर पर आ बैठा है तब व्यास, वशिष्ठ, भरद्वाज, कात्यायन, पराशर, नारद, विश्वमित्र, वामदेव, यमदग्नि आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि आए और आसन बिछाय पांत २ बैठ गये। अपने २ शास्त्र विचार २ अनेक २ भांति के धर्म राजा को सुनाने लगे, कि इतने में राजाकी श्रद्धा देख, पोथी कांख में लिए दिगम्बर भेष, श्रीशुकदेवजी भी आन पहुंचे। उनको देखते ही जितने मुनि थे सबके सब उठ खड़े हुए और राजा परीक्षित भी हाथ बांध खड़ा हो बिनती कर कहने लगा—कृपा निधान, मुझपर बड़ी दया की जो इस समै आपने मेरी सुध ली। इतनी बात कही तब शुकदेव मुनि भी बैठे तो राजा ऋषियों से कहने लगे कि महाराजो, शुकदेवजी व्यासजी के तो बेटे और पराशरजी के पोते तिनको देख तुम बड़े २ मुनीश होके उठे, सो तो उचित नहीं, इसका

कारन कहो, जो मेरे मन का संदेह जाय। तब परासर मुनि बोले-राजा, जितने हम बड़े २ ऋषि हैं पर ज्ञान में शुक से छोटे ही हैं इसलिए सबने शुक का आदर मान किया। किसीने इस आस पर कि ये तारन-तरन हैं क्योंकि जब से जन्म लिया है तब ही से उदासी हो बनवास करते हैं, औ राजा तेरा भी कोई बड़ा पुण्य उदै हुआ जो शुकदेवजी आए। ये सब धर्मों से उत्तम धर्म कहेंगे जिससे तू जन्म मरनसे छूट भवसागर पार होगा। यह वचन सुन राजा परीक्षित ने शुकदेवजी को दण्डवत कर पूछा—महाराज, मुझे धर्म समझाय के कहो, किस रीति से कर्म के फंदे से छूटूंगा, सात दिन में क्या करूंगा। अधर्म है अपार, कैसे भवसागर हूँगा पार।

श्रीशुकदेवजी बोले—राजा, तू थोड़े दिन मत समझ, मुक्ति तो होती है एकही घड़ी के ध्यानमें जैसे षट्वांगुल राजाको नारद मुनिने ज्ञान बताया था और उसने दो ही घड़ी में मुक्ति पाई थी, तुम्हें तो सात दिन बहुत हैं, जो एकचित हो करो ध्यान तो सब समझोगे अपने ही ज्ञान से कि क्या है देह किसका है वास, कौन करता है इसमें प्रकाश। यह सुन राजा ने हरष के पूछा—महाराज सब धर्मों से उत्तम धर्म कौन सा है, सो कृपा कर कहो। तब शुकदेवजी बोले-राजा जैसे सब धर्मोंमें वैष्णव धर्म बड़ा है तैसे पुरानों में श्रीभागवत। जहां हरिभक्त यह कथा सुनावें हैं तहां ही सब तीर्थ औ धर्म आवें हैं। जितने हैं पुरान पर नहीं हैं कोई भागवतके समान। इसकारन मैं तुझे बारह स्कन्धमहापुरान सुनाता

हूं जो व्यास मुनी ने मुझे पढ़ाया है, तू श्रद्धा समेत आनन्द से चित दे सुन। तब तो राजा परीछित प्रेम से सुनने लगे और शुकदेवजी नेम से सुनाने।

१

श्री कृष्ण–जन्म

श्री शुकदेवजी बोले–राजा, जिस समै श्रीकृष्णचन्द्र जन्म लेने लगे तिस काल सब ही के जी में ऐसा आनन्द उपजा कि दुख नाम को भी न रहा, हरष से लगे बन उपबन हरे हो २ फूलने फलने, नदी नाले सरोवर भरने, तिनपर भांति २ के पंछी कलोलें करने और नगर २ गांव २ घर २ मंगलाचार होने, ब्राह्मण यज्ञ रचने, दसों दिशा के दिगपाल हरषने, बादल ब्रजमंडल पर फिरने, देवता अपने २ विमानों में बैठे आकाशसे फूल बरसावने, विद्याधर गंधर्व, चारन, ढोल, दमामें, भेर बजाय २ गुन गाने। और एक ओर उर्वसी आदि सब अप्सरा नाच रही थीं कि ऐसे समै भादों बदी अष्टमी बुद्धवार रोहिनी नछत्र में आधी रात श्रीकृष्ण ने जन्म लिया और मेघ बरन, चन्दमुख, कमलनैन हो, पीताम्बर काछे, मुकुट धरे, बैजन्ती माल और रतनजटित आभूषन पहिरे, चतुर्भुज रूप किये, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये बसुदेव देवकी को दरसन दिया। देखते ही अचम्भे हो विन दोनों ने ज्ञानसे विचारा तो आदि पुरुष को जाना; तब हाथ जोड़ बिनती कर कहा, हमारे बड़े

भाग जो आपने दरसन दिया और जन्म-मरणका निबेड़ा किया।

इतना कह पहली कथा सब सुनाई, जैसे २ कंस ने दुख दिया था। तहां श्रीकृष्णचन्द्र बोले–तुम अब किसी बातकी चिन्ता मन में मत करो क्योंकि मैंने तुम्हारे दुखके दूर करने ही को औतार लिया है, पर इस समय मुझे गोकुल पहुंचा दो और इसी बिरियां जसोदा के लड़की हुई है सो कंस को ला दो। अपने जाने का कारन कहता हूं सो सुनो।

नन्द जसोदा तप कर्यो, मोहि सों मन लाय।
देख्यो चाहत बालसुख, रहौं कछू दिन जाय॥

फिर कंस को मार आन मिलूंगा, तुम अपने मन में धीर धरो। ऐसे बसुदेव देवकी को समझाय, श्रीकृष्ण बालक बन रोने लगे, और अपनी माया फैला दी, तब तो बसुदेव देवकी का ज्ञान गया औ जाना कि हमारे पुत्र भया। यह समझ दस सहस्र गाय मनमें संकल्प कर लड़के को गोद में उठा छाती से लगा लिया, उसका मुंह देख२ दोनों लम्बी सांसे भर२ आपस में कहने लगे जो किसी रीति से इस लड़के को भगा दीजे तो कंस पापी के हाथ से बचे।

बसुदेव बोले—

बिधना बिन राखे नाहिं कोई। कर्म लिखा सोही फल होई॥
तब कर जोर देवकी कहै। नन्द मित्र गोकुल में रहै॥
पीर जसोदा हरे हमारी। नारी रोहिनी तहां तिहारी॥

इस बालक को वहां ले जाओ। यों सुन बसुदेव अकुलाकर कहने लगे कि इस कठिन बंधन से छूट कैसे ले जाऊं। जो इतनी

बात कही तो सब बेड़ी हथकड़ी खुल पड़ीं, चारों ओर के किवाड़ उघड़ गए, पहरुए अचेत नींद बस भए, तबतो वसुदेव जी ने श्रीकृष्ण को सूप में रख सिर पर धर लिया और झटपट ही गोकुल को प्रस्थान किया।

ऊपर बरसे दैव, पीछे सिंह जु गुंजरै।
सोचत है वसुदेव, जमुना देखि प्रवाह अति॥

नदी के तीर खड़े हो वसुदेव विचारने लगे कि पीछे तो सिंह बोलता है औ आगे अथाह जमुना बह रही है, अब क्या करूं। ऐसे कह भगवान का ध्यान धर जमुना में पैठे। जों जों आगे जाते थे तों तों नदी बढ़ती थी। जब नाक तक पानी आया तब तो ये निपट घबराए। इनको व्याकुल जान श्रीकृष्ण ने अपना पांव बढ़ाय दिया। चरन छूते ही जमुना थाह हुई, वसुदेव पार हो नन्द की पौर पर जा पहुंचे। वहां किवाड़ खुले पाये, भीतर देखें तो सब सोये पड़े हैं। देवी ने ऐसी मोहनी डाली थी कि जसोदा को लड़की के होने की भी सुध न थी। वसुदेवजी ने कृष्ण को तो जसोदा के ढिग सुला दिया और कन्या को ले चट अपना पंथ लिया। नदी उतर फिर आए तहां, बैठी सोचती थी देवकी जहां। कन्या दे वहां की कुशल कही, सुनते ही देवकी प्रसन्न हो बोली—हे स्वामी, हमें कंस अब मार डाले तो भी कुछ चिंता नहीं क्योंकि इस दुष्ट के हाथ से पुत्र तो बचा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि जब वसुदेव लड़की को ले आये तब किवाड़ ज्यों के त्यों

भिड़ गये और दोनों ने हथकड़ियां-बेड़ियां पहर लीं। कन्या रो उठी, रोने की धुन सुन पहरुए जागे तो अपने अपने शस्त्र ले ले सावधान हो लगे तुपक छोड़ने। तिनका शब्द सुन लगे हाथी चिंघाड़ने, सिंह दहाड़ने और कुत्ते भौंकने। तिसी समय अंधेरी रातके बीच बरसते में एक रखवाले ने आ हाथ जोड़ कंससे कहा—महाराज, तुम्हारा बैरी उपजा। यह सुन कंस मूर्छित हो गिरा।

३

कंस के उपद्रव

बालक का जन्म सुनते ही कंस डरता कांपता उठ खड़ा हुआ और खड्ग हाथ में ले गिरता-पड़ता दौड़ा, छुटे बालों पसीने में धुकुड़ पुकुड़ करता जा बहन के पास पहुंचा। जब तिसके हाथ से लड़की छीन ली तब वह हाथ जोड़ बोली—ऐ भैया, यह कन्या है भानजी तेरी, इसे मत मार यह पेट पोंछन है मेरी। मारे हैं बालक तिनका दुख मुझे अति सताता है, बिन काज कन्या को मार क्यों पाप बढ़ाता है। कंस बोला—जीती लड़की न दूंगा तुझे, जो ब्याहेगा इसे सो मारेगा मुझे। इतना कह बाहर आ जोंहीं चाहे कि फिराय कर पत्थर पर पटकें, तोंहीं हाथ से छूट कन्या आकाश को गई और पुकार के यह कह गई—अरे कंस, मेरे पटकने से क्या हुआ, तेरा बैरी कहीं जन्म ले चुका, अब तू जीता न बचेगा।

यह सुन कंस अछता पछता वहां आया जहां बसुदेव देवकी थे, आते ही तिनके हाथ पांव की हथकड़ी बेड़ी काट दीं और

बिनती कर कहने लगा कि मैंने बड़ा पाप किया जो तुम्हारे पुत्र मारे, यह कलंक कैसे छूटेगा, किस जन्म में मेरी गति होगी, तुम्हारे देवता झूठे हुये, जिन्होंने कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ से लड़का होगा, सो न हो लड़की हुई। वह भी हाथ से छूट स्वर्ग को गई। अब दया कर मेरा दोष जी में मत रक्खो, क्योंकि कर्म का लिखा कोई मेट नहीं सकता। इस संसार में आए से जीना-मरना, संयोग-वियोग मनुष्य का नहीं छुटता। जो ज्ञानी हैं सो मरना जीना समान ही जानते हैं और अभिमानी मित्र शत्रु कर मानते हैं। तुम तो बड़े साध सतवादी हो जो हमारे हेतु अपने पुत्र ले आये।

ऐसे कह जब कंस बार बार हाथ जोड़ने लगा तब वसुदेव जी बोले—महाराज तुम सच कहते हो, इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं, विधना ने यही हमारे कर्म में लिखा था। यों सुन कंस प्रसन्न हो अति हित से वसुदेव देवकी को अपने घर ले आया, भोजन करवाय, वागे पहराय, बड़े आदर भाव से दोनों को फेर वहीं पहुँचाय दिया और मंत्री को बुलाके कहा कि देवी कह गई है कि तेरा वैरी जग में जन्मा, इससे अब देवताओं को जहां पावो तहँा मारो, क्योंकि विन्होंई ने मुझ से झूठी बात कही थी कि आठवें गर्भ से तेरा शत्रु होगा। मन्त्री बोला—महाराज, विनका मारना क्या बड़ी बात है, वे तो जन्मके भिखारी हैं, जब आप कोपियेगा तभी वे भाग जायेंगे। विनकी क्या सामर्थ है जो तुम्हारे सन्मुख हों। ब्रह्मा तो आठ पहर ध्यान ध्यान में रहता है, महादेव भांग धतूरा खाय, इन्द्र का छल तुम पर न

बसाय। रहा नारायन सो संग्राम नहीं जाने, लक्ष्मी के साथ रहता है सुख माने। कंस बोला—नारायन को कहां पावें और किस विधि जीतें सो कहो। मन्त्री ने कहा-महाराज, जो नारायन को जीता चाहते हो तो जिनके घर में आठ पहर है तिनका वास, तिनहां का अब करो विनास। ब्राह्मण, वैष्णव, जोगी, जती, तपसी, सन्यासी, वैरागी आदि जितने हरि के भक्त हैं तिनमें लड़के से ले बूढ़े तक एक भी जीता न रहै। यह सुन कंस ने प्रधान से कहा—तुम सबको जा मारो। आज्ञा पाकर मन्त्री अनेक राक्षस साथ ले विदा हो नगर में जा, लगा गौ, ब्राह्मण, बालक औ हरि भक्तों को छल बलकर ढूंढ़ ढूंढ़ मारने।

४

कृष्ण-जन्मोत्सव

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले—राजा, एक समै नन्द जसोदा ने पुत्र के लिये बड़ा तप किया, तहां श्रीनारायन ने आय वर दिया कि हम तुम्हारे यहां जन्म ले जायँगे। जब भादों बदी अष्टमी बुधवारको आधी रातके समय श्रीकृष्ण आये तब जसोदा ने जागते ही पुत्र का मुख देख नन्दको बुला अति आनन्द माना औ अपना जी तब सुफल जाना। भोर होते ही उठके नन्दजी ने पंडित औ जोतिषियों को बुला भेजा। वे अपनी २ पोथी पुत्रे ले ले आये। तिनको आसन दे दे आदर मान से बैठाए। तिन्होंने

शास्त्र की विधि से संवत् , महीना, तिथि, दिन, नक्षत्र, जोग, करन, ठहराय लगन विचार, मुहूर्त साध के कहा—महाराज, हमारे शास्त्र के बिचार में तो ऐसा आता है कि यह लड़का दूसरा विधाता हो, सब असुरों को मार ब्रज का भार उतार गोपीनाथ कहावेगा, सारा संसार इसी का जस गावेगा।

यह सुन नन्दजी ने कंचन के सींग, रूपे के खुर, तामे की पीठ समेत दो लाख गौ पाटम्बर उढ़ाय संकल्प कीं और अनेक प्रकार के दान कर, ब्राह्मणों को दच्छिना दे २ करके असीस ले २ बिदा किया। तब नगर की सब मङ्गलामुखियों को बुलवाया। वे भी आय २ अपना गुन प्रकाश करने लगीं, बजंत्री बजाने, नृत्यक नाचने, गायन गाने, ढाढी ढाढिन जस बखानने और जितने गोकुल के गोप ग्वाले थे वे भी अपनी २ नारियों के सिर पर दहेड़ियां लिवाये, भांति २ के भेष बनाये, नाचते गाते नन्द को बधाई देने आये। आते ही ऐसा दधिकादौं किया कि सारे गोकुल में दही ही दही कर दिया। जब दधिकादौं खेल चुके तब नंदजी ने सबको खिलाय पिलाय, बागे पहराय, तिलक कर पान दे बिदा किया।

इसी रीति से कई दिन तक बधाई रही। इस बीच नंदजी से जिसने जो २ आय मांगा सो २ पाया। बधाई से निश्चित हो नंदजी ने सब ग्वालों को बुला के कहा—भाइयो! हमने सुना है कि कंस बालक पकड़ मंगवाता है, न जानिये कोई दुष्ट कुछ बात लगाय दे इससे उचित है कि सब मिल भेंट ले चलें और

बरसोंढी दे आवें। यह बचन मान सब अपने घर से दूध, दही माखन और रुपये लै गाड़ियों में लाद लाद नन्द के साथ हो गोकुल से चल मथुरा आए। कंस से भेंट कर भेंट दी, कौड़ी २ कर चुकाय बिदा हो जुहार कर अपनी बाट ली।

ज्यों ही जमुना तीर पर आए त्यों ही समाचार सुन वसुदेव जी आ पहुंचे। नन्दजी से मिल कुशल क्षेम पूछने लगे—तुम सा सगा और मित्र हमारा संसार में कोई नहीं, क्योंकि जब हमें भारी विपत्त भई तब गर्भवती रोहिणी तुम्हारे यहां भेजदी उसके लड़का हुआ सो तुमने पालकर बड़ा किया हम तुम्हारे गुण कहां तक बखानें? इतना कह फिर पूछा कहो! रामकृष्ण और जसोदारानी आनन्द से हैं? नंदजी बोले-आपकी कृपा से सब भले हैं और हमारे जीवनमूल तुम्हारे बलदेवजी भी कुशल से हैं जिनके होते तुम्हारे पुण्य प्रताप से हमारे पुत्र हुआ पर एक तुम्हारे ही दुखसे हम दुःखित हैं। वसुदेव कहने लगे—मित्र! विधाता से कुछ न बसाय, कर्म की रेख किसी से मेटी न जाय, इससे संसार में आय दुःख पीर पाय कौन पछिताय, ऐसा ज्ञान जनाय के कहा—

तुम घर जावहु वेगहि अपने, कीन्हें कंस उपद्रव घने।
बालक ढूंढ मगावे नीच, हुई साधु पर जाकी मीच॥

तुम तो यहां सब चले आए हो और राक्षस ढूंढते फिरते हैं, न जानिये कोई दुष्ट जाय गोकुल में उपाधि मचावे। यह सुनते ही नंदजी अकुलाकर सबको साथ लिए सोचते विचारते मथुरा से गोकुल को चले।

श्री शुकदेवजी बोले-हे राजा, एक दिन वसुदेवजी ने गर्ग मुनिको जो बड़े जोतिषी औ यदुवंसियों के पुरोहित थ बुलाकर कहा कि तुम गोकुल जा लड़के का नाम रख आओ।

गई रोहनी गर्भ सों, भयो पुत है ताहि।
किती आयु कैसो भलो, कहा नाम ता आहि॥

और नन्दजी के पुत्र हुआ है सो भी तुम्हें चुनाय गये हैं। सुनते ही गर्ग मुनि प्रसन्न हो चले और गोकुल के निकट जा पहुंचे। तिसी समै किसी ने नन्दजी से आ कहा कि यदुबंसियों के पुरोहित गर्ग मुनीजी आते हैं। यह सुन नन्दजी आनंद से ग्वाल बाल संग कर भेट ले उठ धाए और पाटंबर के पांवड़े डालते बाजे गाजे से ले आए, पूजा कर आसन पर बैठाय चरणामृत ले स्त्री पुरुष हाथ जोड़ कहने लगे-महाराज, बड़े भाग हमारे जो आपने दयाकर दरशन दे घर पवित्र किया। तुम्हारे प्रतापसे दो पुत्र हुए हैं, एक रोहिनी के एक हमारे, कृपाकर तिन का नाम धरिये। गर्ग मुनि बोले-ऐसे नाम रखना उचित नहीं, क्योंकि जो यह बात फैले कि गर्ग मुनि गोकुल में लड़कों के नाम धरने गए हैं औ कंस सुन पावे तो वह यही जानेगा कि देवकी के पुत्रको वसुदेवके मित्र के यहां कोई पहुंचाय आया है इसी लिए गर्ग परोहित गया है।

यह समझ मुझे पकड़ मंगावेगा और न जानिये तुम पर भी क्या उपाव लावे। इससे तुम फैलाव कुछ मत करो, चुपचाप घर में नाम धरवा लो।

नन्द बोले—गर्गजी तुमने सच कहा। इतना कह घर के भीतर ले जाय बैठाया। तब गर्ग मुनि ने नन्दजी से दोनों की जन्मतिथि औ समै पूछ लगन साध, नाम ठहराय कहा—सुनो, नन्दजी, वसुदेव की नारि रोहिनी के पुत्रके तो इतने नाम होयंगे, संकर्षण, रेवतीरमन,बलदाऊ,बलराम, कालिंदीभेदन,हलधर और बलवीर, और कृष्ण जो तुम्हारा लड़का है तिसके नाम तो अनगिनत हैं पर किसी समै वसुदेव के यहां जन्मा इससे वासुदेव नाम हुआ औ मेरे विचारमें आता है कि ये दोनों बालक तुम्हारे चारों युग में जब जन्मे हैं तब साथ ही जन्मे हैं।

नन्दजी बोले-इनके गुन कहो। गर्ग मुनि ने उत्तर दिया-ये दूसरे विधाता हैं, इनकी गति कुछ जानी नहीं जाती पर मैं यह जानता हूं कि कंस को मार भूमि का भार उतारेंगे। ऐसे कह गर्ग मुनि चुपचपाते चले गये औ वसुदेव को जा सब समाचार कहे।

आगे दोनों बालक गोकुल में दिन २ बढ़ने लगे और बाल-लीला कर २ नन्द जसोदा को सुख देने। नीले पीले झगुले पहने माथे पर छोटी २ लटूरियां बिथरी हुई, तांड़त गण्डे बांधे, कठले गले में डाले, खिलौने हाथों में लिये खेलते, आंगन के बीच घुटनों चल २ कर, गिर २ पड़ें और तोतली २ बातें करें। रोहनी और जसोदा पीछे लगी फिरें इसलिए कि मत कहीं लड़के

किसीसे हर ठोकर खा गिरें। जब छोटे २ बछड़ों औ बछियाओं की पूंछ पकड़ २ उठें और गिर २ पड़ें तब जसोदा और रोहनी अति प्यार से उठाये छाती से लगाय दूध पिलाय भांति भांति के लाड़ लड़ावें।

जब श्रीकृष्ण बड़े भए तो एक दिन ग्वाल बाल साथ ले ब्रज में दधि माखन की चोरी को गये।

सूने घर में ढूंढ़ें जाय। जो पावें सो देयँ लुटाय॥

जिन्हे घर में सोते पावें तिनकी धरी ढकी दहेड़ी उठा लावें जहां छींके पर रखा देखें तहां पीढ़ी पर पटड़ा पटड़े पै उल्लूखल धर साथी को खड़ा कर उसके ऊपर चढ़ उतार लें, कुछ खावें, लुटावें औ लुढ़ाय दें। ऐसे गोपियों के घर २ नित चोरी कर आवें।

एक दिन सब ने मता किया और गेह में मोहन को आने दिया। जो घर भीतर पैठ चाहें कि माखन दही चुरावें तो जाय पकड़ २ कर कहा—

दिन २ आते थे निस भोर। अब कहां जावोगे माखन चोर॥

यों कह जब सब गोपी मिल कन्हैया को लिए जसोदा के पास उलाहना देने चलीं, तब श्रीकृष्ण ने ऐसा छल किया कि विसके लड़के का हाथ उसे पकड़ा दिया और आप दौड़ अपने ग्वाल-बालों का संग लिया। वे चली २ नन्दरानी के निकट आय पांवों पड़ बोली—जो तुम बिलग न मानो तो कुछ कहें, जैसी कुछ उपाध कृष्ण ने ठानी है।

दूध दह्यो माखन मह्यो, बचै नहीं ब्रज मांझ।
ऐसी चोरी करतु है, फिरतु भोर अरु सांझ॥

जहांकहीं धरा हुआपाते हैं तहांसे निधड़क उठालाते हैं, कुछ खाते हैं औ लुटाते हैं। जो कोई इनके मुखमें दहीलगा बतावे, तिसे उलटकर कहते हैं--तूनेई तो लगाया है। इसभांति नित चोरीकर आते थे, आज हमने पकड़ पायो सो तुम्हें दिखाने लाई हैं।

जसोदा बोली—बीर तुम किसका लड़का पकड़ लाई, कलसे तो घरसे बाहर भी न निकला मेरा कुंवर कन्हाई। ऐसाही सच बोलती हो। यह सुन औ अपना ही बालक हाथमें देखवे हंसकर लजाय रहीं। तहां जसोदा जी ने कृष्ण को बुलाय के कहा--पुत्र, तुम किसू के यहां मत जाओ, जो चाहिये सो घरमें से ले खाओ

सुन कै कान्ह कहत तुतराय। मत मैया तू इन्है पतियाय।
ये झूठी गोपी झूठो बोलें। मेरे पीछे लागी डोलें॥

कहीं दोहनी बछड़ा पकड़ाती हैं, कभी घरकी टहल कराती हैं, मुझे द्वारे रखवाली बैठाय अपने काजको जाती हैं, फिर झूठमूठ आय तुमसे बातें लगाती हैं। यों सुन गोपी हरिमुख देख-देख मुस्करा कर चली गईं।

आगे एक दिन कृष्ण बलराम सखाओं के संग बाखल में खेलते थे कि जो कान्ह ने मट्टी खाई तो एक सखाने जसोदा से जा लगाई, वह क्रोधकर हाथमें छड़ी ले उठ धाई। मा को रिस भरी आती देख मुहं पोंछ डरकर खड़े हो रहे। इन्होंने जाते ही कहा—क्यों रे तूने माटी क्यों खाई। कृष्ण डरते कांपते बोले,

आ तुझसे किसने कहा।

ये बोलीं—तेरे सखा ने। तब मोहन ने कोप कर सखा से पूछा क्यों रे मैंने मट्टी कब खाई है। वह भय कर बोला-भैया मैं तेरी बात कुछ नहीं जानता क्या कहूँगा। जों कान्ह सखा से बतराने लगे तो जसोदा ने उन्हें जा पकड़ा, तहाँ कृष्ण कहने लगे—मैया, तू मत रिसाय, कहीं मनुष्य भी मट्टी खाते हैं। वह बोली—मैं तेरी अटपटी बात नहीं सुनती, जो तू सच्चा है तो अपना मुख दिखा। जों श्रीकृष्ण ने मुख खोला तों उसमें तीनों लोक दृष्ट आये। तब जसोदा को ज्ञान हुआ तो मन में कहने लगी कि मैं बड़ी मूरख हूँ जो त्रिलोकी के नाथ को अपना सुत कर मानती हूँ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव राजा परीक्षित से बोले-हे राजा, जब नंदरानीने ऐसा जाना तब हरि ने अपनी माया फैलाई। इतने में मोहन को जसोदा प्यार कर कण्ठ लगाय घर ले आई।

६

उखल बन्धन

एक दिन दही मथने की बिरियां जान, भोरही नंदरानी उठीं और सब गोपियों को जगाय बुलाया, वे आय घर झाड़, बुहार, लीप, पोत, अपनी अपनी मथनियां ले ले दधि मथने लगीं। तहां नन्दमहरि भी एक बड़ा सा कोरा चरुआ ले ईढ़ुए पर रख

चौकी बिछा नेती और रई मंगाई, टटकी टटकी दहेड़ियां बाछ राम कृष्ण के लिये बिलोवन बैठी।

तिस समै नन्द के घर में ऐसा शब्द दही मथने का हो रहा था कि जैसे मेघ गरजता हो, इतने में कृष्ण जागे तो रो-रो मा-मा कर पुकारन लागे। जब उनका पुकारना किसू ने न सुना तब आपही जसोदा के निकट आये, औ आंखें डबडबाय अनमने हो ठुमक ठुमक तुतलाय तुतलाय कहने लगे कि मा तुझे के बेर बुलाया पर मुझे कलेऊ देन न आई। तेरा काज अब तक नहीं निबड़ा। इतना कह मचल पड़े। रई चहएसे निकाल दोनों हाथ डाल लगे माखन काढ़ २ फेंकने, अङ्ग लथेड़ने औ पांव पटक पटक आंचल खैंच खैंच रोने। तब नन्दरानी घबराय झुंझलाय के बोलीं—

बेटा यह क्या चाल निकाली।
चल उठ तुझे कलेऊ दूँ। कृष्ण कहे अब मैं नहिं लूं॥
पहिले क्यों नहि दीना मां। अब तो मेरी लेहै बला॥

निदान जसोदा ने फुसलाय प्यार से मुंह चूंब गोद में उठा लिया और दधि माखन रोटी खाने को दिया। हरि हंस २ खाते थे, नन्दमहरि आंचल की ओट किए खिला रही थी, इसलिये कि मत किसी की दीठि लागे।

इस बीच एक गोपी ने आ कहा कि तुम तो यहां बैठी हो वहां चूल्हे पर से सब दूध उफन गया। यह सुनते ही झट कृष्ण को गोद से उतार उठ धाई और जाके दूध बचाया। यहां कान्ह दही मही के भाजन फोड़, रई तोड़, माखन भरी कमोरी ले, ग्वाल बालों में दौड़ आए। एक उखल औंधा धरा

पाया तिस पर जा बैठे औ चारों ओर सखाओं को बैठाय लगे आपस में हंस हंस बांट बांट माखन खाने।

इसमें जसोदा दूध उतार कर आय देखे तो आंगन औ तिवारे में दही मही की कीच हो रही है। तब तो सोच समझ हाथ में छड़ी ले निकली और ढूंढती २ वहां आई जहां श्रीकृष्ण मंडली बनाये माखन खाय खिलाय रहे थे। जाते ही पीछे से जो कर धरा, तों हरि मा को देखते ही रोकर हा हा खाय लगे कहने कि मा, गोरस किसने लुढाया मैं नहीं जानूं, मुझे छोड़ दे। ऐसे दीन वचन सुन जसोदा हंसकर हाथ से छड़ी डाल और आनन्द में मगन हो रिस के मिस कण्ठ लगाय घर लाय कृष्ण को उलखल से बांधने लगी। तब श्रीकृष्ण ने ऐसा किया कि जिस रस्सी से बांधे वही छोटी होय। जसोदा ने सारे घर की रस्सियां मंगाई तो भी बांधे न गये। निदान मां को दुखित जान आपही बंधाई दिये। नन्दरानी बांध गोपियों को खोलने की सौंह दे फिर घरकी टहल करने लगी।

७

गोवर्द्धन पूजा

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा, जैसे श्रीकृष्णचन्द ने गिरि गोवर्द्धन उठाया औ इन्द्र का गर्व हरा, अब सोई कथा कहता हूँ, तुम चित दे सुनो, कि सब व्रजवासी बरसवें दिन कातिक बदी चौदस को न्हाह धोय केसर चन्दन से चौक पुराय भांति भांति की मिठाई औ पकवान धर, धूप दीप कर इन्द्र की पूजा किया करें। यह रीति उनके यहां परम्परा से चली आती थी। एक दिन वही दिवस आया तब नन्दजी ने बहुत सी खाने की

चौकी बिछा नेती और रई मंगाई, टटकी टटकी दहेड़ियां बाछ राम कृष्ण के लिये बिलोवन बैठी।

तिस समै नन्द के घर में ऐसा शब्द दही मथने का हो रहा था कि जैसे मेघ गरजता हो, इतने में कृष्ण जागे तो रो-रो मा-मा कर पुकारन लागे। जब विनका पुकारना किसू ने न सुना तब आपही जसोदा के निकट आये, औ आंखें डबडबाय अनमने हो ठुमक ठुमक तुतलाय तुतलाय कहने लगे कि मा तुझे के बेर बुलाया पर मुझे कलेऊ देन न आई। तेरा काज अब तक नहीं निबड़ा। इतना कह मचल पड़े। रई चरएसे निकाल दोनों हाथ डाल लगे माखन काढ़ २ फेंकने, अङ्ग लथेड़ने औ पांव पटक पटक आंचल खेंच खेंच रोने। तब नन्दरानी घबराय झुंझलाय के बोलीं—

बेटा यह क्या चाल निकाली।
चल उठ तुझे कलेऊ दूँ। कृष्ण कहै अब मैं नहिं लूं॥
पहिले क्यों नहि दीना मां। अब तो मेरी लेहै बला॥

निदान जसोदा ने फुसलाय प्यार से मुंह चूंब गोद में उठा लिया और दधि माखन रोटी खाने को दिया। हरि हंस २ खाते थे, नन्दमहरि आंचल की ओट किए खिला रही थी, इसलिये कि मत किसी की दीठि लागे।

इस बीच एक गोपी ने आ कहा कि तुम तो यहां बैठी हो वहां चूल्हे पर से सब दूध उफन गया। यह सुनते ही झट कृष्ण को गोद से उतार उठ धाई और जाके दूध बचाया। यहां कान्ह दही मही के भाजन फोड़, रई तोड़, माखन भरी कमोरी ले, ग्वाल बालों में दौड़ आए। एक उखल औंधा धरा

पाया तिस पर जा बैठे औ चारों ओर सखाओं को बैठाय लगे आपस में हंस हंस बांट बांट माखन खाने।

इसमें जसोदा दूध उतार कर आय देखे तो आंगन औ तिवारे में दही मही की कीच हो रही है। तब तो सोच समझ हाथ में छड़ी ले निकली और ढूंढती २ वहां आई जहां श्रीकृष्ण मंडली बनाये माखन खाय खिलाय रहे थे। जाते ही पीछे से जो कर धरा, तों हरि मा को देखते ही रोकर हा हा खाय लगे कहने कि मा, गोरस किसने लुढाया मैं नहीं जानूं, मुझे छोड़ दे। ऐसे दीन वचन सुन जसोदा हंसकर हाथ से छड़ी डाल और आनन्द में मगन हो रिस के मिस कण्ठ लगाय घर लाय कृष्ण को उलखल से बांधने लगी। तब श्रीकृष्ण ने ऐसा किया कि जिस रस्सी से बांधे वही छोटी होय। जसोदा ने सारे घर की रस्सियां मंगाई तौ भी बांधे न गये। निदान मां को दुखित जान आपही बंधाई दिये। नन्दरानी बांध गोपियों को खोलने की सोंह दे फिर घरकी टहल करने लगी।

७

गोवर्द्धन पूजा

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा, जैसे श्रीकृष्णचन्द ने गिरि गोवर्द्धन उठाया औ इन्द्र का गर्व हरा, अब सोई कथा कहता हूँ, तुम चित दे सुनो, कि सब ब्रजवासी बरसवें दिन कातिक बदी चौदस को न्हाह धोय केसर चन्दन से चौक पुराय भांति भांति की मिठाई औ पकवान धर, धूप दीप कर इन्द्र की पूजा किया करें। यह रीति उनके यहां परम्परा से चली आती थी। एक दिन वही दिवस आया तब नन्दजी ने बहुत सी खाने की

सामग्री बनवाई औ सब ब्रजबासियों के भी घर घर सामग्री भोजन की हो रही थी। तहां श्रीकृष्ण ने आ मा से पूछा कि मा जी, आज घर घर मैं पकवान मिठाई जो हो रही है सो क्या है, इसका भेद मुझे समझाकर कहो जो मेरे मन की दुबधा जाय। जसोदा बोली कि बेटा, इस समै मुझे बात कहने का अवकाश नहीं, तुम अपने पिता से जा पूछो वे बुझायकर कहेंगे। यह सुन नन्द उपनन्द के पास आय श्रीकृष्ण ने कहा कि पिता, आज किस देवता के पूजने की ऐसी धूम धाम है कि जिनके लिये घर घर पकवान मिठाई हो रही है, वे कैसे भक्ति मुक्ति वर के दाता हैं, तिनका नाम औ गुन कहो जो मेरे मन का संदेह जाय।

नन्दमहर बोले कि पुत्र यह तूने अब तक नहीं समझा कि मेघों के पति जो हैं सुरपति, तिनकी पूजा है, जिनकी कृपा से संसार में रिद्धि सिद्धि मिलती है औ तृन, जल, अन्न होता है, बन उपबन फूलते फलते हैं, तिन से सब जीव, जन्तु, पशु, पक्षी आनन्द में रहते हैं। यह इन्द्र पूजा की रीति हमारे यहां पुरुषाओं के आगे से चली आती है, कुछ आजही नई नहीं निकाली। नन्दजी से इतनी बात सुन श्रीकृष्णचन्द बोले—हे पिता, जो हमारे बड़ों ने जाने अनजाने इन्द्र की पूजा की तो की, पर अब तुम जान बूझकर धर्म का पंथ छोड़ ऊबट बाट क्यों चलते हो। इन्द्र के मानने से कुछ नहीं होता क्योंकि वह भुक्ति मुक्ति का दाता नहीं औ बिससे रिद्धि सिद्धि किसने पाई है। यह तुम्हीं कहो तिन्ने किसे वर दिया है।

हां एक बात यह है कि तप यज्ञ करने से देवताओं ने अपना राजा बनाय इन्द्रासन दे रक्खा है, इससे कुछ परमेश्वर नहीं हो

सकता। सुनो जब असुरों से बार बार हारता है, तब भाग के कहीं जा छिपकर अपने दिन काटता है। ऐसे कायर को क्यों मानो, अपना धर्म किसलिए नहीं पहचानो। इन्द्र का किया कुछ नहीं हो सकता, सो कर्म में लिखा है सोई होता है। सुख, सम्पत, दारा, भाई, बन्धु ये भी सब अपने धर्म कर्म से मिलते हैं, और आठ मास जो सूरज जल सोखता है सोई चार महीने बरसता है, तिसी से पृथ्वी में तृन, जल, अन्न होता है और ब्रह्मा ने जो चारों बरन बनाये हैं, ब्राह्मन, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, तिनके पीछे भी एक एक कर्म लगा दिया है कि ब्राह्मण तो वेद विद्या पढ़े, क्षत्री सबकी रक्षा करे, वैश्य खेती बनज, और शूद्र इन तीनों की सेवा में रहैं।

पिता, हम वैश्य हैं, गायें बढ़ीं, इससे गोकुल हुआ, तिसीसे नाम गोप पड़ गया। हमारा यही कर्म है कि खेती बनज करें और गौ ब्राह्मण की सेवा में रहैं। वेद की आज्ञा है कि अपनी कुलरीति न छोड़िये। इससे अब इन्द्र की पूजा छोड़ दीजै और बन पर्वत की पूजा कीजै, क्योंकि हम बनवासी हैं, हमारे राजा वेई हैं जिनके राज में हम सुख से रहते हैं, तिन्हें छोड़ और को पूजना हमें उचित नहीं। इससे अब सब पकवान अन्न मिठाई ले चलो और गोवर्द्धन की पूजा करो।

इतनी बात सुनते ही नन्द उपनन्द उठकर वहां गये जहां बड़े बड़े गोप अथाई पर बैठे थे। इन्होंने जाते ही सब श्रीकृष्ण की कही बातें तिन्हें सुनाईं। वे सुनते ही बोले कि कृष्ण सच

सामग्री बनवाई औ सब ब्रजवासियों के भी घर घर सामग्री भोजन की हो रही थी। तहां श्रीकृष्ण ने आ मा से पूछा कि मा जी, आज घर घर में पकवान मिठाई जो हो रही है सो क्या है, इसका भेद मुझे समझाकर कहो जो मेरे मन की दुबधा जाय जसोदा बोली कि बेटा, इस समै मुझे बात कहने का अवकाश नहीं, तुम अपने पिता से जा पूछो वे बुझायकर कहैंगे। यह सुन नन्द उपनन्द के पास आय श्रीकृष्ण ने कहा कि पिता, आज किस देवता के पूजने की ऐसी धूम धाम है कि जिनके लिये घर घर पकवान मिठाई हो रही है, वे कैसे भक्ति मुक्ति वर के दाता हैं, तिनका नाम औ गुन कहो जो मेरे मन का संदेह जाय।

नन्दमहर बोले कि पुत्र यह तूने अब तक नहीं समझा कि मेघों के पति जो हैं सुरपति, तिनकी पूजा है, जिनकी कृपा से संसार में रिद्धि सिद्धि मिलती है औ तृन, जल, अन्न होता है, बन उपबन फूलते फलते हैं, तिन से सब जीव, जन्तु, पशु, पक्षी आनन्द में रहते हैं। यह इन्द्रपूजा की रीति हमारे यहां पुरुषाओं के आगे से चली आती है, कुछ आजही नई नहीं निकाली। नन्दजी से इतनी बात सुन श्रीकृष्णचन्द बोले—हे पिता, हमारे बड़ों ने जाने अनजाने इन्द्र की पूजा की तो की, पर अब तुम जान बूझकर धर्म का पंथ छोड़ ऊबट बाट क्यों चलते हो इन्द्र के मानने से कुछ नहीं होता क्योंकि वह भुक्ति मुक्ति का दाता नहीं औ तिससे रिद्धि सिद्धि किसने पाई है। यह तुम कहो तिनने किसे वर दिया है।

हां एक बात यह है कि तप यज्ञ करने से देवताओं ने अपना राजा बनाय इन्द्रासन दे रक्खा है, इसमें कुछ परमेश्वर नहीं

सकता। सुनो जब असुरों से बार बार हारता है, तब भाग के कहीं जा छिपकर अपने दिन काटता है। ऐसे कायर को क्यों मानो, अपना धर्म किसलिए नहीं पहचानो। इन्द्र का किया कुछ नहीं हो सकता, सो कर्म में लिखा है सोई होता है। सुख, सम्पत, दारा, भाई, बन्धु ये भी सब अपने धर्म कर्म से मिलते हैं, और आठ मास जो सूरज जल सोखता है सोई चार महीने बरसता है, तिसी से पृथ्वी में तृन, जल, अन्न होता है और ब्रह्मा ने जो चारों बरन बनाये हैं, ब्राह्मन, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, तिनके पीछे भी एक एक कर्म लगा दिया है कि ब्राह्मण तो वेद विद्या पढ़े, क्षत्री सबकी रक्षा करे, वैश्य खेती बनज, और शूद्र इन तीनों की सेवा में रहैं।

पिता, हम वैश्य हैं, गायें बढ़ीं, इससे गोकुल हुआ, तिसीसे नाम गोप पड़ गया। हमारा यही कर्म है कि खेती बनज करैं और गौ ब्राह्मण की सेवा में रहैं। वेद की आज्ञा है कि अपनी कुलरीति न छोड़िये। इससे अब इन्द्र की पूजा छोड़ दीजै और बन पर्वत की पूजा कीजै, क्योंकि हम बनवासी हैं, हमारे राजा वेई हैं जिनके राज में हम सुख से रहते हैं, तिन्हें छोड़ और को पूजना हमें उचित नहीं। इससे अब सब पकवान अन्न मिठाई ले चलो और गोवर्द्धन की पूजा करो।

इतनी बात सुनते ही नन्द उपनन्द उठकर वहां गये जहां बड़े बड़े गोप अथाई पर बैठे थे। इन्होंने जाते ही सब श्रीकृष्ण की कही बातें तिन्हें सुनाईं। वे सुनते ही बोले कि कृष्ण सच

कहता है, तुम बालक जान उसकी बात मत टालो। भला तुमही बिचारो कि इन्द्र कौन है, और हम किसलिए विसे मानते हैं; जो पालता है उसकी तो पूजा ही भुलाई।

हमें कहा सुरपति सों काज। पूजे बन सरिता गिरराज॥

ऐसे कह फिर सब गोपों ने कहा—

भलो मतौ कान्हर कियौ, तजिये सिगरे देव।
गोवर्द्धन पर्वत बड़ो, ताकी कीजै सेव॥

यह वचन सुनते ही नन्दजी ने प्रसन्न हो गांव में ढंढोरा फिरवाय दिया कि कल हम सारे ब्रजवासी चलकर गोवर्द्धन की पूजा करेंगे, जिस जिसके घर में इन्द्र की पूजा के लिए पकवान मिठाई बनी है सो सब ले ले भोरही गोवर्द्धन पै जाइयो। इतनी बात सुन सकल ब्रजवासी दूसरे दिन भोर के तड़के ही उठ, स्नान ध्यान कर, सब सामग्री झालों, परातों, थालों, डलों, हड़ों, घरुओं में भर, गडों बहंगियों रखवा य, गोवर्द्धन को चले। तिसी समै नन्द उपनन्द भी कुटुम्ब समेत सामान ले सबके साथ हो लिए और बाजे गाजे से चले चले सब मिल गोवर्द्धन पहुंचे।

वहां जाय पर्वत के चारों ओर झाड़ बुहार, जल छिड़क, घेवर, बाबर, जलेबी, लड्डू, खुरमे, इमरती, फेनी, पेड़े, बरफी, खाजे, गूझे, मठड़ी, सीरा, पूरी, कचौरी, सेव, पापड़, पकौड़ी आदि पकवान और भांति भांति के भोजन, विजन, संधाने, चुन चुन रख दिये, इतने कि जिनसे पर्वत छिप गया और ऊपर फूलों की माला पहराय बरन बरन के पाटम्बर तान दिये।

तिस समै की सोभा बरनी नहीं जाती। गिरि ऐसा सुहावना लगता था, जैसे किसी ने गहने कपड़े पहराय नख सिख से सिंगारा होय, और नन्द जी ने पुरोहित बुलाय सब ग्वाल बालों को साथ ले, रोली अच्छत पुष्प चढ़ाय, धूप दीप नैवेद्य कर पान सुपारी दछिना धर, वेद की विधि से पूजा की, तब श्रीकृष्ण ने कहा कि अब तुम शुद्ध मन से गिरिराज का ध्यान करो तो वे आय दरसन दे भोजन करें।

श्रीकृष्णसे यों सुनते ही नन्द जसोदा समेत सब गोपी गोप कर जोड़ नैन मूंद ध्यान लगाय खड़े हुए, तिस काल नन्दलाल उधर तो अति मोटी भारी दूसरी देह धर बड़े बड़े हाथ पांव कर, कमलनैन, चंदमुख हो, मुकुट धरे, बनमाल गरे, पीत बसन और रतन जटित आभूषन पहरे मुंह पसारे चुपचाप पर्वत के बीचसे निकले और इधर आपही अपने दूसरे रूपको देख सबसे पुकार के कहा—देखो, गिरिराजने प्रकट होय दरसन दिया, जिनकी पूजा तुमने जी लगाय करी है। इतना बचन सुनाय श्रीकृष्णचन्द जी ने गिरिराज को दंडवत की, उनकी देखादेखी सब गोपीगोप प्रणाम कर आपस में कहने लगे कि इस भांति इन्द्र ने कब दरसन दिया था, हम वृथा उसकी पूजा किया किये और क्या जानिये पुरुषाओं ने ऐसे प्रत्यच्छ देव को छोड़ इन्द्र को माना था, यह बात समझी नहीं जाती।

यों सब बतलाय रहे थे के श्रीकृष्ण बोले—अब देखते क्या हो, जो भोजन लाये हो सो खिलाओ। इतना वचन सुनते ही गोपी-गोप षटरस भोजन थाल परातों में भर भर उठाय उठाय लगे

देने और गोवर्द्धन नाथ हाथ बढ़ाय बढ़ाय ले ले भोजन करने। निदान जितनी सामग्री नन्द समेत सब ब्रजबासी ले गये थे सो खाई, तब वह मूरत पर्वत में समाई। इस भांति अद्भुत लीला कर श्रीकृष्णचन्द सबको साथ ले पर्वत की परिक्रमा दे, दूसरे दिन गोवर्द्धन से चल हंसते खेलते वृन्दावन आए। तिस काल घर घर आनन्द मङ्गल बधाए होने लगे और ग्वाल बाल सब गाय बछड़ों को रंग रंग इनके गले में गंडे घंटालियां घूंघरू बांध बांध न्यारे ही कुतूहल कर रहे थे।

८

ब्रज-रक्षा

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले—

सुरपति की पूजा तजी, करी पर्वत की सेव।
तबहि इन्द्र मन कोपि कै, सबै बुलाए देव॥

जब सारे देवता इन्द्र के पास गये तब वह तिनसे पूछने लगा कि तुम मुझे समझाकर कहो कल ब्रज में पूजा किस की थी? इस बीच नारद जी आय पहुंचे तो इन्द्र से कहने लगे कि सुनो महाराज, तुम्हें सब कोई मानता है पर एक ब्रजबासी नहीं मानते क्योंकि नन्द के एक बेटा हुआ है, तिसी का कहा सब मानत हैं, तिन्होंने तुम्हारी पूजा मेंट कल सबसे पर्वत पुजवाया। इतनी बात सुनते ही इन्द्र क्रोध कर बोला कि ब्रजवासियों के धन बढ़ा है, इसी से तिन्हें अति गर्व हुआ है।

जप तप यज्ञ तज्यौ ब्रज मेरौ। काल दरिद्र बुलायो नेरौ।
मानुष कृष्ण देव कै मानैं। ताकी बातैं सांचो जानैं॥
वह बालक मूरख अज्ञान। बहुवादी राखै अभिमान॥
अब हौं उनकौ गर्व परिहरौं। पशु खोऊं लक्ष्मी बिन करौं॥

ऐसे बक झक खिझलायकर सुरपति ने मेघपति को बुलाय भेजा, वह सुनते ही डरता कांपता हाथ जोड़ सन्मुख आ खड़ा हुआ, तिसे देखते ही इन्द्र तेह कर बोला कि तुम अभी अपना सब दल साथ ले जाओ और गोवर्द्धन पर्वत समेत ब्रजमण्डल को बरस बहाओ, ऐसा कि कहीं गिरि का चिन्ह और ब्रज-बासियों का नाम न रहे।

इतनी आज्ञा पाय मेघपति दंडवत कर राजा इन्द्र से विदा हुआ और तिसने अपने स्थान पर आय बड़े २ मेघों को बुलाय के कहा—सुनो, महाराज की आज्ञा है कि तुम अभी जाय ब्रज-मंडल को बरस के बहा दो। यह बचन सुन सब मेघ अपने २ दल बादल ले ले मेघपति के साथ हो लिये। तिसने आते ही ब्रज मण्डल को घेर लिया औ गरज गरज बड़ी बड़ी बून्दों से लगा मूसलाधार जल बरसाने और उंगली से गिरी को बतावने।

इतनी कथा कथ श्रीशुकदेवजी ने राजापरीक्षित से कहा कि महाराज, जब ऐसे चहूँ ओर से घनघोर घटा घिर आई और अनन्त जल बरसाने लगीं, तब नन्द जसोदा समेत सब गोपी ग्वाल बाल भय खाय भींगते थर थर कांपते श्रीकृष्ण के पास आय पुकारे कि हे श्रीकृष्ण, इस महाप्रलय के जल से कैसे बचेंगे

तब तो तुमने इन्द्र की पूजा मेट पर्वत पुजवाया, अब वेग उसको बुलाइये जो आय रक्षा करे, नहीं तो क्षण भरमें नगर समेत सब डूब मरते हैं। इतनी बात सुन औ सब को भयातुर देख श्रीकृष्णचन्दजी बोले कि तुम अपने जी में किसी बात की चिता मत करो, गिरिराज अभी आय तुम्हारी रक्षा करते हैं। यों कह गोवर्द्धन को तेज से तपाय अग्नि सम किया औ बायें हाथ की छिंगली पर उठाय लिया। तिस काल सब ब्रजवासी अपने ढोरों समेत आ उसके नीचे खड़े हुए और श्रीकृष्णचन्द को देख देख अचरज कर आपस में कहने लगे।

है कोउ आदि पुरुष औतारी। देवन हू को देव मुरारी॥
मोहन मानुष कैसो भाई। अंगुरी पर क्यों गिरि ठहराई॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि राजा परीक्षित से कहने लगे कि उधर तो मेघपति अपना दल लिये क्रोध कर मूसलाधार जल बरसाता था औ इधर पर्वत पै गिर छनाक तवे की बूंद हो जाता था। यह समाचार सुन इन्द्र भी कोप कर आप चढ़ आया औ लगातार उसी भांति सात दिन बरसा, पर ब्रज में हरिप्रताप से एक बूंद भी न पड़ी। जब सब जल निबड़ा तब मेघों ने आ हाथ जोड़ कहा कि हे नाथ, जितना महाप्रलय का जल था सबका सब हो चुका, अब क्या करें। यों सुन इन्द्र ने अपने ज्ञान ध्यान से विचारा कि आदि पुरुष ने औतार लिया, नहीं तो किस में इतनी सामर्थ थी जो गिरि धारण कर ब्रज की रक्षा करता। ऐसे सोच समझ अछता-पछता मेघों समेत इन्द्र अपने स्थान को गया और

बादल उघड़ प्रकाश हुआ। तब सब व्रजवासियों ने प्रसन्न हो श्रीकृष्ण से कहा—महाराज, अब गिरि उतार धरिये, मेघ जाता रहा। यह वचन सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र ने पर्वत जहां का तहां रख दिया।

६

व्रजवासियों को श्रीकृष्णके महापुरुषत्व का ज्ञान

श्रीशुकदेवजी बोले कि जब हरि ने गिरि कर से उतार धरा तिस समय सब बड़े २ गोप तो इस अद्भुत चरित्र को देख यों कह रहे थे, कि जिसकी शक्तिने इस महाप्रलय से आज व्रजमंडल बचाया तिसे हम नन्दसुत कैसे कहेंगे, हां किसी समय नन्द जसोदा ने महातप किया था, इसीसे भगवान ने आ इनके घर जन्म लिया है। औ ग्वालबाल आय आय श्रीकृष्ण के गले मिल मिल पूछने लगे कि भैया, तूने इस कोमल कमल से हाथ पर कैसे ऐसे भारी पर्वत का बोझ संभाला, औ नन्द जसोदा करुणा कर पुत्र को हृदय लगाय हाथ दाब उंगली चटकाय कहने लगे कि सात दिन गिरि कर पर रक्खा, हाथ दुखता होयगा, औ गोपी जसोदा के पास आय पिछली सब कृष्ण की लीला गाय कहने लगीं—

यह जो बालक पूत तिहारो। चिरजीवो व्रज को रखवारो॥
दानव दैत्य असुर संहारे। कहां कहां व्रज जन न उबारे॥
जैसी कही गर्ग ऋषिराई। सोई सोई बात होति है आई॥

१०

नारद अक्रूर सम्वाद

एक दिन नारद मुनी जी कंस के पास आए, औ उसका कोप बढ़ाने को जब उन्होंने बलराम औ श्याम के होने औ माया के आने औ कृष्ण के जाने का भेद समझाकर कहा तब कंस क्रोध कर बोला--नारदजी तुम सच कहते हो।

प्रथम दियौ सुत आनि कै, मन परतीत बढ़ाय।
जों ठग कछु दिखाइ कै, सर्वसु ले भजि जाय॥

इतना कह वसुदेव को बुलाय पकड़ बांधा औ खांडे पर हाथ रख अकुलाकर बोला।

मिला रहा कपटी तू मुझे। भला साध जाना मैं तुझे।
दिया नन्द के कृष्ण पठाय। देवी हमें दिखाई आय॥
मनमें कुछी कही मुख और। आज अवश्य मारूं इहिं ठौर॥
मित्र सगा सेवक हितकारी। करै कपट सो पापी भारी॥

मुख मीठा मन विष भरा, रहे कपट के हेत।
आप काज परद्रोहिया उससे भला जु प्रेत॥

ऐसे बक झक फिर कंस नारदजी से कहने लगा कि महाराज हमने कुछ इसके मनका भेद न पाया, हुआ लड़का औ कन्याको ला दिखाया, जिसे कहा अधूरा गया, सोई जा गोकुल में बलदेव भया। इतना कह क्रोध कर ओठ चबाय खड्ग उठाय जो चाहा कि वसुदेव को मारूं, तो नारद मुनि ने हाथ पकड़कर कहा--राजा, वसुदेवको तो तू रख चाहा, औ जिससे कृष्ण बलदेव आवें

सो कर काज। ऐसे समझाय बुझाय जब नारद मुनि चले गये, तब कंस वसुदेव देवकी को तो एक कोठड़ी में मूंद दिया औ आप भयातुर हो केसी नाम राक्षस को बुलाके बोला।

महा बली तू साथी मेरा। बड़ा भरोसा मुझको तेरा॥
एक बार तू ब्रज में जा। राम कृष्ण हनि मुझे दिखा॥

इतना वचन सुनते ही केसी तो आज्ञा पा बिदा हो दंडवत कर वृन्दावन को गया औ कंस ने साल, तुसाल, चानूर, अरिष्ट, व्योमासुर आदि जितने मंत्री थे सबको बुला भेजा। वे आए, तिन्हें समझाकर कहने लगा कि मेरा वैरी पास आय बसा है, तुम अपने जी में सोच विचार के मेरे मनका सूल जो खटकता है निकालो। मन्त्री बोले—पृथ्वीनाथ, आप महाबली होकर किस से डरते हो। राम कृष्ण का मारना क्या बड़ी बात है, कुछ चिंता मत करो, जिस छल बल से वे यहां आंवें, सोइ हम मता बतावें।

पहले तो यहां भली भांति से एक ऐसी सुन्दर रंगभूमि बनावें, कि जिसकी सोभा सुनते ही देखने को नगर-नगर गांव-गांव के लोग उठ धावें। पीछे महादेव का यज्ञ करवाओ औ होम के लिए बकरे भैंसे मंगवाओ। यह समाचार सुन सब ब्रजबासी भेंट लावेंगे, तिनके साथ राम कृष्ण भी आवेंगे। उन्हें तभी कोई मल्ल पछाड़ेगा, कै कोई और ही बली पौर पर मार डालेगा। इतनी बात के सुनते ही—

कहै कंस मन लाय, भलौ मतौ मन्त्री कियौ।
लीने मल्ल बुलाय, आदर कर बीरा दयौ॥

१०

नारद अक्रूर सम्वाद

एक दिन नारद मुनी जा कंस के पास आए, औ उसका कोप बढ़ाने को जब उन्होंने बलराम औ श्याम के होने औ माया के आने औ कृष्ण के जाने का भेद समझाकर कहा तब कंस क्रोध कर बोला--नारदजी तुम सच कहते हो।

प्रथम दियौ सुत आनि कै, मन परतीत बढ़ाय।
जों ठग कछु दिखाइ कै, सर्वसु ले भजि जाय॥

इतना कह बसुदेव को बुलाय पकड़ बांधा औ खांडे पर हाथ रख अकुलाकर बोला।

मिला रहा कपटी तू मुझे। भला साध जाना मैं तुझे।
दिया नन्द के कृष्ण पठाय। देवी हमें दिखाई आय॥
मनमें कुछी कही मुख और। आज अवश्य मारूं इहिं ठौर॥
मित्र सगा सेवक हितकारी। करै कपट सो पापी भारी॥

मुख मीठा मन बिष भरा, रहे कपट के हेत।
आप काज परद्रोहिया उससे भला जु प्रेत॥

ऐसे बक झक फिर कंस नारदजी से कहने लगा कि महाराज हमने कुछ इसके मनका भेद न पाया, हुआ लड़का औ कन्याको ला दिखाया, जिसे कहा अधूरा गया, सोई जा गोकुल में बलदेव भया। इतना कह क्रोध कर ओठ चबाय खड्ग उठाय जो चाहा कि बसुदेव को मारूं, तो नारद मुनि ने हाथ पकड़कर कहा—राजा, बसुदेवको तो तू रख आज, औ जिससें कृष्ण बलदेव आवें

सो कर काज। ऐसे समझाय बुझाय जब नारद मुनि चले गये, तब कंस वसुदेव देवकी को तो एक कोठड़ी में मूंद दिया औ आप भयातुर हो केसी नाम राक्षस को बुलाके बोला।

महा बली तू साथी मेरा। बड़ा भरोसा मुझको तेरा॥
एक बार तू व्रज में जा। राम कृष्ण हनि मुझे दिखा॥

इतना वचन सुनते ही केसी तो आज्ञा पा विदा हो दंडवत कर वृन्दावन को गया औ कंस ने साल, तुसाल, चानूर, अरिष्ट, व्योमासुर आदि जितने मंत्री थे सबको बुला भेजा। वे आए, तिन्हें समझाकर कहने लगा कि मेरा बैरी पास आय बसा है, तुम अपने जी में सोच विचार के मेरे मनका सूल जो खटकता है निकालो। मन्त्री बोले—पृथ्वीनाथ, आप महाबली होकर किस से डरते हो। राम कृष्ण का मारना क्या बड़ी बात है, कुछ चिंता मत करो, जिस छल बल से वे यहां आवें, सोइ हम मता बतावें।

पहले तो यहां भली भांति से एक ऐसी सुन्दर रंगभूमि बनवावें, कि जिसकी सोभा सुनते ही देखने को नगर-नगर गांव-गांव के लोग उठ धावें। पीछे महादेव का यज्ञ करवाओ औ होम के लिए बकरे भैंसे मंगवाओ। यह समाचार सुन सब व्रजवासी भेंट लावेंगे, तिनके साथ राम कृष्ण भी आवेंगे। उन्हें तभी कोई मल्ल पछाड़ेगा, कै कोई और ही बली पौर पर मार डालेगा। इतनी बात के सुनते ही—

कहै कंस मन लाय, भलौ मतौ मन्त्री कियौ।
लीने मल्ल बुलाय, आदर कर बीरा दयौ॥

फिर सभा कर अपने बड़े बड़े राक्षसों से कहने लगा कि जब हमारे भानजे राम कृष्ण यहां आवें तब तुममें से कोई उन्हें मार डालियो, जो मेरे जी का खटका जाय। विन्हें यों समझाय पुनि महावत को बुलाके बोला कि तेरे वश में मतवाला हाथी है, तू द्वार पर लिये खड़ा रहियो। जब वे दोनों आवें औ द्वार में पांव दें तू हाथी से चिरवा डालियो, किसी भांति भागने न पावें। जो विन दोनों को मारेगा वह मुंह मांगा धन पावेगा।

ऐसे सबको सुनाय समझाय बुझाय कार्तिक बदी चौदस को शिव का यज्ञ ठहराय, कंस ने सांझ समै अक्रूर को बुलाय अति आवभगति कर, घर भीतर ले जाय, एक सिंहासन पर अपने पास बैठाय, हाथ पकड़ अति प्यार से कहा कि तुम यदुकुल में सबसे बड़े ज्ञानी, धरमात्मा, धीर हो, इसलिये तुम्हें सब जानते हैं। ऐसा कोई नहीं जो तुम्हें देख सुखी न होय, इस से जैसे इंद्र का काज बावन ने जा किया जो छल कर बलि का सारा राज ले दिया और राजा बलि को पाताल पठाया, तैसे तुम हमारा काम करो तो एक बेर वृन्दावन जाओ और देवकी के दोनों लड़कों को जों बने तों छल बल कर यहां ले आओ।

कहा है जो बड़े हैं सो आप दुख सहा करते हैं पराये काज, तिसमें तुम्हें तो है हमारी सब बात की लाज। अधिक क्या कहेंगे, जैसे बने वैसे उन्हें ले आओ, तो यहां सहज ही में मारे जायेंगे। कै तो देखते ही चानूर पछाड़ेगा, कै गज कुबलिया पकड़ चीर डालेगा, नहीं तो मैं ही उठ मारूंगा, अपना काज अपने हाथ

संवारूंगा। औ उन दोनों को मार पीछे उग्रसेन को हनूंगा, क्योंकि वह बड़ा कपटी हैं, मेरा मरना चाहता है। फिर देवकी के पिता देवक को आग से जलाय पानी में डबोऊंगा। साथ ही उसके वसुदेव को मार हरिभक्तों को जड़ से खोऊंगा, तब निकंटक राज कर जरासिंधु जो मेरा मित्र है प्रचण्ड, उसके त्रास से कांपते हैं नौखण्ड, औ नरकासुर, बानासुर, आदि बड़े २ महाबली राक्षस जिसके सेवक हैं तिस से जा मिलूंगा, जो तुम राम कृष्ण को ले आओ।

इतनी बातें कह कर कंस फिर अक्रूर को समझाने लगा कि तुम वृन्दावन को जाय नन्द के यहां कहियो जो शिव का यज्ञ है, धनुष धरा है औ अनेक प्रकार के कुतूहल वहां होयंगे। यह सुन नन्द उपनन्द गोपों समेत बकरे भैंसे ले भेट देने लावेंगे, तिनके साथ देखने को कृष्ण बलदेव भी आवेंगे। यह तो मैंने तुम्हें उनके लवाने का उपाय बता दिया, आगे तुम सज्ञान हो, जो और उकत बनि आवे सो करिवो, अधिक तुमसे क्या कहें। कहा है—

होय बिचित्र बसीठ, जाहि बुद्धि बल आपनो।
पर कारज पर दीठ, करहि भरोसो ताहि को॥

इतनी बात के सुनते ही पहले तो अक्रूर ने अपने जी में विचारा कि जो मैं अब इसे भली बात कहूँगा तो न मानेगा, इससे उत्तम यही है कि इस समय इसके मनभाती सुहाती बात कहूँ। ऐसे और भी ठौर कहा कि वही कहिए जो जिसे सुहाय। यों सोच

विचार अक्रूर हाथ जोड़ सिर झुकाय बोला—महाराज, तुमने भला मता किया, यह वचन हमने भी सिर चढ़ाय मान लिया, होनहार पर कुछ बस नहीं चलता। मनुष्य अनेक मनोरथ कर धावता है, पर करम का लिखाही फल पावता है। आगम बांध तुमने यह बात विचारी है, न जानिए कैसी होय, मैंने तुम्हारी बात मान ली, कल भोर को जाऊंगा औ राम कृष्ण को लें आऊंगा। ऐसे कंस से विदा हो अक्रूर अपने घर आया।

११

केशी-व्योमासुर-वध

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, ज्यों श्रीकृष्णचन्द ने केसी को मारा और नारद ने जाय स्तुति करी, पुनि हरि ने व्योमासुर को हना तो सब चरित्र कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो कि भोर होते ही केसी अति ऊंचा भयावना घोड़ा बन वृन्दाबन में आया और लगा लाल-लाल आंखें कर नथने चढ़ाय कान पूंछ उठाय टाप-टाप भूं खोदने, हींस-हींस कांधा उपाय २ लातें चलाने।

उसे देखते ही ग्वालबालों ने भय खाय भाग श्रीकृष्ण से जा कहा। वे सुनके वहां आये, जहां वह था औ विसे देख लड़ने को फेंट बांध ताल ठोंक सिंह की भांति गरज कर बोले—अरे, जो तू कंस का बड़ा प्रीतम है औ घोड़ा बन आया है तो और के पीछे क्यों फिरता है, आ मुझसे लड़ जो तेरा बल देखूं। दीप पतंग की

भांति कब तक फिरेगा, तेरी मृत्यु तो निकट आन पहुंची है। यह बचन सुन केसी कोप कर अपने मनमें कहने लगा कि आज इसका बल देखूंगा औ पकड़ ईख की भांति चबाय कंस का कारज कर जाऊंगा।

इतना कह मुंह बाय के ऐसे दौड़ा कि मानो सारे संसार को खा जायगा। आते ही पहले जों उसने श्रीकृष्ण पर मुंह चलाया तो उन्होंने एक बेर तो धकेलकर पीछे हटाया। जब दूसरी बेर फिर वह संभलके मुख फैलाय धाया, तब श्रीकृष्णने अपना हाथ उसके मुंहमें डाल लोह लाठसा कर ऐसा बढ़ाया कि जिसने उसके दसों द्वार जा रोके, तब तो केसी घबरा जी में कहने लगा कि अब देह फटती है, यह कैसी भई अपनी मृत्यु आप मुंह में ली, जैसी मछली बंसी को निगल प्राण देती है, तैसे मैंने भी अपना जीव खोया। इतना कह उसनें बहुतेरे उपाय हाथ निकालने को किये पर एक भी काम न आया। निदान सांस रुककर पेट फट गया तो पछाड़ खाय के गिरा। तब उसके शरीर से लोहू नदी की भांति बह निकला। तिस समय ग्वालबाल आय २ देखने लगे औ श्रीकृष्ण-चंद आगे जाय बन में एक कदम की छांह तले खड़े हुए।

इस बीच बीन हाथ में लिए नारद मुनि जी आन पहुंचे, प्रनाम कर खड़े होय बीन बजाय श्रीकृष्णचन्द की भूत भविष्य की सब लीला औ चरित्र गायके बोले कि कृपानाथ तुम्हारी लीला अपरम्पार है, इतनी किसमें सामर्थ है जो आपके चरित्रों को बखाने, पर तुम्हारी दया से मैं इतना जानता हूँ कि आप भक्तों को

सुख देने के अर्थ औ साधों की रक्षा के निमित्त औ दुष्ट असुरोंके नाश करने के हेतु बार २ औतार ले संसार में प्रगट हो भूमिका भार उतारते हो।

इतना वचन सुनते ही प्रभु ने नारद मुनि को बिदा दी। वे दंडवत कर सिधारे औ आप सब ग्वालबाल सखाओं को साथ लिए एक बड़के तले बैठ पहले तो किसी को मंत्री, किसी को प्रधान, किसी को सेनापति बनाय आप राजा हो राजरीतिके खेल खेलने लगे औ पीछे आंख मिचौली। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि पृथ्वीनाथ,

मर्यो केसि भोर ही, सुनी कंस यह बात।
व्योमासुर सों कहतु है, झंखत कम्पत गात॥

अरि कन्दन व्योमासुर बली। तेरी जग में कीरति भली॥
ज्यों राम के पवन को पूत। त्यों ही तू मेरे यमदूत॥
वसुदेव के पूत हनि ल्याव। आज काज मेरो करो आव॥

यह सुन कर जोड़ व्योमासुर बोला-महाराज जो बसायगी सो करूंगा आज, मेरी देह है आप ही के काज जो जी के लोभी हैं, तिन्हें स्वामी के अर्थ जी देते आती है लाज। सेवक औ स्त्री को तो इसी में जस धरम है जो स्वामी के निमित्त प्राण दे।

ऐसे कह कृष्ण बलदेव पर बीड़ा उठाय कंस को प्रनाम कर व्योमासुर वृन्दावन को चला। बाट में जाय ग्वाल का भेष बनाय चला २ ऊहां पहुंचा जहां हरि ग्वालबाल सखाओं के साथ आंखमिचौली खेल रहे थे। जाते ही जब उसने हाथ जोड़

श्रीकृष्णचन्द से कहा—महाराज, मुझे भी अपने साथ खिलाओ तब हरि ने उसे पास बुलाकर कहा—तू अपने जी में किसी बात की होंस मत रख जो तेरा मन माने सो खेल हमारे संग खेल। यों सुन वह प्रसन्न हो बोला कि वृक मेंढे का खेल भला है। श्रीकृष्णचन्द ने मुसकराय के कहा—बहुत अच्छा, तू बन भेड़िया औ सब ग्वालबाल होवें मेंढे। सुनते ही फूलकर व्योमासुर तो ल्यारो हुआ औ ग्वालबाल बने मेंढे, मिलकर खेलने लगे।

तिस समै वह असुर एक २ को उठा ले जाय औ पर्वत की गुफा में रख उसके मुंह पर आड़ी सिला धर मूंदके चला आवे। ऐसे जब सब को वहां रख आया औ अकेले श्रीकृष्ण रहे, तब ललकार कर बोला कि आज कंस का काज सारूंगा औ सब यदुवंसियों को मारूंगा। यों कह ग्वाल का भेष छोड़ सचमुच भेड़िया बन जो हरि पर झपटा तो उन्होंने उसको पकड़ गला घोंट मारे घूंसों के यों मार पटका कि जैसे यज्ञ के बकरे को मार डालते हैं।

१२

अक्रूर जी का वृन्दावन गमन

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि महाराज, कार्तिक वदी द्वादशी को तो केसी औ व्योमासुर मारा गया और त्रयोदशी भोर के तड़के ही अक्रूर कंस के पास आय विदा हो रथ पर चढ

अपने मन में यों विचारता वृन्दावन को चला कि ऐसा मैंने क्या जप, तप, यज्ञ, दान, तीरथ व्रत किया है, जिसके पुन्य से यह फल पाऊँगा। अपने जाने तो इस जन्म भर कभी हरि का नाम नहीं लिया, सदा कंस की संगति में रहा, भजन का भेद कहां पाऊं। हां अगले जन्म कोई बड़ा पुन्य किया हो, उस धर्म के प्रताप का फल हो तो हो जो कंस ने मुझे श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द के लेने को भेजा है, अब जाय उनका दरशन पाय जन्म सफल करूंगा।

हाथ जोरि कै पायन परिहौं। पुनि पग रेनु सीस धरिहौं॥
पाप हरन जेई पग आहि। सेवत श्रीब्रह्मादिक ताहि॥
जा पगरेनु अहिल्या तरी। जा पग तें गंगा निसरी॥
बलि छलि कियो इन्द्र को काज। ते पग हौं देखौंगो आज॥
मो कों सगुन होत हैं भलै। मृग के झुंड दाहने चले॥

महाराज, ऐसे विचार फिर अक्रूर अपने मन में कहने लगा कि कहीं मुझे वे कंस का दूत न समझें। फिर आप ही सोचा कि जिनका नाम अन्तरजामी है, वे मन की प्रीति मानते हैं औ सब मित्र शत्रु को पहचानते हैं, ऐसा कभी न समझेंगे वरन मुझे देखते ही गले लगाय दया कर अपना कोमल कंवल सा कर मेरे शीश पर धरेंगे। तब मैं उस चन्द्र वदन की शोभा इक टक निरख अपने नैन-चकोरों को सुख दूंगा, कि जिनका ध्यान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि सब देवता सदा धरते हैं।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा

कि महाराज, इसी भांति सोच विचार करते रथ हांके इधर से तो अक्रूरजी गये औ उधर बन से गौ चराय, ग्वालबाल समेत कृष्ण बलदेव भी आये तो इनसे उनसे वृन्दावन के बाहर ही भेंट भई। हरि छवि दूर से देखते ही अक्रूर रथ से उतर अति अकुलाय दौड़ उनके पाओं पर जा गिरा, औ ऐसा मगन हुआ कि मुंह से बोल न आया, महा आनन्द कर नैनों से जल बरसावने लगा, तब श्रीकृष्णजी उसे उठाय अति प्यार से मिल हाथ पकड़ घर लिवाय ले गये। वहां नन्दराय अक्रूरजी को देखते ही प्रसन्न हो उठकर मिले औ बहुत सा आदर मान किया, पांव धुलवाय आसन दिया।

लिये तेल मरदनियां आए। उबटि सुगन्ध चुपरि अन्हवाए॥
चौका पटा जसोदा दियो। षट्रस रुचि सों भोजन कियो॥

जब आचमन कर पान खाने बैठे तब नन्दजी उनसे कुशल-क्षेम पूछ बोले, कि तुम तो यदुवंशियों में बड़े साध हो औ वहां के लोगों की क्या गति है, सो सब भेद कहो। अक्रूरजी बोले—

जबते कंस मधुपुरी भयौ। तबते सबही कों दुख दयौ॥
पूछौ कहा नगर कुशलात। परजा दुखी होत है गात॥
जौ लौ है मथुरा में कंस। तौ लौं कहां बचै यदुवंस॥
पशु मेंढ़े छेरीन कौ, ज्यौं खटीक रिपु होइ।
त्यौं परजा को कंस है, दुख पावैं सब कोइ॥

इतना कह फिर बोले कि तुम तो कंस का ब्योहार जानते ही हो, हम अधिक क्या कहें।

१३
चतुर्भुज रूप का दर्शन

श्रीशुकदेवजी बोले कि पृथ्वीनाथ, जब नन्दजी बातें कर चुके तब अक्रूर को कृष्ण बलराम सैन से बुलाय अलग ले गये।

आदर कर पूछी कुशलात। कहौ चचा की बात॥
हैं वसुदेव देवकी नीके। राजा वैर परयो तिनही के॥
अति पापी है मामा कंस। जिन खोयौ सिगरौ यदुबंस॥

कोई यदुकुल का महारोग जन्म ले आया है, तिसी ने सब यदुवंशियों को सताया है। औ सच पूछो तो वसुदेव देवकी हमारे लिये इतना दुख पाते हैं, जो हमें न छिपाते तो वे इतना दुख न पाते। यों कह कृष्ण फिर बोले—

तुमसों कहा चलत उनि कह्यौ। तिन कौ सदा ऋनी हौं रह्यौ॥
करतु होयंगे सुरत हमारी। संकट में पावत दुख भारी॥

यह सुन अक्रूरजी बोले कि कृपानाथ, तुम सब जानते हो, क्या कहूँगा कंस की अनीति, विसकी किसी से नहीं है प्रीति। वसुदेव औ उग्रसेन को नित मारने का विचार किया करता है, पर वे आज तक अपनी प्रारब्ध से बच रहे हैं और जब से नारद मुनि आए आपके होने का सब समाचार बुझाय के कह गये है, तब से वसुदेवजी को बेड़ी हथकड़ी दे महादुख में रक्खा

है औ कल उसके यहां महादेव का यज्ञ है, औ धनुष धरा है, सब कोई देखने को आवेंगे, सो तुम्हें बुलाने को मुझे भेजा है यह कहकर, कि तुम जाय राम कृष्ण समेत नन्दराय को यज्ञ की भेट सहित लिवाय लाओ, सो मैं तुम्हें लेने को आया हूँ। इतनी बात अक्रूरजी से सुन राम कृष्ण ने आय नन्दराय से कहा—

कंस बुलाये हैं सुनो तात। कही अक्रूर चचा यह बात॥
गोरस मेंढ़े छेरी लेउ। धनुष यज्ञ है ताकों देउ॥
सग मिल चलौ साथले अपने। राज बुलाये रहत न बनें॥

जब ऐसे समुझाय बुझाय कर श्रीकृष्णचन्दजी ने नन्दजी से कहा, तब नन्दरायजी ने उसी समै ढंढोरिये को बुलवाय सारे नगर में यों कह डौंडी फिरवाय दी, कि कल सवेरे ही सब मिल मथुरा को जायंगे, राजा ने बुलाया है। इस बात के सुनने से भोर होते ही भेट ले ले सकल व्रजबासी आन पहुंचे औ नदजी भी दूध, दही, माखन, मेढ़े, बकरे, भैंसे ले सगड जुतवाय उनके साथ हो लिए और कृष्ण बलदेव भी अपने ग्वालबाल सखाओं को साथ ले रथ पर चढ़े।

आगे भये नन्द उपनन्द। सब पाछैं हलधर गोविन्द॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि पृथ्वीनाथ, एकाएकी श्रीकृष्ण का चलना सुन सब व्रज की गोपियां, अति घबराय व्याकुल हो घर छोड़ हड़बड़ाय उठ धाईं, और कुदती झखती गिरती पड़ती वहां आईं, जहां श्रीकृष्णचन्द का रथ था। आते ही रथ के

चारों ओर खड़ी हो हाथ जोड़ विनती कर कहने लगीं—हमें किसलिये छोड़ते हो व्रजनाथ, सर्वस दिया है तुम्हारे हाथ। साध की तो प्रीति कभी घटती नहीं, कर की सी रेखा सदा कर ही में रहती है, औ मूढ़ की प्रीति नहीं ठहरती, जैसे बालू की भीति। ऐसा तुम्हारा क्या अपराध किया है जो हमें पीठ दिये जाते हो। यों श्रीकृष्णचन्द को सुनाय फिर गोपियां अक्रूर की ओर देख बोलीं—

यह अक्रूर क्रूर है भारी। जानी कछू न पीर हमारी॥
जा बिन छिन सब होति अनाथ। ताहि ले चल्यो अपने साथ॥
कपटी क्रूर कठिन मन भयौ। नाम अक्रूर वृथा किन दयौ॥
है अक्रूर कुटिल मतिहीन। क्यों दाहत अबला आधीन॥

ऐसे कड़ी कड़ी बातें सुनाय, सोच संकोच छोड़, हरि का रथ पकड़ आपस में कहने लगीं—मथुरा की नारियां अति चंचल, चतुर, रूप गुन भरी हैं, उनसे प्रीति कर गुन औ रस के बस हो वहां ही रहेंगे, विहारी, तब काहे को करेंगे सुरत हमारी॥ उन्हीं के बड़े भाग हैं जो प्रीतम के संग रहेंगी, हमारे जप तप करने में ऐसी क्या चूक पड़ी थी, जिससे श्रीकृष्णचन्द बिछड़ते हैं। यों आपस में कह फिर हरि से कहने लगीं कि तुम्हारा तो नाम है गोपीनाथ, किसलिए नहीं ले चलते हमें अपने साथ।

तुम बिन छिन छिन कैसे कटै। पलक ओट भए छाती फटै॥
हित लगाय क्यों करत बिछोह। निठुर निर्दई धरत न मोह॥
ऐसे तहां आय सुन्दरी। सोचै दुख समुद्र में परी॥

चाहि रही इकटक हरि ओर। ठगीं मृगी सी चन्द चकोर॥
परहिं नैन ते आंसू टूट। रहीं बिथुरि लट मुख पर छूट॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि राजा, उस समय गोपियों की तो यह दशा थी, जो मैंने कहा, औ जसोदा रानी ममता कर पुत्र को कंठ लगाय रो रो अति प्यार से कहती थीं कि बेटा, जै दिन में तुम वहां से फिर आओ, तै दिन के लिये कलेऊ ले जाओ, तहां जाय किसी से प्रीति मत कीजो, बेग आय अपनी जननी को दरशन दीजो। इतनी बात सुन श्रीकृष्ण रथसे उतर सबको समझाय बुझाय, मां से बिदा होय दंडवत कर असीस ले, फिर रथ पर चढ़ चले, तिस काल इधर से तो गोपियों समेत जसोदाजी अति अकुलाय रो २ कृष्ण २ कह पुकारती थीं औ उधर से श्रीकृष्ण रथ पर खड़े पुकार पुकार २ कहे जाते थे कि तुम घर जाओ किसी बात की चिंता मत करो, हम पांच चार दिन में ही फिर कर आते हैं।

ऐसे कहते २ औ देखते २ जब रथ दूर निकल गया औ धूलि आकाश तक छाई, तिसमें रथ की ध्वजा भी नहीं दिखाई, तब निराश हो एक बेर तो सब की सब नीर बिन मीन की भांति तड़फड़ाय मूर्छा खाय गिरीं, पीछे कितनी एक बेर के चेत कर उठीं औ अवध की आस मन में धर धीरज कर इधर जसोदाजी तो सब गोपियों को ले वृन्दावन को गईं औ इधर श्रीकृष्णचन्द्र सब समेत चले २ यमुना तीर पर आ पहुंचे तहां ग्वालवालों ने जल पिया औ हरि ने भी एक बड़

की छांहमें रथ खड़ा किया। जब अक्रूरजी न्हाने का विचार कर रथ से उतरे तब श्रीकृष्णचन्द्र ने नन्दराय से कहा कि आप सब ग्वालबालों को ले आगे चलिये, चाचा अक्रूर स्नान करलें तो पीछे से हम भी आ मिलते हैं।

यह सुन सबको ले नन्दजी आगे बढ़े औ अक्रूर कपड़े खोल हाथ पांव धोय आचमन कर तीर पर जाय, नीर में बैठ डुबकी ले पूजा, तर्पन, जप, ध्यान कर फिर डुबकी मार आंख खोल जल में देखें तो वहां रथ समेत श्रीकृष्ण दृष्टि आए।

फिर उन देख्यो सीस उठाय। तिहिं ठां बैठे हैं यदुराय॥
करै अचम्भौ हिये विचारि। वे रथ ऊपर दूर मुरारि॥
बैठे दोउ वर की छाह। तिनहीं को देखो जलमांह॥
बाहर भीतर भेद न लहों। सांचौ रूप कौन सों कहों॥

महाराज, अक्रूरजी तो एक ही मूरत बाहर भीतर देख २ सोचते ही थे, कि इस बीच पहले तो श्रीकृष्णचन्द्रजी ने चतुर्भुज हो शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारन कर, सुर, मुनि, किन्नर गन्धर्व, आदि सब भक्तों समेत जल में दरशन दिया औ पीछे शेषशाही हो। तो अक्रूर देख और भी भूल रहा।

१४

शंखासुर—वध

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि राजा, रानियां तो चौरानियों समेत वहां से न्हाय धोय रोय राज मन्दिर को गईं, औ श्रीकृष्ण

बलराम वसुदेव देवकी के पास आय, उनके हाथ पांव की हथकड़ियां बेड़ियां काट दंडवत कर हाथ जोड़ सनमुख खड़े हुए। तिस समै प्रभु का रूप देख वसुदेव देवकी को ज्ञान हुआ तो उन्होंने अपने जी में निश्चैकर जाना कि ये दोनों विधाता हैं। असुरों को मार भूमि का भार उतारने को संसार में औतार ले आये हैं।

जब वसुदेव देवकी ने यों जी में जाना तब अंतरजामी हरि ने अपनी माया फैलाय दी, उसने उनकी वह मति हर ली। फिर तो विन्होंने इन्हें पुत्र कर समझा कि इतने में श्रीकृष्णचंद अति दीनता कर बोले—

तुम बहु दिवस लह्यो दुख भारी। करन रहे अति सुरत हमारी॥

इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं क्योंकि जब से आप हमें गोकुल में नंद के यहां रख आये तब से परवस थे, हमारा वस न था, पर मन में सदा यह आता था कि हमने माता-पिता को न कभी कुछ सुख दिया, न हमहो माता पिताका सुख देखा, वृथा जन्म पराये यहां खोया, विन्होंने हमारे लिये अति विपति सही, हमसे कुछ विनकी सेवा न भई, संसार में सामर्थी वेई हैं जो मां बाप की सेवा करते हैं। हम विनके ऋनी रहे, टहल न कर सके।

पृथवीनाथ, जब श्रीकृष्णजी ने अपने मन का खेद यों कह सुनाया तब अति आनंद कर उन दोनों ने इन दोनों को हित कर कंठ लगाया औ सुख मान पिछला दुख सब गंवाया।

ऐसे मात पिता को सुख दे दोनों भाई वहां से चले २ उग्रसेन के पास आये औ हाथ जोड़ कर बोले—

नानाजू अब कीजे राज। शुभ नक्षत्र नीकौ दिन आज॥

इतना हरिमुख से निकलते ही राजा उग्रसेन उठकर श्रीकृष्णचंद के पांओ पर गिर कहने लगे, कि कृपानाथ मेरी बिनती सुन लीजिये, जैसे आपने सब असुरों समेत कंस महादुष्ट को मार भक्तों को सुख दिया, तैसे ही सिंहासन पै बैठ अब मधुपुरीका राज कर प्रजा पालन कीजिये। प्रभु बोले—महाराज, यदुबंसियों को राज का अधिकार नहीं, इस बात को सब कोई जानता है, जब राजा जजाति बूढ़े हुए तब अपने पुत्र यदु को उन्होंने बुलाकर कहा कि अपनी तरुन अवस्था मुझे दे और मेरा बुढ़ापा तू ले। यह सुन उसने अपने जी में विचारा कि जो मैं पिता को युवावस्था दूंगा तो यह तरुन हो भोग करेगा, इसमें मुझे पाप होगा, इससे नहीं करना ही भला है। यों सोच समझ के उसने कहा कि पिता, यह तो मुझसे न हो सकेगा।

इतनी बात के सुनते ही राजा जजाति ने क्रोध कर यदु को श्राप दिया कि जा तेरे वंस में राजा कोई न होगा।

इस बीच पुरु नाम उनका छोटा बेटा सनमुख आ हाथ जोड़ बोला—पिता, अपनी वृद्ध अवस्था मुझे दो और मेरी तरुनाई तुम लो। यह किसी काम की नहीं, जो आपके काम आवे तो इससे उत्तम क्या है। जब पुरु ने यों कहा तब राजा जजाति

प्रसन्न हो अपनी वृद्ध अवस्था दे उसकी युवा अवस्था ले बोले, कि तेरे कुल में राज-गादी रहेगी। इससे नानाजी हम यदुवंसी हैं हमें राज करना उचित नहीं।

करौ बैठ तुम राज, दूर करहु संदेह सब।
हम करि हैं सब काज, जो आयसु देहौ हमें।
जो न मानि है आन तुम्हारी। ताहि दंड करिहैं हम भारी॥
और अनुचित सोच न कीजै। नीति सहित परजहि सुख दीजै॥
यादव जिते कंस के त्रास। नगर छांड़ि कै गये प्रवास॥
तिनको अब कर खोज मंगाओ। सुख दै मथुरा मांझ बसाओ॥
बिप्र धेनु सुर पूजन कीजै। इनकी रक्षा में चित दीजै॥

इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि बोले कि धर्मावतार, महाराजाधिराज भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द ने उग्रसेन को अपना भक्त जान ऐसा समझाय सिंहासन पर बिठाय राजतिलक दिया, और छत्र फिरवाय दोनों भाइयों ने अपने हाथों चंवर किया।

उस काल सब नगर के वासी अति आनन्द में मगन हो धन्य धन्य कहने लगे, औ देवता फूल बरसावने। महाराज, यों उग्रसेन को राज-पाट पर बिठाय दोनों भाई बहुत से वस्त्र आभूषण अपने साथ लिवाये वहां से चले चले नन्दरायजी के पास आये और सनमुख हाथ जोड़ खड़े हो अति दीनता कर बोले—हम तुम्हारी क्या बड़ाई करें जो सहस्र जीभ होय तौ भी तुम्हारे गुन का बखान हम से न हो सके। तुमने

हमें अति प्रीति कर अपने पुत्र की भांति पाला। सब लाड़ प्यार किया और जसोदा मैया भी बड़ा स्नेह करतीं, अपना हित हमहीं पर रखतीं, सदा निज पुत्र समान जानतीं, मन से भी हमें पराया कर न मानतीं।

ऐसे कह फिर श्रीकृष्णचंद बोले कि हे पिता, तुम यह बात सुनकर कुछ बुरा मत मानो, हम अपने मन की बात कहते हैं, कि माता पिता तो तुम्हें ही कहेंगे पर अब कुछ दिन मथुरा में रहेंगे, अपने जातभाइयों को देख यदुकुल की उत्पत्ति सुनेंगे, और अपने माता पिता से मिल उन्हें सुख देंगे। क्योंकि तिन्होंने हमारे लिए बड़ा दुख सहा है जो हमें तुम्हारे यहां न पहुंचा आते तो वे दुख न पाते। इतना कह वस्त्र आभूषन नन्द महर के आगे धर प्रभु ने निरमोही हो कहा—

मैया सों पालागना कहियो। हम पै प्रेम करे तुम रहियो॥

इतनी बात श्रीकृष्ण के मुंह से निकलते ही नन्दराय तो अति उदास हो लगे लम्बी सांसें लेने, औ ग्वालबाल विचारकर मन ही मन यों कहने कि यह क्या अचम्भे की बात कहते हैं, इससे ऐसा समझ में आता है कि अब ये कपट कर जाया चाहते हैं, नहीं तो ऐसे निठुर वचन न कहते। महाराज, निदान, उनमें से सुदामा नाम सखा बोला, भैया कन्हैया, अब मथुरा में तेरा क्या काम है, जो निठुराई कर पिता को छोड़ यहां रहता है। भला किया कंस को मारा, सब काम संवारा, अब नन्द के साथ हो लीजिये, औ वृन्दावन में चल राज कीजिये, यहां का

राज देख मन में मत ललचाओ, वहां का सुख न पाओगे।

सुनो, राज देख मूरख भूलते हैं और हाथी घोड़े देख फूलते हैं। तुम वृन्दाबन छोड़ कहीं मत रहो, यहां बसंत ऋतु रहती है, सघन वन औ यमुना की सोभा मन से कभी नहीं बिसरती। भाई, जो यह सुख छोड़ हमारा कहा न माने, माता पिता की माया तज यहां रहोगे, तो इसमें तुम्हारी क्या बड़ाई होगी। उग्रसेन की सेवा करोगे औ रात दिन चिंता में रहोगे, जिसे तुमने राज दिया तिसी के आधीन होना होगा। इससे अब उत्तम यही है कि नन्दराय को दुख न दीजे, इनके साथ हो लीजे।

ब्रज वन नदी बिहार विचारौ। गायन कों मन तें न विसारौ॥
नहीं छांड़ि हैं हम ब्रजनाथ। चलिहैं सबै तिहारे साथ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, ऐसे कितनी एक बातें कह दस बीसेक सखा श्रीकृष्ण बलराम जी के साथ रहे, औ तिन्होंने नन्दराय से जुझाकर कहा कि आप सब को ले निस्संदेह आगे बढ़िये, पीछे से हम भी इन्हें साथ लिये चले आते हैं। इतनी बात के सुनते ही—

ब्याकुल सबै अहीर, मानहु पन्नग के डसे।
हरि मुख लखत अधीर, ठाढ़े काढ़े चित्र से॥

उस समय बलदेव जी नन्दराय को अति दुखित देख समझाने लगे कि पिता, तुम इतना दुख क्यों पाते हो, थोड़े एक दिनों

में यहां का काज कर हम भी आते हैं, आपको आगे इसलिये बिदा करते हैं कि माता हमारी अकेली व्याकुल होती होंगी, तुम्हारे गये से उन्हें कुछ धीरज होगा। नन्द जी बोले कि बेटा, एक बार तुम मेरे साथ चलो, फिर मिलकर चले आइयो।

ऐसे कह अति विकल हो, रहे नन्द गहि पाय।
भई छीन दुति मंद मति, नैनन जल न रहाय ॥

महाराज जब माया रहित श्रीकृष्णचन्द्रजी ने ग्वालबालों समेत नन्द महर को महाव्याकुल देखा, तब मन में विचारा कि ये मुझसे बिछड़ेंगे तो जीते न बचेंगे, त्योंही उन्होंने अपनी उस माया को छोड़ा जिसने सारे संसार को भुला रक्खा है, उनने आते ही नन्दजी को सब समेत अज्ञान किया। फिर प्रभु बोले कि पिता, तुम इतना क्यों पछताते हो, पहले यही बिचारो जो मथुरा औ वृन्दावन में अन्तर ही क्या है, तुमसे हम कहीं दूर तो नहीं जाते जो इतना दुख पाते हो, वृन्दावन के लोग दुखी होंगे, इसलिए तुम्हें आगे भेजते हैं।

जब ऐसे प्रभु ने नन्द महर को समझाया तब वे धीरज धर हाथ जोड़ बोले—प्रभु, जो तुम्हारे ही जी में यों आया तो मेरा क्या बस है, जाता हूँ, तुम्हारा कहा टाल नहीं सकता। इतना वचन नन्दजी के मुख से निकलते ही, हरि ने सब गोप ग्वाल बालों समेत नन्दराय को तो वृन्दावन बिदा किया औ आप कई एक सखाओं समेत दोनों भाई मथुरा में रहे। उस काल नन्द सहित गोप ग्वाल—

चले सकल मग सोचत भारी। हारे सर्वसु मनहुं जुआरी॥
काहू सुधि काहू बुधि नाहीं। लटपट चरन परत मग माहीं॥
जात वृंदावन देखत मधुबन। विरह बिथा बाढ़ी व्याकुल तन॥

इस रीति से त्यों ज्यों कर वृन्दावन पहुंचे। इनका आना सुनते ही जसोदा रानी अति अकुलाकर दौड़ी आई, औ राम-कृष्ण को न देख महाव्याकुल हो नंदजी से कहने लगीं—

अहो कंत सुत कहा गंवाए। बसन अभूषन लीन्हें आए॥
कंचन फेंक कांच घर राख्यो। अमृत छांड़ि मूढ़ विष चाख्यो॥
पारस पाय अंध जों डारै। फिरि गुन सुनहिं कपारहि मारै॥

ऐसे तुमने भी पुत्र गंवाया औ बसन आभूषन उनके पलटे ले आए। अब उन बिन धन ले क्या करोगे। हे मूरख कंत, जिनके पलक ओट भये छाती फटे, कहो बिन बिन दिन कैसे कटे। जब उन्होंने तुमसे बिछड़ने को कहा, तब तुम्हारा हिया कैसे रहा।

इतनी बात सुन नंदजी ने बड़ा दुख पाया और नीचा सिर कर यह बचन सुनाया, कि सच है, ये वस्त्र अलंकार श्रीकृष्ण ने दिये पर मुझे यह सुध नहीं, किसने लिये, और मैं कृष्ण की बात क्या कहूँगा, सुन कर तू भी दुख पावेगी।

कंस मार मो पै फिर आए। प्रीति हरन कहि बचन सुनाए॥
बसुदेव केर पुत्र वे भए। कर मनुहार हमारी गए॥
हौं तब महरि अचंभे रह्यो। पोषन भरन हमारो कह्यो॥
अब न महरि हरि सों सुत कहियों। ईश्वर जानि भजन करि रहियो॥

उसे तो हमने पहले ही नारायण जाना था, पर माया बस

पुत्र कर माना। महाराज, जब नंदरायजी ने सच सच बातें श्रीकृष्ण की कही कह सुनाईं, तिस समय माया बस हो जसोदा रानी कभी तो प्रभु को अपना पुत्र जान मन ही मन पछताय व्याकुल हो हो रोती थीं, और इसी रीति से जब सब वृन्दाबनवासी क्या स्त्री क्या पुरुष हरि के प्रेम रंग राते, अनेक अनेक प्रकार की बातें करते थे, सो मेरी सामर्थ नहीं जो मैं बरनन करूं, इससे अब मथुरा की लीला कहता हूँ, तुम चित दे सुनो।

जब हलधर औ गोविंद नंदराय को बिदा कर वसुदेव देवकी के पास आए तब तिन्होंने इन्हें देख दुख भुलाय ऐसे सुख माना, कि जैसे तपी तप कर अपने तप का फल पाय सुख माने। आगे वसुदेवजी ने देवकी से कहा कि कृष्ण बलदेव पराये यहां रहे हैं, इन्होंने तिनके साथ खाया पिया है औ अपनी जात को व्योहार भी नहीं जानते, इससे अब उचित है कि पुरोहित को बुलाय पूछें, जो वह कहैं सो करें। देवकी बोली—बहुत अच्छा।

तब वसुदेवजी ने अपने कुलपूज गर्ग मुनि को बुला भेजा। वे आए। उनसे इन्होंने अपने मन का संदेह सब कह के पूछा, कि महाराज, अब हमें क्या करना उचित है सो दया कर कहिये। गर्ग मुनि बोले—पहले सब जात भाइयों को नौत बुलाइये, पीछे जातकर्म कर राम कृष्ण को जनेऊ दीजे।

इतना वचन पुरोहित के मुख से निकलते ही वसुदेवजी ने नगर में नौता भेज सब ब्राह्मन और यदुवंशियों को नौत बुलाया वे आए, तिन्हें अति आदर मान कर बिठाया।

उस काल पहले तो वसुदेवजी ने विधि से जातकर्म कर जन्मपत्री लिखवाय, दस सहस्र गौ, सोने के सींग, तांबे की पीठ, रूपे के खुर समेत, पाटंबर उढ़ाय, ब्राह्मनों को दीं, जो श्रीकृष्णजी के जन्म समय संकल्पी थीं। पीछे मंगलाचार करवाय वेद की विधि से सब रीति भांति कर राम कृष्ण का यज्ञोपवीत किया, औ उन दोनों भाइयों को कुछ दे विद्या पढ़ने भेज दिया।

वे चले चले अवंतिकापुरी का एक सांदीपन नाम ऋषि महापंडित औ बड़ा ज्ञानवान काशीपुरी में था, उसके यहां आए। दंडवत कर हाथ जोड़ सनमुख खड़े हो अति दीनता कर बोले–

हम पर कृपा करौ ऋषिराय, विद्या दान देहु मन लाय ॥

महाराज, जब श्रीकृष्ण बलरामजी ने सांदीपन ऋषि से यों दीनता कर कहा, तब तो विन्होंने इन्हें अति प्यार से अपने घर में रक्खा औ लगे बड़ी कृपा कर पढ़वाने। कितने एक दिनों में ये चार वेद, उपवेद, छः शास्त्र, नौ व्याकरन, अठारह पुरान, मंत्र-जंत्र, तंत्र, आगम, ज्योतिष, वैदिक, कोक, संगीत, पिंगल पढ़ चौदह विद्या निधान हुए। तब एक दिन दोनों भाइयों ने हाथ जोड़ अति विनती कर गुरु से कहा कि महाराज, कहा है जो अनेक जन्म औतार ले बहुतेरा कुछ दीजिए तौ भी विद्या का पलटा न दिया जाय, पर आप हमारी शक्ति देख गुरुदच्छिना की आज्ञा कीजे, तो हम यथा शक्ति दे असीस ले अपने घर जाएं।

इतनी बात श्रीकृष्ण बलराम के मुख से निकलते ही सांदीपन ऋषि वहां से उठ सोच बिचार करता घर भीतर गया, औ विसने

अपनी स्त्री से इनका भेद यों समझा कर कहा, कि ये राम कृष्ण जो दोनों बालक हैं सो आदि पुरुष अविनाशी हैं, भक्तों के हेतु अवतार ले भूमि का भार उतारने को संसार में आए हैं, मैंने इनकी लीला देख यह भेद जाना क्योंकि जो पढ़ पढ़ फिर फिर जन्म लेते हैं, सो भी विद्यारूपी सागर की थाह नहीं पाते, औ देखो इस बाल अवस्था से थोड़े ही दिनों में ये ऐसे अगम अपार समुद्र के पार हो गये। ये जो किया चाहैं सो पल भर में कर सकते हैं इतना कह फिर बोले—

इन पै कहा मांगिये नारि। सुन के सुन्दरि कहै विचारि॥
मृतक पुत्र मांगौ तुम जाय। जो हरि हैं तौ देहैं ल्याय॥

ऐसे घर में से विचार कर, सांदीपन ऋषि स्त्री सहित बाहर आय श्रीकृष्ण बलदेवजी के सनमुख कर जोड़ दीनता कर बोले-महाराज, मेरे एक पुत्र था, तिसे साथ ले मैं कुटुम्ब समेत एक पर्व में समुद्र न्हाने गया था, जो वहां पहुंच कपड़े उतार सब समेत नीर में न्हाने लगा, तों सागर की एक बड़ी लहर आई, जिसमें मेरा पुत्र बह गया, सो फिर न निकला। किसी मगर मच्छ ने निगल लिया. जिसका दुख मुझे बड़ा है। जो आप गुरुदछिना दिया चाहते हैं तो वही सत ला दीजे, औ हमारे मन का दुख दूर कीजे।

यह सुन श्रीकृष्ण बलराम गुरुपत्नी औ गुरु को प्रनाम कर, रथ पर चढ़ उनके पुत्र लाने के निमित्त समुद्र की ओर चले, औ चले चले कितनी एक बेर में तीर पर जा पहुंचे। इन्हें क्रोधवान

आते देख सागर भयमान हो मनुष शरीर धारन कर बहुत सी भेंट ले नीर से निकल तीर पर डरता कांपता इनके सोंही आ खड़ा हुआ औ भेंट रख दंडवत कर हाथ जोड़ सिर नवाय अति बिनति कर बोला—

बड़ौ भाग प्रभु दरसन दीयौ। कौन काज इत आवन भयौ॥

श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हमारे गुरुदेव यहां कुनबे समेत न्हाने आए थे, तिनके पुत्र को जो तू तरंग से बहाय ले गया है, तिसे ला दे, इसीलिये हम यहां आये हैं—

सुन समुद्र बोल्यौ सिर नाय। मैं नहिं लानौ वाहि बहाय॥
तुम सबही के गुरु जगदीश। राम रूप बांध्यो हो ईस॥

तभी से मैं बहुत डरता हूँ, औ अपनी मर्य्याद से रहता हूँ। हरि बोले—जो तूने नहीं लिया तो यहां से और कौन उसे ले गया। समुद्र ने कहा—कृपानाथ, मैं इसका भेद बताता हूँ कि एक संखासुर नाम असुर संख रूप मुझ में रहता है, सो सब जलचर जीवों को दुख देता है, औ जो कोई तीर पै न्हाने को आता है तिसे पकड़ कर ले जाता है। कदाचित वह आपके गुरुसुत को ले गया होय तो मैं नहीं जानता, आप भीतर पैठ देखिवे।

यों कह कृष्ण धसे मन लाय। मांझ समुन्दर पहुंचे जाय॥
देखत ही संखासुर मारयो। पेट फाड़कै बाहर डारयो॥
तामें गुरु को पुत्र न पायौ। पछताने बलभद्र सुनायो॥

कि भैया, हमने इसे बिन काज मारा। बलरामजी बोले—

अपनी स्त्री से इनका भेद यों समझा कर कहा, कि ये राम कृष्ण जो दोनों बालक हैं सो आदि पुरुष अविनाशी हैं, भक्तों के हेतु अवतार ले भूमि का भार उतारने को संसार में आए हैं, मैंने इनकी लीला देख यह भेद जाना क्योंकि जो पढ़ पढ़ फिर फिर जन्म लेते हैं, सो भी विद्यारूपी सागर की थाह नहीं पाते, औ देखो इस बाल अवस्था से थोड़े ही दिनों में ये ऐसे अगम अपार समुद्र के पार हो गये। ये जो किया चाहैं सो पल भर में कर सकते हैं इतना कह फिर बोले—

इन पै कहा मांगिये नारि। सुन के सुन्दरि कहै बिचारि॥
मृतक पुत्र मांगौ तुम जाय। जो हरि हैं तौ देहैं ल्याय॥

ऐसे घर में से विचार कर, सांदीपन ऋषि स्त्री सहित बाहर आय श्रीकृष्ण बलदेवजी के सनमुख कर जोड़ दीनता कर बोले- महाराज, मेरे एक पुत्र था, तिसे साथ ले मैं कुटुम्ब समेत एक पर्व में समुद्र न्हाने गया था, जो वहां पहुंच कपड़े उतार सब समेत तीर में न्हाने लगा, तों सागर की एक बड़ी लहर आई, जिसमें मेरा पुत्र बह गया, सो फिर न निकला। किसी मगर मच्छ ने निगल लिया. तिसका दुख मुझे बड़ा है। जो आप गुरुदछिना दिया चाहते हैं तो वही सुत ला दीजे, औ हमारे मन का दुख दूर कीजे।

यह सुन श्रीकृष्ण बलराम गुरुपत्नी औ गुरु को प्रनाम कर, रथ पर चढ़ उनके पुत्र लाने के निमित्त समुद्र की ओर चले, औ चले चले कितनी एक बेर में तीर पर जा पहुंचे। इन्हें क्रोधवान

आते देख सागर भयमान हो मनुष शरीर धारन कर बहुत सी भेंट ले नीर से निकल तीर पर डरता कांपता इनके सोंही आ खड़ा हुआ औ भेंट रख दंडवत कर हाथ जोड़ सिर नवाय अति बिनति कर बोला—

बड़ौ भाग प्रभु दरसन दीयौ। कौन काज इत आवन भयौ॥

श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हमारे गुरुदेव यहां कुनवे समेत न्हाने आए थे, तिनके पुत्र को जो तू तरंग से बहाय ले गया है, तिसे ला दे, इसीलिये हम यहां आये हैं—

सुन समुद्र बोल्यौ सिर नाय। मैं नहिं लानौ वाहि बहाय॥
तुम सबही के गुरु जगदीश। राम रूप बांध्यो हो ईस॥

तभी से मैं बहुत डरता हूँ, औ अपनी मर्य्याद से रहता हूँ। हरि बोले—जो तूने नहीं लिया तो यहां से और कौन उसे ले गया। समुद्र ने कहा—कृपानाथ, मैं इसका भेद बताता हूँ कि एक संखासुर नाम असुर संख रूप मुझ में रहता है, सो सब जलचर जीवों को दुख देता है, औ जो कोई तीर पै न्हाने को आता है तिसे पकड़ कर ले जाता है। कदाचित वह आपके गुरुसुत को ले गया होय तो मैं नहीं जानता, आप भीतर पैठ देखिये।

यों कह कृष्ण धसे मन लाय। मांझ समुन्दर पहुंचे जाय॥
देखत ही संखासुर मारयो। पेट फाड़कै बाहर डारयो॥
तामें गुरु को पुत्र न पायौ। पछताने बलभद्र सुनायो॥

क भैया, हमने इसे बिन काज मारा। बलरामजी बोले—

कुछ चिंता नहीं, अब आप इसे धारन कीजे। यह सुन हरि ने उस संख को अपना आयुध किया। आगे दोनों भाई वहां से चले चले यम की पुरी जा पहुंचे, जिसका नाम है संयमनी, औ धर्मराज जहां का राजा है।

इनको देखते ही धर्मराज अपनी गादी से उठ आगे आय अति आवभगति कर ले गया। सिंहासन पर बैठाय पांव धो चरनामृत ले बोला—धन्य यह ठौर, धन्य यह पुरी, जहां आकर प्रभु ने दरशन दिया औ अपने भक्तों को कृतारथ किया, अब कुछ आज्ञा कीजे जो सेवक पूरन करे। प्रभु ने कहा कि हमारे गुरु पुत्र को ला दे।

इतना वचन हरि के मुख से निकलते ही धर्मराज उठ जाकर बालक को ले आया, और हाथ जोड़ बिनती कर बोला कि कृपानाथ, आपकी कृपा से यह बात मैंने पहले ही जानी थी कि आप गुरुसुत के लेने को आवेंगे, इसलिये मैंने यत्न कर रक्खा है, इस बालक को आज तक जन्म नहीं दिया, महाराज, ऐसे कह धर्मराज ने बालक हरि को दिया। प्रभु ने ले लिया औ तुरन्त उसे रथ पर बैठाय वहां से चल कितनी एक बेर में जा गुरु के सोंही खड़ा किया, और दोनों भाइयों ने हाथ जोड़ के कहा—गुरुदेव, अब क्या आज्ञा होती है।

इतनी बात सुन औ पुत्र को देख, सांदीपन ऋषि ने अति प्रसन्न हो श्रीकृष्ण बलरामजी को बहुत सी असीसें देकर कहा—

अब हौं मांगों कहा मुरारी। दीना मोंहि पुत्र सुख भारी॥

अति जस तुम सा सिष्य हमारा। कुशलक्षेम अब घरहि पधारो॥

जब ऐसे गुरु ने आज्ञा की तब दोनों भाई बिदा हो, दंडवत कर, रथ पर बैठ वहां से चले चले मथुरा पुरी के निकट आए। इनका आना सुन राजा उग्रसेन वसुदेव समेत नगर निवासी क्या स्त्री क्या पुरुष सब उठ धाये, औ नगर के बाहर आय भेटकर अति सुख पाय बाजे गाजे से पाटम्बर के पांवड़े डालते प्रभु को नगर में ले गये। उस काल घर घर मंगलाचार होने लगे औ बधाई बाजने।

---

(१५)
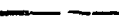
कालयवन-वध तथा मुचकुन्द की कथा

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, ब्रजमंडल में आते ही श्रीकृष्णचंद ने बलरामजी को तो मथुरा में छोड़ा औ आप रूप सागर, जगत उजागर, पीतांबर पहने, पीतपट ओढ़े सब सिंगार किये, कालयवन के दल में जाय उसके सन्मुख हो निकले। वह इन्हें देखते ही अपने मन में कहने लगा कि हो न हो यही कृष्ण है, नारदमुनि ने जो चिन्ह बताये थे सो सब इसमें पाये जाते हैं, इन्हीने कंसादि असुर मारे, जरासंध की सब सेना हनी। ऐसे मन ही मन विचार—

कालयवन यों कहे पुकारि। काहे भागे जात मुरारि॥
आये परयो अब मोसों काम। ठाढ़े रहौ करौ संग्राम॥

जरासंध हों नाहीं कंस। यादवकुल को करा विध्वंस ॥

हे राजा, यों कह कालयवन अति अभिमान कर अपनी सब सेना को छोड़ अकेला श्रीकृष्णचंद के पीछे धाया, पर उस मूरख ने प्रभु का भेद न पाया। आगे आगे तो हरि भाजे जाते थे औ एक हाथ के अंतर से पीछे पीछे वह दौड़ा जाता था। निदान भागते भागते जब अनेक दूर निकल गये तब प्रभु एक पहाड़ की गुफा में बढ़ गये, वहां जा देखें तो एक पुरुष सोया पड़ा है। ये झट अपना पीताम्बर उसे उढ़ाय आप अलग एक ओर छिप रहे। पीछे से कालयवन भी दौड़ता हांफता उस अति अंधेरी कंधरा में जा पहुंचा, औ पीतांबर ओढ़े तिस पुरुष को सोता देख इसने अपने जी में जाना कि यह कृष्ण ही छलकर सो रहा है।

महाराज, ऐसे मन ही मन विचार क्रोध कर उस सोते हुए को एक लात मार कालयवन बोला—अरे कपटी, क्या मिसकर साधु की भांति निचिंताई से सो रहा है, उठ, मैं तुझे अबही मारता हूँ। यों कह इसने उसके ऊपर से पीतांबर झटक लिया। वह नींद से चौंक पड़ा और जों तिसने इसकी ओर क्रोध कर देखा तों यह जल बल भस्म होगया। इतनी बात के सुनते राजा परीक्षित ने कहा—

यह शुकदेव कहौ समुझाय। को वह रह्यौ कन्दरा जाय ॥
ताकि दृष्टि भस्म क्यों भयौ। काने वाहि महा बर दयौ ॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले पृथीनाथ, इक्ष्वाकुवंशी क्षत्री मानधाता का बेटा मुचकुंद अतिबली महाप्रतापी जिसका अरिदल दलन

जस छाय रहा नौखंड, एक समै सब देवता असुरों के सताये निपट घबराये, मुचकुंद के पास आये, औ अति दीनता कर उन्होंने कहा—महाराज, असुर बहुत बढ़े, अब तिनके हाथ से बच नहीं सकते, वेग हमारी रक्षा करो। यह रीति परंपरा से चली आई है कि जब जब सुर मुनि ऋषि अबल हुए हैं, तब तब उनकी सहायता क्षत्रियों ने करी है।

इनकी बात के सुनते ही मुचकुंद उनके साथ हो लिया, औ जाके असुरों से युद्ध करने लगा। इसमें लड़ते लड़ते कितने ही जुग बीत गये तब देवताओं ने मुचकुंद से कहा कि महाराज, आपने हमारे लिए बहुत श्रम किया अब कहीं बैठ विश्राम लीजिये औ देह को सुख दीजिये।

बहुत दिननि कीनौ संग्राम। गयो कुटुम्ब सहित धन धाम॥
रह्यौ न कोई तहां तिहारौ। ताते अब निज घरु पग धारौ॥

और जहां तुम्हारा मन माने तहां जाओ। यह सुन मुचकुंद ने देवताओं से कहा—कृपानाथ, मुझे कहीं कृपा कर ऐसो एकांत ठौर बताइये कि जहां जाय मैं निचंताई से सोऊं औ कोई न जगावे। इतनी बात के सुनते ही प्रसन्न हो देवताओं ने मुचकुंद से कहा कि महाराज, आप धौलागिरि पर्वत की कंदरा में जाय सयन कीजिये, वहां तुम्हें कोई न जगावेगा, औ जो कोई जाने अनजाने वहां जाके तुम्हें जगावेगा, तो वह देखते ही तुम्हारी दृष्टि से जल बल राख हो जावेगा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा कि महाराज ऐसे देवताओं से वर पाय मुचकुंद तिस गुफा सो रहा

था। इससे उसकी दृष्टि पड़ते ही कालयवन जलकर छार होगया। आगे करुना निधान कान्ह भक्तहितकारी ने मेघबरन, चंदमुख, कंवलनैन, चतुर्भुज हो शंख, चक्र, गदा, पद्म, लिये, मोरमुकुट, मकराकृत, कुण्डल, बनमाला औ पीतांबर पहरे मुचकुंद को दरसन दिया। प्रभु का स्वरूप देखते ही वह अष्टांग प्रनाम कर खड़ा हो हाथ जोड़ बोला कि कृपानाथ, जैसे आपने इस महा अंधेरी कंदरा में आय उजाला कर तम दूर किया, तैसे दया कर अपना नाम भेद बताय मेरे मन का भी भरम दूर कीजै।

श्रीकृष्णचंद बोले कि मेरे तो जन्म कर्म और गुन हैं घने, वे किसी भांति गने न जायं, कोई कितना हो गने। पर मैं इस जन्म का भेद कहता हूँ सो सुनो कि अब के वसुदेव के यहां जन्म लिया इससे वासुदेव मेरा नाम हुआ औ मथुरापुरी में सब असुरों समेत कंस को मैंने ही मार भूमि का भार उतारा, औ सत्रह वेर तेईस तेईस अक्षौहिनी सेना ले जरासंध युद्ध करने को चढ़ि आया, सो भी मुझी से हारा और यह कालयवन तीन करोड़ म्लेच्छ की भीड़ भाड़ ले लड़ने को आया था सो तुम्हारी दृष्टि से जल मरा। इतनी बात प्रभु के मुख से निकलते ही मुचकुंद को ज्ञान हुआ तो बोला कि महाराज, आपकी माया अति प्रबल है, उसने सारे संसार को मोहा है, इसीसे किसी की कुछ सुध बुद्धि ठिकाने नहीं रहती।

करत कर्म सब सुख के हेत। ताते भारी दुख सहि लेत॥
चुभे हाड़ ज्यों स्वान मुख, रुधिर चचोरे आप॥

जानत ताही तें भुवन, सुख माने संताप ॥

और महाराज, जो इस संसार में आया है सो गृहरूपी अंध-कूप से बिन आपकी कृपा निकल नहीं सकता, इससे मुझे भी चिंता है कि मैं कैसे गृहरूप कूप से निकलूंगा। श्रीकृष्णजी बोले—सुन मुचकुंद बात तो ऐसी ही है जैसे तूने कही, पर मैं तेरे तरने का उपाय बता देता हूँ सो तू कर। तैंने राज पाय, भूमि, धन, स्त्री के लिए अधिक अधर्म किये हैं सो बिन तप किये न छूटेंगे, इससे उत्तर दिस में जाय तू तपस्या कर। यह अपनी देह छोड़ फिर ऋषि के घर जन्म लेगा, तब तू मुक्ति पदारथ पावेगा। महाराज, इतनी बात जो मुचकुंद ने सुनी तो जाना कि अब कलियुग आया। यह समझ प्रभु से विदा हो डंडवत कर परिक्रमा दे मुचकुंद बद्रीनाथ को गया, औ श्रीकृष्णचंदजी ने मथुरा में आय बलरामजी से कहा—

कालयवन को कियौ निकंद। बद्री दिस पठयौ मुचकुंद ॥
कालयवन की सेना बनी। तिन घेरी मथुरा आपनी ॥
आवहु तहां मलेछन मारैं। सकल भूमि कौ भार उतारैं ॥

ऐसे कह हलधर को साथ ले श्रीकृष्णचद मथुरापुरी से निकल वहां आए जहां काल यवन का कटक खड़ा था, औ आते ही दोनों उनसे युद्ध करने लगे। निदान लड़ते लड़ते जब म्लेच्छ की सेना प्रभु ने सब मारी तब बलदेवजी से कहा कि भाई, अब मथुरा की सब संपत्ति ले द्वारका को भेज दीजे। बलरामजी बोले—बहुत अच्छा। तब श्री कृष्णचन्द ने मथुरा का सब धन निकलवाय भैंसों

छकड़ों, ऊंटों, हाथियों पर लदवाय द्वारका को भेज दिया। इस बीच फिर जरासंध तेईस ही अक्षौहिनी सेना ले मथुरापुरी पर चढ़ि आया, तब श्रीकृष्ण बलराम अति घबराय के निकले औ उसके सनमुख जा दिखाई दे तिसके मन का संताप मिटाने को भाग चले, मंत्री ने जरासंध से कहा कि महाराज, आपके प्रताप के आगे ऐसा कौन बली है जो ठहरे, देखो वे दोनों भाई कृष्ण बलराम, छोड़ के सब धन धाम, लेके अपना प्रान, तुम्हारे त्रास के मारे नंगे पाओं भागे चले जाते हैं। इतनी बात मंत्री से सुन जरासंध भी यों पुकारकर कहता हुआ सेना ले उनके पीछे दौड़ा।

काहे डर के भागे जात। ठाढ़े रहो करौ कछु बात॥
परत उठत कंपत क्यों भारी। आई है ढिग मीच तिहारी॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि पृथ्वीनाथ जब श्रीकृष्ण औ बलदेवजी ने भाग के लोक रीति दिखाई, तब जरासंध के मन से पिछला सब शोक गया औ अति प्रसन्न हुआ ऐसा कि जिसका कुछ बरनन नहीं किया जाता। आगे श्रीकृष्ण बलराम भागते भागते एक गौतम नाम पर्वत, ग्यारह जोजन ऊंचा था, तिसपर चढ़ गये और उसकी चोटी पर जाय खड़े भये।

देख जरासंध कहै पुकारि। शिखर चढ़े बलभद्र मुरारी॥
अब किम हमसौ जाय पलाय। या पर्वत कों देहु जलाय॥

इतना बचन जरासंध के मुख से निकलते ही सब असुरों ने उस पहाड़ को जा घेरा औ नगर नगर गाव २ से काठ कबाड़

लाय लाय उसके चारों ओर चुन दिया, तिसपर गड़गूदड़ घी तेल से भिगो डालकर आग लगा दी। जब वह आग पर्वत की चोटी तक लहकी तब उन दोनों भाइयों ने वहां से इस भांति द्वारका की बाट लो कि किसी ने उन्हें जाते भी न देखा, और पहाड़ जलकर भस्म हो गया। उस काल जरासंध श्रीकृष्ण बलराम को उस पर्वत के संग जल मरा जान. अति सुख मान, सब दल साथ ले मथुरापुरी में आया, और वहां का राज ले नगर में ढूंढोरा दे उसने अपना थाना बैठाया। जितने उग्रसेन वसुदेव के पुराने मन्दिर थे सो सब ढवाये, और उसने आप अपने नये बनवाए।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा कि महाराज इस रीति से जरासंध को धोका दे श्रीकृष्ण बलरामजी तो द्वारका में जाय बसे, और जरासंध भी मथुरा नगरी से चल सब सेना ले अति आनंद करता निसंक हो अपने घर आया।

---

(१६)

रुक्मिणी-विवाह

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, कितनी एक दूर जाय श्रीकृष्णचंद ने रुक्मिणीजी को सोच संकोचयुत देखकर कहा कि सुन्दरी, अब तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। मैं शंखध्वनि कर तुम्हारे मन का सब डर हरूंगा औ द्वारका में पहुंच वेद की विधि से वरूंगा। यों कह प्रभु ने उसे अपनी

माला पहिराय, बाईं ओर बैठाय, ज्यों शंखध्वनि करी, त्यों सिसुपाल औ जरासंध के साथी सब चौंक पड़े। यह बात सार नगर में फैल गई कि हरि रुक्मिनी को हर ले गये।

इसमें रुक्मिनी-हरन अपने तिन लोगों के मुख से सुन कि जो चौकसी को राजकन्या के संग गए थे, राजा सिसुपाल औ जरासंध अति क्रोध कर, झिलम टोप पहन, पेटी बांध, सब शस्त्र लगाय अपना २ कटक ले लड़ने को श्रीकृष्ण के पीछे चढ़ दौड़े औ उनके निकट जाय, आयुध संभाल २ ललकारे। अरे, भागे क्यों जाते हो, खड़े रहो, शस्त्र पकड़ लड़ो, जो क्षत्री सूरबीर है वे खेत में पीठ नहीं देते। महाराज, इतनी बात के सुनते ही यादव फिर सनमुख हुए और लगे दोनों ओर से शस्त्र चलने। उस काल रुक्मिनी बाल अति भय मान घूंघट की ओट किये, आंसू भर लम्बी सांसें लेती थी औ प्रीतम का मुख निरख २ मनही मन विचार कर यों कहती थी कि ये मेरे लिये इतना दुख पाते हैं। अन्तरजामी प्रभु रुक्मिनी के मन का भेद जान बोले कि सुन्दरी, तू क्यों डरती है, तेरे देखते ही सब असुरदल को मार भूमि का भार उतारता हूँ, तू अपने मन में किसी बात की चिन्ता मत कर। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, उस काल देवता अपने अपने विमानों में बैठे आकाश से देखते क्या हैं, कि—

यादव असुरन सों लरत, होत महा संग्राम।
ठाढ़े देखत कृष्ण हैं, करत युद्ध बलराम॥

नारद नाचता है, किन्नर कड़खा गाते हैं, चारन जस

पखानते हैं। अश्वपति अश्वपति से, गजपति गजपति से, रथी रथी से, पैदल पैदल से भिड़ रहे हैं। इधर उधर के सूरबीर पिल पिल के हाथ मारते हैं औ कायर खेत छोड़ अपना जी ले भागते हैं। घायल खड़े झूमते हैं, कबंध हाथ में तरवार लिये चारों ओर घूमते हैं, औ लोथ पर लोथ गिरती है, तिनसे लहू की नदी बह चली है, तिसमें जहां तहां हाथी जो मरे पड़े हैं सो टापू से जनाते हैं औ सूंड़े हैं मगर सी। महादेव भूत प्रेत, पिशाच संग लिये, सिर चुन चुन मुण्डमाला बनाय बनाय पहनते हैं औ गिद्ध, शाल, कूकर आपस में लड़ लड़ लोथें खैंच लाते हैं औ फाड़ फाड़ खाते हैं। कौए आंखें निकाल निकालकर धड़ों से ले जाते हैं। निदान देवताओं के देखते ही देखते बलरामजी ने सब असुरदल यों काट डाला कि जों किसान खेती काट डाले। आगे जरासंध औ सिसुपाल सब दल कटाय, कई एक घायल संग लिये भाग के एक ठौर जा खड़े रहे। तहां सिसुपाल ने बहुत अछताय पछताय सिर डुलाय जरासंध से कहा कि अब तो अपजस पाय औ कुल को कलंक लगाय संसार में जीना उचित नहीं, इससे आप आज्ञा दें तो मैं रन में जाय लड़ मरूं।

नातर हौं करिहौं बनवास। लेउं जोग छांड़ौं सब आस॥
गई आन पत अब क्यों जीजे। राखि प्रान क्यों अपजस लीजै॥

इतनी बात सुन जरासंध बोला कि महाराज, आप ज्ञानवान हैं औ सब बात भी जानते हैं। मैं तुम्हें क्या समझाऊं, जो ज्ञानी पुरुष हैं सो हुई बात का सोच नहीं करते, क्योंकि भले बुरे का

था। इससे उसकी दृष्टि पड़ते ही कालयवन जलकर छार होगया। आगे करुना निधान कान्ह भक्तहितकारी ने मेघबरन, चंदमुख, कंवलनैन, चतुर्भुज हो शंख, चक्र, गदा, पद्म, लिये, मोरमुकुट, मकराकृत, कुण्डल, बनमाला औ पीतांबर पहरे मुचकुंद को दरसन दिया। प्रभु का स्वरूप देखते ही वह अष्टांग प्रनाम कर खड़ा हो हाथ जोड़ बोला कि कृपानाथ, जैसे आपने इस महा अंधेरी कंदरा में आय उजाला कर तम दूर किया, तैसे दया कर अपना नाम भेद बताय मेरे मन का भी भरम दूर कीजै।

श्रीकृष्णचंद बोले कि मेरे तो जन्म कर्म और गुन हैं घने, वे किसी भांति गने न जायं, कोई कितना हो गने। पर मैं इस जन्म का भेद कहता हूँ सो सुनौ कि अब के बसुदेव के यहां जन्म लिया इससे वासुदेव मेरा नाम हुआ औ मथुरापुरी में सब असुरों समेत कंस को मैंने ही मार भूमि का भार उतारा, औ सत्रह बेर तेईस तेईस अक्षौहिनी सेना ले जरासंध युद्ध करने को चढ़ि आया, सो भी मुझी से हारा और यह कालयवन तीन करोड़ म्लेच्छ की भीड़ भाड़ ले लड़ने को आया था सो तुम्हारी दृष्टि से जल मरा। इतनी बात प्रभु के मुख से निकलते ही मुचकुंद को ज्ञान हुआ तो बोला कि महाराज, आपकी माया अति प्रबल है, उसने सारे संसार को मोहा है, इसीसे किसी की कुछ सुध बुद्धि ठिकाने नहीं रहती।

करत कर्म सब सुख के हेत। ताते भारी दुख सहि लेत॥
चुभे हाड़ ज्यों स्वान मुख, रुधिर चचोरे आप॥

जानत ताही तें चुवन, सुख माने संताप ॥

और महाराज, जो इस संसार में आया है सो गृहरूपी अंध-कूप से बिन आपकी कृपा निकल नहीं सकता, इससे मुझे भी चिंता है कि मैं कैसे गृहरूप कूप से निकलूंगा। श्रीकृष्णजी बोले-सुन मुचकुंद बात तो ऐसी ही है जैसे तूने कही, पर मैं तेरे तरने का उपाय बता देता हूँ सो तू कर। तैंने राज पाय, भूमि, धन, स्त्री के लिए अधिक अधर्म किये हैं सो बिन तप किये न छूटेंगे, इससे उत्तर दिस में जाय तू तपस्या कर। यह अपनी देह छोड़ फिर ऋषि के घर जन्म लेगा, तब तू मुक्ति पदारथ पावेगा। महाराज, इतनी बात जो मुचकुंद ने सुनी तो जाना कि अब कलियुग आया। यह समझ प्रभु से बिदा हो डंडवत कर परिक्रमा दे मुचकुंद बद्रीनाथ को गया, औ श्रीकृष्णचंदजी ने मथुरा में आय बलरामजी से कहा—

कालयवन कौ कियौ निकंद। बद्री दिस पठयौ मुचकुंद ॥
कालयवन की सेना घनी। तिन घेरी मथुरा आपनी ॥
आवहु तहां मलेछन मारैं। सकल भूमि कौ भार उतारैं ॥

ऐसे कह हलधर को साथ ले श्रीकृष्णचद मथुरापुरी से निकल वहां आए जहां काल यवन का कटक खड़ा था, औ आते ही दोनों उनसे युद्ध करने लगे। निदान लड़ते लड़ते जब म्लेच्छ की सेना प्रभु ने सब मारी तब बलदेवजी से कहा कि भाई, अब मथुरा की सब संपत्ति ले द्वारका को भेज दीजे। बलरामजी बोले—बहुत अच्छा। तब श्री कृष्णचन्द ने मथुरा का सब धन निकलवाय भेंसों

छकड़ों, ऊंटों, हाथियों पर लदवाय द्वारका को भेज दिया। इस बीच फिर जरासंध तेईस ही अक्षौहिनी सेना ले मथुरापुरी पर चढ़ि आया, तब श्रीकृष्ण बलराम अति घबराय के निकले औ उसके सनमुख जा दिखाई दे तिसके मन का संताप मिटाने को भाग चले, मंत्री ने जरासंध से कहा कि महाराज, आपके प्रताप के आगे ऐसा कौन बली है जो ठहरे, देखो वे दोनों भाई कृष्ण बलराम, छोड़ के सब धन धाम, लेके अपना प्रान, तुम्हारे त्रास के मारे नंगे पाओं भागे चले जाते हैं। इतनी बात मंत्री से सुन जरासंध भी यों पुकारकर कहता हुआ सेना ले उनके पीछे दौड़ा।

काहे डर के भागे जात। ठाढ़े रहो करौ कछु बात॥
परत उठत कंपत क्यों भारी। आई है ढिग मीच तिहारी॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि पृथ्वीनाथ जब श्रीकृष्ण औ बलदेवजी ने भाग के लोक रीति दिखाई, तब जरासंध के मन से पिछला सब शोक गया औ अति प्रसन्न हुआ ऐसा कि जिसका कुछ बरनन नहीं किया जाता। आगे श्रीकृष्ण बलराम भागते भागते एक गौतम नाम पर्वत, ग्यारह जोजन ऊंचा था, तिसपर चढ़ गये और उसकी चोटी पर जाय खड़े भये।

देख जरासंध कहै पुकारि। शिखर चढ़े बलभद्र मुरारी॥
अब किम हमसौं जाय पलाय। या पर्वत कौं देहु जलाय॥

इतना वचन जरासंध के मुख से निकलते ही सब असुरों ने उस पहाड़ को जा घेरा औ नगर नगर गाँव २ से काठ कबाड़

लाय लाय उसके चारों ओर चुन दिया, तिसपर गड़गूदड़ घी तेल से भिगो डालकर आग लगा दी। जब वह आग पर्वत की चोटी तक लहकी तब उन दोनों भाइयों ने वहां से इस भांति द्वारका की बाट ली कि किसी ने उन्हें जाते भी न देखा, और पहाड़ जलकर भस्म हो गया। उस काल जरासंध श्रीकृष्ण बलराम को उस पर्वत के संग जल मरा जान, अति सुख मान, सब दल साथ ले मथुरापुरी में आया, और वहां का राज ले नगर में ढूंढोरा दे उसने अपना थाना बैठाया। जितने उग्रसेन वसुदेव के पुराने मन्दिर थे सो सब ढवाये, और उसने आप अपने नये बनवाए।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा कि महाराज इस रीति से जरासंध को धोका दे श्रीकृष्ण बलरामजी तो द्वारका में जाय बसे, और जरासंध भी मथुरा नगरी से चल सब सेना ले अति आनंद करता निसंक हो अपने घर आया।

---

(१६)

रुक्मिणी-विवाह

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, कितनी एक दूर जाय श्रीकृष्णचंद ने रुक्मिणीजी को सोच संकोचयुत देखकर कहा कि सुन्दरी, अब तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। मैं शंखध्वनि कर तुम्हारे मन का सब डर हरूंगा औ द्वारका में पहुंच वेद की विधि से वरूंगा। यों कह प्रभु ने उसे अपनी

माला पहिराय, बाईं ओर बैठाय, ज्यों शंखध्वनि करी, त्यों सिसुपाल औ जरासंध के साथी सब चौंक पड़े। यह बात सारे नगर में फैल गई कि हरि रुक्मिनी को हर ले गये।

इसमें रुक्मिनी-हरन अपने दिन लोगों के मुख से सुन कि जो चौकसी का राजकन्या के संग गए थे, राजा सिसुपाल औ जरासंध अति क्रोध कर, झिलम टोप पहन, पेटी बांध, सब शस्त्र लगाय अपना २ कटक ले लड़ने को श्रीकृष्ण के पीछे चढ़ दौड़े औ उनके निकट जाय, आयुध संभाल २ ललकारे। अरे, भागे क्यों जाते हो, खड़े रहो, शस्त्र पकड़ लड़ो, जो छत्री सूरबीर हैं वे खेत में पीठ नहीं देते। महाराज, इतनी बात के सुनते ही यादव फिर सनमुख हुए और लगे दोनों ओर से शस्त्र चलने। उस काल रुक्मिनी बाल अति भय मान घूंघट की ओट किये, आंसू भर लम्बी सांसें लेती थी औ प्रीतम का मुख निरख २ मनही मन बिचार कर यों कहती थी कि ये मेरे लिये इतना दुख पाते हैं। अन्तरजामी प्रभु रुक्मिनी के मन का भेद जान बोले कि सुन्दरी, तू क्यों डरती है, तेरे देखते ही सब असुरदल को मार भूमि का भार उतारता हूँ, तू अपने मन में किसी बात की चिन्ता मत कर। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, उस काल देवता अपने अपने बिमानों में बैठे आकाश से देखते क्या हैं, कि—

यादव असुरन सों लरत, होत महा संग्राम।
ठाढ़े देखत कृष्ण हैं, करत युद्ध बलराम॥

बाजे बाजते हैं, किन्नर कड़खा गाते हैं, चारन जस

बखानते हैं। अश्वपति अश्वपति से, गजपति गजपति से, रथी रथी से, पैदल पैदल से भिड़ रहे हैं। इधर उधर के सूरवीर पिल पिल के हाथ मारते हैं औ कायर खेत छोड़ अपना जी ले भागते हैं। घायल खड़े झूमते हैं, कबंध हाथ में तरवार लिये चारों ओर घूमते हैं, औ लोथ पर लोथ गिरती है, तिनसे लहू की नदी बह चली है, तिसमें जहां तहां हाथी जो मरे पड़े हैं सो टापू से जनाते हैं औ सूंड़े हैं मगर सी। महादेव भूत प्रेत, पिशाच संग लिये, सिर चुन चुन मुण्डमाला बनाय बनाय पहनते हैं औ गिद्ध, शाल, कूकर आपस में लड़ लड़ लोथें खैंच लाते हैं औ फाड़ फाड़ खाते हैं। कौए आंखें निकाल निकालकर घड़ों से ले जाते हैं। निदान देवताओं के देखते ही देखते बलरामजी ने सब असुरदल यों काट डाला कि ज्यों किसान खेती काट डाले। आगे जरासंध औ सिसुपाल सब दल कटाय, कई एक घायल संग लिये भाग के एक ठौर जा खड़े रहे। तहां सिसुपाल ने बहुत अछताय पछताय सिर डुलाय जरासंध से कहा कि अब तो अपजस पाय औ कुल को कलंक लगाय संसार में जीना उचित नहीं, इससे आप आज्ञा दें तो मैं रन में जाय लड़ मरूं।

नातर हौं करिहौं बनवास। लेउं जोग छांड़ौं सब आस॥
गई आन पत अब क्यों जीजे। राखि प्रान क्यों अपजस लीजै॥

इतनी बात सुन जरासंध बोला कि महाराज, आप ज्ञानवान हैं औ सब बात भी जानते हैं। मैं तुम्हें क्या समझाऊं, जो ज्ञानी पुरुष हैं सो हुई बात का सोच नहीं करते, क्योंकि भले बुरे का

माला पहिराय, बाईं ओर बैठाय, ज्यों शंखध्वनि करी, त्यों सिसुपाल औ जरासंध के साथी सब चौंक पड़े। यह बात सारे नगर में फैल गई कि हरि रुक्मिनी को हर ले गये।

इसमें रुक्मिनी-हरन अपने तिन लोगों के मुख से सुन कि जो चौकसी को राजकन्या के संग गए थे, राजा सिसुपाल औ जरासंध अति क्रोध कर, झिलम टोप पहन, पेटी बांध, सब शस्त्र लगाय अपना २ कटक ले लड़ने को श्रीकृष्ण के पीछे चढ़ दौड़े औ उनके निकट जाय, आयुध संभाल २ ललकारे। अरे, भागे क्यों जाते हो, खड़े रहो, शस्त्र पकड़ लड़ो, जो क्षत्री सूरबीर हैं वे खेत में पीठ नहीं देते। महाराज, इतनी बात के सुनते ही यादव फिर सनमुख हुए और लगे दोनों ओर से शस्त्र चलने। उस काल रुक्मिनी बाल अति भय मान घूंघट की ओट किये, आंसू भर लम्बी सांसें लेती थी औ प्रीतम का मुख निरख २ मनही मन विचार कर यों कहती थी कि ये मेरे लिये इतना दुख पाते हैं। अन्तरजामी प्रभु रुक्मिनी के मन का भेद जान बोले कि सुन्दरी, तू क्यों डरती है, तेरे देखते ही सब असुरदल को मार भूमि का भार उतारता हूँ, तू अपने मन में किसी बात की चिन्ता मत कर। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, उस काल देवता अपने अपने विमानों में बैठे आकाश से देखते क्या हैं, कि—

यादव असुरन सों लरत, होत महा संग्राम।
ठाढ़े देखत कृष्ण हैं, करत युद्ध बलराम॥

मारू बाजता है, कड़खैत कड़खा गाते हैं, चारन जस

बखानते हैं। अश्वपति अश्वपति से, गजपति गजपति से, रथी रथी से, पैदल पैदल से भिड़ रहे हैं। इधर उधर के सूरवीर पिल पिल के हाथ मारते हैं औ कायर खेत छोड़ अपना जी ले भागते हैं। घायल खड़े झूमते हैं, कबंध हाथ में तरवार लिये चारों ओर घूमते हैं, औ लोथ पर लोथ गिरती है, तिनसे लहू की नदी बह चली है, तिसमें जहां तहां हाथी जो मरे पड़े हैं सो टापू से जनाते हैं औ सूंड़े हैं मगर सी। महादेव भूत प्रेत, पिशाच संग लिये, सिर चुन चुन मुण्डमाला बनाय बनाय पहनते हैं औ गिद्ध, शाल, कूकर आपस में लड़ लड़ लोथें खैंच लाते हैं औ फाड़ फाड़ खाते हैं। कौए आंखें निकाल निकालकर घड़ों से ले जाते हैं। निदान देवताओं के देखते ही देखते बलरामजी ने सब असुरदल यों काट डाला कि जों किसान खेती काट डाले। आगे जरासंध औ सिसुपाल सब दल कटाय, कई एक घायल संग लिये भाग के एक ठौर जा खड़े रहे। तहां सिसुपाल ने बहुत अछताय पछताय सिर डुलाय जरासंध से कहा कि अब तो अपजस पाय औ कुल को कलंक लगाय संसार में जीना उचित नहीं, इससे आप आज्ञा दें तो मैं रन में जाय लड़ मरूं।

नातर हौं करिहौं वनवास। लेउं जोग छांड़ौं सब आस॥
गई आन पत अब क्यों जीजे। राखि प्रान क्यों अपजस लीजै॥

इतनी बात सुन जरासंध बोला कि महाराज, आप ज्ञानवान हैं औ सब बात भी जानते हैं। मैं तुम्हें क्या समझाऊं, जो ज्ञानी पुरुष हैं सो हुई बात का सोच नहीं करते, क्योंकि भले बुरे का

करता और ही है, मनुष का कुछ बस नहीं, यह परबस पराधीन है। जैसे काठ की पुतली को नटुआ जों नचाता है तों नाचती है, ऐसे ही मनुष करता के बस है, वह जो चाहता है सो करता है। इससे सुख दुख में हरष शोक न कीजे, सब सपना सा जान लीजे। मैं तेईस तेईस अक्षौहिनी ले मथुरापुरी पर सत्रह बेर चढ़ गया। और इसी कृष्ण ने सत्रह बेर मेरा सब दल हना, मैंने कुछ सोच न किया और अठारवीं बेर जब इसका दल मारा तब कुछ हर्ष भी न किया। यह भागकर पहाड़ पर जा चढ़ा, मैंने इसे वहीं फूंक दिया, न जानिये यह क्यों कर जिया। इसकी गति कुछ जानी नहीं जाती। इतना कह फिर जरासंध बोला कि महाराज अब उचित यही है जो इस समय को टाल दीजे। कहा है कि प्रान बचै तो पीछे सब हो रहता है, जैसे हमें हुआ कि सत्रह बार हार अठारवीं बेर जीते। इससे जिसमें अपनी कुशल होय सो कीजे औ हठ छोड़ दीजे।

महाराज, जब जरासंध ने ऐसे समझाय के कहा तब विसे कुछ धीरज हुआ और जितने घायल जोधा बचे थे तिन्हें साथ ले अछता पछता जरासन्ध के संग हो लिया। ये तो यहां से यों हार के चले और जहां सिसुपाल का घर था तहां की बात सुनो कि पुत्र का आगमन विचार सिसुपाल की मां जो मंगलाचार करने लगी, तों सनमुख छींक हुई औ दाहिनी आंख उसकी फड़कने लगी। यह अशकुन देख विसका माथा ठनका कि इस बीच किसी ने आय कहा जो तुम्हारे पुत्र की सब सेना कट गई

औ दुलहन भी न मिली, अब वहां से भाग अपना जीव लिये आता है। इतनी बात के सुनते ही सिसुपाल की महतारी अति चिन्ता कर अवाक् हो रही।

आगे सिसुपाल औ जरासंघ का भागना सुन रुक्म अति क्रोध कर अपनी सभा में आन बैठा और सब को सुनाय कहने लगा कि कृष्ण मेरे हाथ से बच कहां जा सकता है, अभी जाय विसे मार रुक्मिनी को ले आऊं तो मेरा नाम रुक्म, नहीं तो फिर कुण्डलपुर में न आऊं। महाराज, ऐसे पैज कर रुक्म एक अक्षौहनी दल ले श्रीकृष्णचंद से लड़ने को चढ़ धाया, और उसने यादवों का दल जा घेरा। उस काल विसने अपने लोगों से कहा कि तुम तो यादवों को मारो औ मैं आगे जाय कृष्ण को जीता पकड़ लाता हूँ। इतनी बात के सुनते ही उसके साथी तो यदुबंसियों से युद्ध करने लगे औ वह रथ बढ़ाय श्रीकृष्णचन्द के निकट जाय ललकार कर बोला—अरे, कपटी गंवार, तू क्या जाने राज्य व्योहार, बालकपन में जैसे तैंने दूध दही की चोरी करी तैसे तूने यहां भी आय सुन्दरी हरी।

ब्रजबासी हम नहीं अहीर। ऐसे कहकर लीने तीर॥
विषके बुझे लिये उन बीन। खैंच धनुष सर छोड़े तीन॥

उन बानों को आते देख श्रीकृष्णचन्द ने बीच ही काटा। फिर रुक्म ने और बान चलाये, प्रभु ने वे भी काट गिराए औ अपना धनुष सम्भाल कई बान मारे कि रथ के घोड़े समेत सारथी उड़ गया और धनुष उसके हाथ से कट नीचे गिरा।

पुनि जितने आयुध उसने लिये हरि ने सब काट गिरा दिये। तब तो वह अति झुंझलाय फेर खांड़ा उठाय रथ से कूद श्रीकृष्ण-चंद की ओर यों झपटा कि जैसे बावला गीदड़ गज पर आये, कै ज्यों पंतग दीपक पर आवे। निदान जाते ही उसने हरि के रथ पर गदा चलाई कि प्रभु ने झट उसे पकड़ बांधा औ चाहा कि मारें। इसमें रुक्मिणी जी बोली—

मारौ मत भैया है मेरौ। छांड़ौ नाथ तिहारौ चेरौ॥
मूरख अंध कहा यह जाने। लक्ष्मीकंतहि मानुष माने॥
तुम योगेश्वर आदि अनन्त। भक्त हेत प्रगटत भगवन्त॥
यह जड़ कहा तुम्हें पहचाने। दीनदयाल कृपाल बखाने॥

इतना कह फिर कहने लगीं कि साधु जड़ औ बालक का अपराध मन में नहीं लाते, जैसे कि सिंह स्वान के भूंकने पर ध्यान नहीं करता और जो तुम इसे मारोगे तो होगा मेरे पिता को सोग, यह करना तुम्हें नहीं है जोग। जिस ठौर तुम्हारे चरन पड़ते हैं, तहां के सब प्रानी अनंद में रहते हैं। यह बड़े अचरज की बात है कि तुम सा सगा रहते राजा भीष्मक पुत्र का दुःख पावे। महाराज ऐसे कह एक बार तो रुक्मिनीजी यों बोलीं, कि महाराज, तुमने भला हित संबंधी से किया जो पकड़ बांधा औ खड्ग हाथ में ले मारने को उपस्थित हुए। पुनि अति व्याकुल हो थरथराय, आंखे डबडबाय बिसूर बिसूर पांओं पड़ गोद पसार कहने लगीं।

बंधु भीख प्रभु मोकौं देव। इतनो जस तुम जग में लेव॥

इतनी बात के सुनने से औ रुक्मिनीजी की ओर देखने से, श्रीकृष्णचंदजी का सब कोप शांत हुआ। तब उन्होंने इसे जीव से तो न मारा पर सारथी को सैन करी, उसने झट इसकी पगड़ी उतार टुंडियां चढ़ाय; मूंछ दाढ़ी और सिर मूंड, सात चोटी रख, रथ के पीछे बांध लिया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, रुक्म को तो श्रीकृष्णजी ने यहां यह अवस्था की और बलदेव वहां से सब असुर दल को मार भगाय कर, भाई के मिलने को ऐसे चले कि जैसे स्वेत गज कंवलदल में कंवलों को तोड़, खाय, बिथराय, अकुलाय के भागता होय। निदान कितनी एक बेर में प्रभु के समीप जाय पहुंचे औ रुक्म को बंधा देख श्रीकृष्णजी से अति झुंझलाय के बोले कि तुमने यह क्या काम किया, जो साले को पकड़ बांधा, तुम्हारी कुटेव नहीं जाती।

बांध्यौ याहि करी बुधि थोरी। यह तुम कृष्ण सगाई तोरी॥
औ यदुकुल कों लीक लगाई। अब हमसों को करिहि सगाई॥

जिस समै यह युद्ध करने को आपके सनमुख आया, तब तुमने इसे समझाय बुझाय के उलटा क्यों न फेर दिया। महाराज, ऐसे कह बलरामजी ने रुक्म को तो खोल समझाय बुझाय अति शिष्टाचार कर बिदा किया। फिर हाथ जोड़ अति विनती कर बलराम सुखधाम रुक्मिनीजी से कहने लगे कि हे सुन्दरि, तुम्हारे भाई की जो यह दशा हुई इसमें कुछ हमारी चूक नहीं, यह उसके पूर्व जन्म के किये कर्म का फल है और क्षत्रियों का

धर्म भी है कि भूमि, धन, त्रिया के काज करते हैं युद्ध दल परस्पर साज। इस बात को तुम बिलग मत मानौ, मेरा कहा सच ही जानौ। हार जीत भी उसके साथ ही लगी है और यह संसार दुख का समुद्र है, यहां आय सुख कहां, पर मनुष माया के बस हो दुख सुख, भला बुरा, हार जीत, संयोग वियोग मन ही मन से मान लेते हैं, पै इसमें हरष शोक जीव को नहीं होता। तुम अपने भाई के विरूप होने की चिंता मत करो क्योंकि ज्ञानी लोग जीव को अमर तथा देह का नास कहते हैं। इस लेखे देह की पत जाने से कुछ जीव की प्रतिष्ठा नहीं गई।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि धर्मावतार, जब बलरामजी ने ऐसे रुक्मिनी को समझाया तब—

सुनि सुन्दरि मन समझकै, किये जेठ की लाज॥
सैन माहि पिय सों कहत, हांकहु रथ ब्रजराज॥
घूंघट ओट बदन की करै। मधुर वचन हरि सों उच्चरै॥
सनमुख ठाढ़े हैं बलदाऊ। अहो कंत रथ वेग चलाऊ॥

इतना वचन श्रीरुक्मिनीजी के मुख से निकलते ही, इधर तो श्रीकृष्णचंदजी ने रथ द्वारका की ओर हांका औ उधर रुक्म अपने लोगों में जाय अति चिंता कर कहने लगा कि मैं कुंडलपुर से यह पैज करके आया था कि अभी जाय कृष्ण बलराम को सब यदुबंसियों समेत मार रुक्मिनी को ले आऊंगा, सो मेरा प्रन पूरा न हुआ औ उलटी अपनी पत खोई। अब जीता न रहूँगा, इस देस औ गृहस्थाश्रम को छोड़ बैरागी हो कहीं जाय मरूंगा।

जब रुक्म ने ऐसे कहा तब उसके लोगों में से कोई बोला— महाराज, तुम महावीर हो औ बड़े प्रतापी, तुम्हारे हाथ से जो वे जाते बच गये, सो विनके भले दिन थे, अपनी प्रारब्ध के बल से निकल गये, नहीं तो आपके सनमुख हो कोई शत्रु कब जीता बच सकता है। तुम सज्ञान हो, ऐसी बात क्यों विचारते हो। कभी हार होती है कभी जीत, पर सूरवीरों का धर्म है जो साहस नहीं छोड़ते। भला रिपु आज बच गया फिर मार लेंगे। महाराज, जब यों विसने रुक्म को समझाया तब वह यह कहने लगा कि सुनो—

हारयो उनसों औ पत गई। मेरे मन अति लज्जा भई॥
जन्म न हौं कुण्डलपुर जाऊं। बरन और ही गांव बसाऊं॥
यों कह उन इक नगर बसायौ। सुत दारा धन तहां मंगायौ॥
ताकौ धरयो भोजकटु नाम। ऐसे रुक्म बसायौ गाम॥

महाराज, उधर रुक्म तो राजा भीष्मक से वैर कर वहां रहा औ इधर श्रीकृष्णचंद औ बलदेवजी चले चले द्वारका के निकट आ पहुंचे।

उड़ी रेनु आकाश जु छाई। तबही पुरवासिन सुध पाई॥
आवत हरि जाने जबहिं, राख्यो नगर बनाय।
शोभा भइ तिहुं लोक की, कही कौन पै जाय॥

उस काल घर घर मंगलचार हो रहे, द्वार द्वार केले के खंभे गड़े, कंचन कलस सजल सपल्लव धरे, ध्वजा पताका फहराय रहीं, तोरन वंदनवारें बंधी हुई और हर हाट, बाट, चौहाट में

चौमुखे दिये लिये युवतियों के यूथ के यूथ खड़े औ राजा उग्रसेन भी सब यदुवंसियों समेत बाजे गाजे से अगाऊ जाय रीति भांति कर, बलराम सुखधाम औ श्रीकृष्णचंद आनंदकंद को नगर में ले आये। उस समै के बनाव की छवि कुछ बरनी नहीं जाती, क्या स्त्री क्या पुरुष सब ही के मन में आनंद छाय रहा था। प्रभु के सोंहीं आय आय सब भेंट दे दे भेटते थे औ नारियां अपने आपने द्वारों, बारों, चौबारों, कोठों पर से मंगल गीत गाय गाय, आरती उतार उतार फूल बरसावती थीं औ श्रीकृष्णचंद औ बलदेवजी जथायोग्य सबकी मनुहार करते जाते थे, निदान इसी रीति से चले चले राजमंदिर में जा बेराजे। आगे कई एक दिवस पीछे एक दिन श्रीकृष्णजी राज-सभा में गये, जहां राजा उग्रसेन, सूरसेन, वसुदेव आदि सब बड़े बड़े यदुबंसी बैठे थे औ प्रणाम कर इन्होंने उनके आगे कहा कि महाराज, युद्ध जीत जो कोई सुन्दरी लाता है वह राक्षस ब्याह कहलाता है।

इतनी बात के सुनते ही इधर सूरसेनजी ने पुरोहित बुलाय, से समझा के कहा कि तुम श्रीकृष्ण के विवाह का दिन ठहरा । उसने झट पत्रा खोल भला महीना, दिन, वार, नक्षत्र देख भ सूरज चन्द्रमा बिचार ब्याह का दिन ठहराय दिया। तब जा उग्रसेन ने अपने मंत्रियों को तो यह आज्ञा दी कि तुम ब्याह सब सामां इकट्ठी करो औ आप बैठ पत्र लिख लिख पांडव रव आदि सब देश विदेश के राजाओं को ब्राह्मनों के हाथ

भिजवाये। महाराज, चीठी पाते ही सब राजा प्रसन्न हो उठ धाये। तिन्हीं के साथ ब्राह्मण, पंडित, भाट, भिखारी भी हो लिये।

और ये समाचार पाय राजा भीष्मक ने भी बहुत वस्त्र, शस्त्र जड़ाऊ आभूषण और रथ, हाथी, घोड़े, दास, दासियों के डोले, एक ब्राह्मन को दे, कन्यादान का संकल्प मनही में ले, अति बिनती कर द्वारका को भेज दिया। उधर से तो देस देस के नरेश आये औ इधर से राजा भीष्मक का पठाया सब सामान लिये वह ब्राह्मन भी आया। उस समै की शोभा द्वारकापुरी की कुछ बरनी नहीं जाती। आगे ब्याह का दिन आया तो सब रीति भांति कर वर कन्या को मंढ़े के नीचे ले जा बैठाया और सब बड़े बड़े यदु-वंसी भी आय बैठे। उस बिरियां—

पंडित तहां वेद उच्चरैं। रुक्मनि संग हरि भांवर फिरैं॥
ढोल दुन्दुभी भेर बजावैं। हरषहिं देव पुहुप बरसावैं॥
सिद्ध साध चारन गन्धर्वा। अतिरिक्ष भये देखैं सर्वा॥
चढ़े बिमान बिरे सिर नावैं। देववधू सब मंगल गावैं॥
हाथ गह्यो प्रभु भांवर पारी। बाम अंग रुक्मिनि बैठारी॥
छोरी गांठ पटा फिर दियौ। कुल देवी कौ पूजन कियौ॥
छोरत कंकन हरि सुन्दरी। खेलत दूधाभाती करी॥
अति अनन्द रच्यो जगदीश। निरपि हरपि सब देहिं असीस॥
हरि रुक्मिनि जोरी चिरजियौ। जिनके चरित सुधारस पियौ॥
दीनौ दान विप्र जो आये। मागध बंदीजन पहिराये॥

जे नृप देस देस के आये । दीनी विदा सबै पहुंचाये ॥

इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज, जो जन हरि रूक्मिनि का चरित्र पढ़े सुनेगा औ पढ़ सुनके सुमिरन करेगा, सो भक्ति, मुक्ति, जस पावेगा। पुनि जो फल होता है अश्वमेधादि यज्ञ, गौ आदि दान, गंगादि स्नान, प्रयागादि तीर्थ के करने में, सोई फल मिलता है, हरि कथा करने सुनने में।

१७

सुमन्त मनि की कथा

श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज, सत्राजीत ने पहले तो श्रीकृष्णचंद को मनि की चोरी लगाई, पीछे झूठ समझ लज्जित हो उसने अपनी कन्या सतिभामा हरि को व्याह दी। यह सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूछा कि कृपानिधान, सत्राजीत कौन था, मनि उसने कहां से पाई और कैसे हरि को चोरी लगाई, फिर क्योंकर झूठ समझ कन्या व्याह दी, यह तुम मुझे बुझाकर कहो।

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज सुनिये मैं सब समझाकर कहता हूँ। सत्राजीत एक यादव था तिसने बहुत दिन तक सूरज की अति कठिन तपस्या की, तब सूरज देवता ने प्रसन्न हो उसे निकट बुलाय मनि देकर कहा कि सुमन्त है इस मनि का नाम इसमें है सुख संपति का विश्राम। सदा इसे मानियो और

बल तेज में मेरे समान जानियो। जो तू इसे जप, तप, संजम कर ध्यावेगा तो इससे मुंह मांगा इनाम पावेगा। जिस देश नगर घर में यह जावेगा, तहां दुःख दरिद्र काल कभी न आवेगा। सर्वदा सुकाल रहेगा औ ऋद्धि सिद्धि भी रहेगी।

महाराज, ऐसे कह सूरज देवता ने सत्राजीत को बिदा किया। वह मनि ले अपने घर आया। आगे प्रात ही उठ वह प्रातस्नान कर संध्या तर्पन से निर्चिंत हो, नित चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य सहित मनि की पूजा किया करे और तिस मनि से जो आठ भार सोना निकले सो ले और प्रसन्न रहे। एक दिन पूजा करते करते सत्राजीत ने मनि की शोभा औ कांति देख निज मन में बिचारा कि यह मनि श्रीकृष्णचंद को ले जाकर दिखाइये तो भला।

यों विचार मनि कंठ में बांध सत्राजीत यदुबंसियों की सभा को चला। मनि का प्रकाश दूर से देख सब यदुबंसी खड़े हो श्रीकृष्णजी से कहने लगे कि महाराज तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा किये सूरज चला आता है, तुमको ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि सब देवता ध्यावते हैं औ आठ पहर ध्यानधर तुम्हारा जस गावते हैं। तुम ही आदि पुरुष अविनाशी, तुम्हें नित सेवती है कमला भई दासी। तुम हो सब देवों के देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव। तुम्हारे गुन औ चरित्र हैं अपार, क्यों प्रभु छिपोगे आय संसार। महाराज, जब सत्राजीत को देख सब यदु-बंसीयों कहने लगे, तब हरि बोले कि यह सूरज नहीं, सत्राजीत

यादव है। इसने सूरज की तपस्या कर एक मनि पाई है, उसका प्रकाश सूरज के समान है, वही मनि बांधे वह चला आता है।

महाराज, इतनी बात जब तक श्रीकृष्णजी कहे तब तक वह आय सभा में बैठा, जहाँ यादव सारे पासे खेल रहे थे। मनि की कांति देख सबका मन मोहित हुआ औ श्रीकृष्णचंदभी देखरहेतब सत्राजीत कुछ मन ही मन समझ उस समय बिदा हो अपने घर गया। आगे वह मनि गले में बांध नित आवे। एक दिन सब यदुवंसियों ने हरि से कहा कि महाराज, सात्राजीत से मनि ले राजा उग्रसेन को दीजै औ जग में जस लीजै, यह मनि इसे नहीं फबती, राजा के जोग है।

इस बात के सुनते ही श्रीकृष्ण ने हंसते हंसते सत्राजीत से कहा कि यह मनि राजाजी को दो और संसार में जस बड़ाई लो। देने का नाम सुनते ही वह प्रनाम कर चुपचाप वहां से उठ सोच विचार करता अपने भाई के पास जा बोला कि आज श्रीकृष्णजी ने मुझसे मनि मांगी और मैंने न दी। इतनी बात जों सत्राजीत के मुंह से निकली तो क्रोधकर उसके भाई प्रसेन ने वह मनि ले अपने गले में डाली औ शस्त्र लगाय घोड़े पर चढ़ अहेर को निकला। महाबन में जाय धनुष चढ़ाय लगा सावर, चीतल, पाढ़े, रोझ औ मृग मारने। इसमें एक हिरन जो उसके आगे से झपटा, तो इसने भी खिजलाय के तिसके पीछे घोड़ा दपटा औ चला चला अकेला कहां पहुँचा कि जहां जुगान

जुग की एक बड़ी औंड़ी गुफा थी।

मृग औ घोड़े के पांव की आहट पाय उसमें से एक सिंह निकला। वह इन तीनों को मार मनि ले फिर उस गुफ़ा में बढ़ गया। मनि के जाते ही उस महाअंधेरी गुफामें ऐसा प्रकाश हुआ कि पाताल तक चांदना गया। वहां जामवन्त नाम रीछ जो श्रीरामचंद्र के साथ रामावतार में था सो त्रेता युग से वहां कुटुम्ब समेत रहा था, वह गुफा में उजाला देख उठि धाया औ चला २ सिंह के पास आया। फिर वह सिंह को मार मनि ले अपनी स्त्री के निकट गया। तिसने मनि ले अपनी पुत्री के पालने में बांधी। वह तिसे देख हंस हंस खेला करै औ सारे स्थान में आठ पहर प्रकाश रहे। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, मनि यों गई औ प्रसेनकी यह गति भई। तब प्रसेन के साथ जो लोग गये थे तिन्होंने आ सत्राजीत से कहा कि महाराज—

हमको त्याग अकेलो धायौ। जहां गयो तहां खोज न पायौ॥
कहत न बने ढूंढे फिर आए। कहूँ प्रसेन न बन में पाए॥

इतनी बात सुनते ही सत्राजीत खाना पीना छोड़ अति उदास हो चिन्ता कर मनही मन कहने लगा, यह काम श्रीकृष्ण का है जो मेरे भाई को मनि के लिए मार मनि ले घर में आय बैठा है। पहले मुझसे मांगता था मैंने न दी, अब उसने यों ली। ऐसे वह मन ही मन कहै और रात दिन महा चिन्ता में रहै। एकदिन

वह रात्रि समै स्त्री के पास सेज पर तन छीन, मन मलीन ? मारे बैठा मन ही मन कुछ सोच विचार करता था कि उसकी नारी ने कहा—

कहा कन्त मन सोचत रहौ। मोंसों भेद आपनों कहौ॥

सत्राजीत बोला कि स्त्री से कठिन बातका भेद कहना उचित नहीं, क्योंकि इसके पेट में बात नहीं रहती। जो घरमें सुनती है सो बाहर प्रकाश कर देती है। यह अज्ञान, इसे किसी बात का ज्ञान नहीं, भला हो कै बुरा। इतनी बात के सुनते ही सत्राजोत की स्त्री खिजलाकर बोली कि मैंने कब कोई बात घरमें सुन बाहर कही है जो तुम कहते हो, क्या सब नारी समान होती हैं। यों सुनाय फिर उसने कहा कि जब तक तुम अपने मन की बात मेरे आगे न कहोगे, तब तक मैं अन्न पानी भी न खाऊंगी। यह बचन नारी से सुन सत्राजीत बोला कि झूठ सच्च को तो भगवान जाने पर मेरे मन में एक बात आई है, सो मैं तेरे आगे कहता हूँ परन्तु तू किसुके सोंहीं मत कहियो। उसकी स्त्री बोली—अच्छा मैं न कहूँगी।

सत्राजीत कहने लगा कि एक दिन श्रीकृष्णजी ने मुझ मनि मांगी और मैंने न दी, इससे मेरे जी में आता है कि उस ने मेरे भाई को बन में जाय मारा औ मनि ली यह उसी का काम है दूसरे की सामर्थ नहीं जो ऐसा काम करे।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, बात के सुनते ही उसे रात को नींद नहीं आई और उसने सात पांच कर

रैन गंवाई। भोर होते ही उसने जा सखी सहेली और दासी से कहा कि श्रीकृष्णजी ने प्रसेन को मारा औ मनि ली। यह बात रात मैंने अपने कंत के मुख सुनी है पर तुम किसी के आगे मत कहियो। वे वहां से तो भला कह चुपचाप चली आई। पर अचरज कर एकांत में बैठ आपसमें चरचा करने लगी। निदान एक दासी ने यह बात श्रीकृष्णचंद के रनवास में जा सुनाई। सुनते ही सबके जी में यह आया कि जो सत्राजीत की स्त्री ने यह कही है तो झूठ न होगी। ऐसे समझ उदास हो सब रनवास श्रीकृष्ण को बुरा कहने लगा। इस बीच किसी ने आय श्रीकृष्णजी से कहा कि महाराज, तुम्हें तो प्रसेन के मारने तथा मनि के लेने का कलंक लग चुका, तुम क्या बैठ रहे हो, इसका उपाय करो।

इतनी बात के सुनते ही पहले तो श्रीकृष्णजी घबराये, पीछे कुछ सोच समझ वहां आये, जहां उग्रसेन, वसुदेव, औ बलराम सभा में बैठे थे और बोले कि महाराज, हमें सब लोग यह कलंक लगाते हैं कि कृष्ण ने प्रसेन को मार मनि ले ली। इससे आपकी आज्ञा ले, प्रसेन और मनि को ढूंढने जाते हैं, जिससे यह अपजस छूटे। यों कह श्रीकृष्णजी वहां से आय कितने एक यदुबंसियों औ प्रसेन के साथियों को साथ ले बन को चले। कितनी एक दूर जाय देखें तो घोड़े के चरन-चिन्ह दृष्ट पड़े, तिन्हीं को खोजते खोजते वहां जाय पहुंचे जहां सिंह ने तुरङ्ग समेत प्रसेन को मार खाया था। दोनों की लोथ और सिंह के पाओं का चिन्ह देख सबने जाना कि इसे सिंह ने मार खाया।

यह समझ मनि न पाय श्रीकृष्णचंद सब को साथ लिये ति वहां गये, जहां वह औंड़ी अंधेरी महाभयावनी गुफा थी। उस द्वार पर देखते क्या हैं कि सिंह मरा पड़ा है पर मनि वहां नहीं। ऐसा अचरज देख सब श्रीकृष्णजीसे कहने लगे कि महाराज, इस वन में ऐसा बली जंतु कहां से आया जो सिंह को मार मनि ले गुफा में बैठा। अब इसका कुछ उपाय नहीं, जहां तक ढूंढने का धर्म था तहां तक तुमने ढूंढा। तुम्हारा कलंक छूटा, अब सिंह के सिर अपजस पड़ा।

श्रीकृष्णजी बोले—चलो इस गुफा में धस कर देखें कि नाह का मार मनि कौन ले गया। वे सब बोले कि महाराज, जिस गुफ़ा का मुख देखे हमें डर लगता है तिसमें धसेंगे कैसे? वरन हम तुमसे भी विनती कर कहते हैं कि इस महाभयावनी गुफ़ा में आप भी न जाइये, अब घर को पधारिये। हम सब मिल नगर में कहेंगे कि प्रसेन को मार सिंह ने मनि ली और सिंह को मार मनि ले कोई जंतु एक अति डरावनी औंड़ी गुफ़ा में गया, यह सब हम अपनी आंखों देख आये। श्रीकृष्णचंद बोले—मेरा मन मनि में लगा है, मैं अकेला गुफ़ा में जाता हूँ, दस दिन पीछे आऊंगा, तुम दस दिन तक यहां रहियो। इसमें हमें बिलंब होय तो घर जाय संदेशा कहियो। महाराज, इतनी बात कह हरि उस अंधेरी भयावनी गुफ़ामें पैठे और चले चले वहां पहुंचे जहां जामवंत सोता था और उसकी स्त्री अपनी लड़की को खड़ी पालने में झुलाती थी।

वह प्रभु को देख भय खाय पुकारी औ जामवंत जागा, तो धाय हरि से आय लिपटा औ मल्लयुद्ध करने लगा। जब उसका कोई दाव औ बल हरि पर न चला तब मन ही मन विचार कर कहने लगा कि मेरे बल के तो हैं लछमन राम और इस संसार में ऐसा बली कौन है जो मुझसे करे संग्राम। महाराज, जामवंत मन ही मन ज्ञान से यों विचार प्रभु का ध्यान कर—

ठाढ़ो भयो जोरिकै हाथ। बोल्यो दरस देहु रघुनाथ॥
अंतरजामी, मैं तुम जाने। लीला देखत ही पहिचाने॥
भलो करो लीनौं औतार। करिहौ दूर भूमि को भार॥
त्रेतायुग में इहि ठां रह्यो। नारद भेद तुम्हारो कह्यो॥
मनि के काजे प्रभु इत ऐहैं। तबही तोकौं दरसन दैहैं॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे राजा, जिस समय जामवंत ने प्रभु को जान यों बखान किया, तिसी काल श्री मुरारी भक्त हितकारी ने जामवंत को लगन देख मगन हो, राम का भेष कर, धनुष बान धर दरसन दिया। आगे जामवंत ने अष्टाँग प्रनाम कर, खड़े हो, हाथ जोड़ अति दीनता से कहा कि हे कृपासिंधु दीनबंधु, जो आपकी आज्ञा पाऊं तो अपना मनोरथ कह सुनाऊं। प्रभु बोले-अच्छा कह। तब जामवंतने कहा कि हे पतितपावन दीनानाथ, मेरे चित्त में यों है कि यह कन्या जामवंती आप को ब्याह दूं औ जगत में जस बड़ाई लूं। भगवान् ने कहा—जो तेरी इच्छा में ऐसे आया तो हमें भी प्रमान है। इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही जामवंत

ने पहले तो श्रीकृष्णचंद को चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवे-
ले पूजा की, पीछे वेद की विधि से अपनी बेटी ब्याह दी और
उसके यौतुक में वह मनि भी धर दी।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे राजा, श्रीकृष्णचंद आनदकद तो मनि समेत जामवंती को ले यों गुफा से चले और जो यादव गुफा के मुँह पर प्रसेन औ श्रीकृष्ण के साथी खड़े थे, अब तिनकी कथा सुनिये। गुफा के बाहर तिन्हें जब अट्ठाइस दिन बीते औ हरि न आए, तब वे वहां से निरास हो अनेक प्रकार की चिंता करते और रोते पीटते द्वारका में आए। ये समाचार पाय सब यदुवंसी निपट घबराए औ श्रीकृष्ण का नाम ले ले महाशोक कर कर रोने पीटनें लगे और सारे रनवास में कुहराम पड़ गया। निदान सब रानियां अति व्याकुल हो तन छीन मन मलीन राजमंदिर से निकल रोती पीटती वहाँ आईं, जहां नगर के बाहर एक कोस पर देवी का मंदिर था।

पूजा कर, गौरी को मनाय, हाथ जोड़ सिर नाय कहने लगीं—हे देवी, तुझे सुर, नर, मुनि सब ध्यावते हैं औ तुझसे जो वर मांगते हैं सो पावते हैं। तू भूत, भविष्य, वर्तमान की बात जानती है, कह श्रीकृष्णचंद आनंदकंद कब आवेंगे। महाराज, वस रानियां तो देवी के द्वार धरना दे यों मनाय रही थीं औ उग्रसेन, वसुदेव, बलदेव आदि सब यादव महाचिन्ता में बैठे थे कि इस बीच श्रीकृष्ण अविनासी द्वारकावासी हंसते हंसते

जामवंती को लिये आय राजसभामें खड़े हुये। प्रभु का चंदमुख देख सबको आनंद हुआ औ यह शुभ समाचार पाय सब रानियां भी देवी पूज घर आईं औ मंगलाचार करने लगीं। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, श्रीकृष्णजी ने सभा में बैठते ही सत्राजीत को बुला भेजा औ वह मनि देकर कहा कि यह मनि हमने न ली थी, तुमने झूठमूठ हमें कलंक दिया था।

यह मनि जामवन्त ही लीनी। सुता समेत मोहि तिन दीनी॥
मनि लै तबहि चल्यौ सिरनाय। सत्राजित मन सोचतु जाय॥
हरि अपराध कियौ मैं भारी। अनजाने दीनी कुलगारी॥
जादीपति हि कलंक लगायौ। मनि के काजे बैर बढ़ायौ॥
अब यह दोष कटै सो कीजै। सतिभामा मनि कृष्णहि दीजै॥

महाराज, ऐसे मन ही मन सोच विचार करता, मनि लिये, मन मारे सत्राजीत अपने घर गया और उसने सब अपने जी का विचार स्त्रीसे कह सुनाया। तिसकी स्त्री बोली—स्वामी यह बात तुमने अच्छी विचारी। सतिभामा श्रीकृष्ण को दीजे औ जगत में जस लीजे। इतनी बात के सुनते ही सत्राजीत ने एक ब्राह्मन को बुलाय, शुभलग्न मुहूर्त्त ठहराय, रोली, अच्छत, रुपया नारियल एक थाली में घर पुरोहित के हाथ श्रीकृष्णचन्द के यहां टीका भेज दिया। श्रीकृष्णजी बड़ी धूमधाम से मौड़ बांध ब्याहन आए। तब सत्राजीत ने सब रीति भांति कर वेद की विधि से कन्यादान किया औ बहुत सा धन दे यौतुक में तिस मनि को भी धर दिया।

मनि को देखते ही श्रीकृष्णजी ने थिसमें से निकाल बाहर किया औ कहा कि यह मनि हमारे किसी काम की नहीं क्योंकि तुमने सूरज की तपस्या कर पाई। हमारे कुल में श्रीभगवान छुड़ाय और देवता की दी वस्तु नहीं लेते, यह तुम अपने घर में रक्खो। महाराज श्रीकृष्णचन्द्रजी के मुख से इतनी बात निकलते ही, सत्राजीत मनि ले लजाय रहा औ श्रीकृष्णजी सतिभामा को ले बाजे गाजे से निज धाम पधारे औ आनन्द से सतिभामा समेत राजमन्दिर में जा बिराजे।

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि कृपानिधान श्रीकृष्णजी को कलंक क्यौं लगा सो कृपा कर कहो। शुकदेवजी बोले—राजा,

चांद चौथ कौ देखियौ, मोहन भादौं मास।
ताते लग्यौ कलंक यह, अति मन भयो उदास॥

और सुनो—

जो भादौं की चौथ कौ, चांद निहारै कोय।
यह प्रसंग श्रवननि सुने, ताहि कलंक न होय॥

१८

भौमासुर-बध

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा, एक समय पृथ्वी मनुष तन धारन कर अति कठिन तप करने लगी। तहां ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन तीनों देवताओं ने आ तिससे पूछा कि तू किसलिए

इतनी कठिन तपस्या करती है। धरती बोली—कृपासिन्धु, मुझे पुत्र की वासना है, इस कारन महातप करती हूँ, दया कर मुझे एक पुत्र अति बलवंत महाप्रतापी बड़ा तेजस्वी दो, ऐसा कि जिसका सामना संसार में कोई न करै, न वह किसी के हाथ से मरै।

यह वचन सुन प्रसन्न हो तीनों देवताओं ने वर दे उसे कहा कि तेरा सुत नरकासुर नाम अति बली महाप्रतापी होगा, उससे लड़ कोई न जीतेगा, वह सृष्टि के सब राजाओं को जीत अपने बस करेगा, स्वर्ग लोक में जाय देवताओं को मार भगाय, अदिति के कुण्डल छीन आप पहनेगा और इन्द्र का छत्र छिनाय लाय अपने सिर धरेगा, संसार के राजाओं की कन्या सोलह सहस्र एक सौ लाय अनब्याही घेर रक्खेगा। तब श्रीकृष्णचन्द सब अपना कटक ले उस पर चढ़ जायँगे और उनसे तू कहेगी इसे मारो, पुनि वे मार सब राजकन्याओं को ले द्वारकापुरी पधारेंगे।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, तीनों देवताओं ने वर दे जब यों कहा तब भूमि इतना कह चुप हो रही कि मैं ऐसी बात क्यों कहूँगी कि मेरे बेटे को मारो। आगे कितने एक दिन पीछे भूमि पुत्र भौमासुर हुआ, तिसी का नाम नरकासुर भी कहते हैं। वह प्रागजोतष-पुर में रहने लगा। उस पुर के चारों ओर पहाड़ों की ओट और जल, अग्नि, पवन का कोट बनाय सारे संसार के राजाओं की कन्या बलकर छीन छीन, धाय समेत लाय लाय उसने वहां रक्खी। नित उठ उन सोलह सहस्र एक सौ राजकन्याओं के

खाने पीने पहरने की चौकसी वह किया करे और बड़े यत्न से उन्हें पलवावे।

एक दिन भौमासुर अति कोप कर पुष्पविमान में बैठ, जो लंका से लाया था, सुरपुर में गया और लगा देवताओं को सताने। जिसके दुख से देवता स्थान छोड़-छोड़ अपना जीव ले ले जिधर तिधर भाग गये, तब वह अदिति के कुण्डल औ इन्द्र का छत्र छीन लाया। आगे सब सृष्टि के सुर, नर, मुनियों को अति दुख देने लगा। जिसका सब आचरन सुन श्रीकृष्णचन्द जगबन्धुजी ने अपने जी में कहा—

वाहि मार सुन्दरि सब ल्याऊं। सुरपति छत्र तहीं पहुँचाऊं॥
जाय अदिति के कुण्डल देहौं। निर्भय राज इन्द्र कौं कैहौं॥

इतना कह पुनि श्रीकृष्णचन्दजी ने सतिभामा से कहा कि हे नारि, तू मेरे साथ चले तो भौमासुर मारा जाय, क्योंकि तू भूमि का अन्श है, इस लिये उसकी मां हुई। जब देवताओं ने भूमि को पुत्र का वर दिया था तब यह कह दिया था कि जब तू मारने को कहैगी तब तेरा पुत्र मरेगा, नहीं तो किसी से किसी भांति मारा न मरेगा। इस बात के सुनते ही सतिभामा जी कुछ मनही मन सोच समझ इतना कह अनमनी हो रहीं कि महा-राज मेरा पुत्र आपका सुत हुआ तुम उसे क्योंकर मारोगे। प्रभुने इस बातको टाल कहा कि उसके मारने की तो मुझे कुछ इतनी चिंता नहीं पर एक समै मैंने तुम्हें वचन दिया था तिसे पूरा किया चाहता हूँ। सतिभामा बोली—सो क्या। प्रभु कहने लगे कि एक समय नारदजी ने आय मुझे कल्पवृक्ष का फूल दिया

वह ले मैंने रुक्मिनी को भेजा। यह बात सुन तू रिसाय रही, तब मैंने यह प्रतिज्ञा करी कि तू उदास मत हो मैं तुझे कल्पवृक्ष ही ला दूंगा, सो अपना वचन प्रतिपालने को और तुझे वैकुंठ दिखाने को साथ ले चलता हूँ।

इतनी बात के सुनते ही सतिभामाजी प्रसन्न हो हरि के साथ चलने को उपस्थित हुई,तब प्रभु उसे गरुड़ पर अपने पीछे बैठाय साथ ले चले। कितनी एक दूर जाय श्रीकृष्णचंदजी ने सतिभामा जी से पूछा कि सच कह सुन्दरि, इस बात को सुन तू पहले क्या समझ अप्रसन्न हुई थी, उसका भेद मुझे समझाय के कह जो मेरे मन का सन्देह जाय। सतिभामा बोली कि महाराज, तुम भौमासुर को मार सोलह सहस्र एक सौ राजकन्या लाओगे जिनमें मुझे भी गिनोगे, यह समझ अनमनी हुई थी।

श्रीकृष्णचन्द जी बोले कि तू किसी बात की चिन्ता मतकर, मैं कल्पवृक्ष लाय तेरे घर में रक्खुंगा औ तू विसके साथ मुझे नारद मुनि को दान कीजो, फिर मोल ले मुझे अपने पास रखना, मैं तेरे सदा अधीन रहूँगा। ऐसे ही इन्द्रानी ने इन्द्र को वृक्ष के साथ दान किया था औ अदितिने कश्यप को। इस दान के करने से कोई नारी तेरे समान मेरे न होगी। महाराज इसी भांति की बातें कहते कहते श्रीकृष्णचंदजी प्रागजोतिपपुर के निकट जा पहुंचे। वहाँ पहाड़ का कोट, अग्नि, जल, पवन की ओट देखते ही प्रभुने गरुड़ औ सुदरसनचक्र को आज्ञा की। विन्होंने पल भर में ढाय, बुझाय, बहाय, थाम अच्छा पंथ बनाय लिया।

जों हरि आगे बढ़ नगर में जाने लगे तो गढ़ के रखवाले

दैत्य लड़ने को चढ़ आये, प्रभु ने तिन्हें गदा से सहज ही मार गिराए। तिनके मरने का समाचार पाय मुर नाम राक्षस पांच सीसवाला जो उस पुरगढ़ का रखवाला था, अति क्रोध कर त्रिशूल हाथ में ले श्रीकृष्णजी पर चढ़ आया औ लगा आंखें लाल कर दांत पीस पीस कहने कि—

मोतें बली कौन जग और। वाहि देखिहौं मैं या ठौर॥

महाराज, इतना कह दैत्य श्रीकृष्णजी पर यों दूटा कि जौं गरुड़ सर्प पर झपटे। आगे उसने त्रिशूल चलाया, सो प्रभुने चक्र से काट गिराया। फिर खिजलाय मुरने जितने शस्त्र हरिपर घाले, तितने प्रभु ने सहज ही काट डाले। पुनि वह हकबकाय दौड़ कर प्रभु से आय लिपटा और मल्लयुद्ध करने लगा। निदान कितनी एक बेर में युद्ध करते करते, श्रीकृष्णजी ने सतिभामाजी को महा भयमान जान सुदरसन चक्र से उसके पांचो सिर काट डाले। धड़ से सिर गिरते ही धमका सुन भौमासुर बोला यह अति शब्द काहे का हुआ? इस बीच किसी ने जा सुनाया कि महाराज, श्रीकृष्ण ने आय मुर दैत्य को मार डाला।

इतनी बात के सुनते ही प्रथम तो भौमासुर ने अति खेद किया। पीछे अपने सेनापति को युद्ध करने का आयसु दिया। वह सब कटक साजलडने को गढ़ के द्वार पर जा उपस्थित हुआ और तिसके पीछे अपने पिता का मरना सुन मुर के सात बेटे जो अति बलवान और बड़े योधा थे, सो भी अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र धारन कर श्रीकृष्णचंदजी के सनमुख लड़नेको जा

खड़ हुए। पीछे से भौमासुर ने अपने सेनापति औ मुरके बेटों से कहला भेजा कि तुम सावधानी से युद्ध करो मैं भी आवता हूँ।

लड़ने को आज्ञा पाते ही सब असुर दल साथ ले मुर के बेटों समेत भौमासुर का सेनापति श्रीकृष्णजी से युद्ध करने को चढ़ आया औ एकाएकी प्रभु के चारों ओर सब कटक दल बादल सा छाय आया। सब ओर ने अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र भौमासुर के सुर श्रीकृष्णचंद्र पर चलाते थे और वे सहज सुभाव ही काट काट ढेर करते जाते थे। निदान हरि ने श्रीसतिभामाजी को महा भयातुर देख असुरदल को मुर के सातो बेटों समेत सुदरसन चक्र से बात की बात में यों काट गिराया कि जैसे किसान ज्वार की खेती को काट गिरावे।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, मुर के पुत्रों समेत सब सैना कटी सुन, पहले तो भौमासुर अति चिंता कर महा घबराया, पीछे कुछ सोच समझ धीरज धर कितने एक महाबली राक्षसों को अपने साथ लिए, लाल-लाल आंखें क्रोधसे किये,कसकर फेंट बांधे,सर साधे बकता झकता श्रीकृष्णजी से लड़ने को आय उपस्थित हुआ। जो भौमासुर ने प्रभु को देखा तो उसने एक बार अति रिसाय मूठ की मूठ बान चलाए, सो हरि ने तीन तीन टुकड़े कर काट गिराये, उस काल—

काढ़ खड्ग भीमासुर लियौ। कोपि हंकारि कृष्ण उर
करै शब्द अति मेघ समान। अरे गंवार न पावै ज
करकस बचन तहां उचरै। महायुद्ध भौमासुर क

महाराज, वह तो अति बल कर इन पर गदा चलात
और श्रीकृष्णजी के शरीर में उसकी चोट यों लगती थी, कि
हाथी के अंग में फूलछड़ी। आगे वह अनेक-अनेक अस्त्र शस्त्र
प्रभु से लड़ा औ प्रभु ने सब काट डाले। तब वह फिर घर जा
एक त्रिशूल ले आया और युद्ध करने को उपस्थित हुआ।

तब सतिभामा टेर सुनाई। अब किन याहि हतौ यदुराई॥
बचन सुनत प्रभू चक्र संभारयो। काटि सीस भौमासुर मारयो॥
कुंडल मुकुट सहित सिर परयौ। धर के गिरत शेष अर हरयौ॥
तिहूँ लोक में आनंद भयौ। सोच दुःख सबही को गयौ॥
तासु जोति हरि देह समानी। जै जै शब्द करैं सूर ज्ञानी॥
घिरे विमान पुहुप बरसावैं। वेद बखानि देव जस गावैं॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, भौमासुर के मरते ही भूमि औ भौमासुर की स्त्री पुत्र समेत आय प्रभु के सनमुख हाथ जोड़, सिर नवाय, अति बिनती कर कहने लगी—हे जोतीस्वरूप, ब्रह्मरूप, भक्तहितकारी तुम साधु संत के हेतु धरते हो भेष अनंत, तुम्हारी महिमा, लीला माया है अपार, तिसे कौन जाने औ किसे इतनी समर्थ है जो बिन कृपा तुम्हारी तिसे बखाने। तुम सब देवों के हो देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव।

महाराज, ऐसे कह छत्र कुण्डल पृथ्वी प्रभु के आगे धर फिर बोली—दीनानाथ, दीनबन्धु, कृपासिन्धु, यह सुभगदन्त भौमासुर का बेटा आपकी सरन आया है, अब करुना कर अपना कोमल कमल सा कर इसके सीस पर दीजे औ अपने भय से इसे निर्भय कीजे। इतनी बात के सुनते ही करुना निधान श्रीकान्ह ने करुना कर सुभगदन्त के सीस पर हाथ धरा और अपने डर से उसे निडर करा। तब भौमावती भौमासुर की स्त्री बहुत सी भेट हरि के आगे धर, अति विनती कर, हाथ जोड़, सीस झुकाय खड़ी हो बोली—

हे दीनदयाल, कृपाल, जैसे आपने दरसन दे हम सबको कृतार्थ किया, तैसे अब चलकर मेरा घर पवित्र कीजै। इस बात के सुनते ही अंतरयामी भक्तहितकारी श्रीमुरारी भौमासुर के घर पधारे। उस काल वे दोनों मां बेटे हरि को पाटंबर के पांवड़े डाल घर में ले जाय सिंहासन पर बिठाय, अरघ दे, चरनामृत ले अति दीनता कर बोले—हे त्रिलोकीनाथ, आपने भला किया, जो इस महाअसुर का वध किया। हरि से बिरोध कर किसने संसार में सुख पाया? रावन कुम्भकरन कंसादि ने बैर कर अपना जी गंवाया, और जिस जिस ने आपसे द्रोह किया, तिस तिसका जगत् में नाम लेवा पानीदेवा कोई न रहा।

इतना कह फिर भौमावती बोली—हे नाथ, अब आप मेरी विनती मान, सुभगदन्त को निज सेवक जान, जो सोलह सहस्र राजकन्या इसके बाप ने अनव्याही रोक रक्खी हैं सो अंगीकार

कीजे । महाराज यों कह उसने सब राजकन्याओं को निकाल प्रभु के सोंही पांत का पांत ला खड़ा किया । वे जगत् उजागर रूपसागर श्रीकृष्णचन्द आनन्दकंद को देखते ही मोहित हो, अति गिड़गिड़ाय, हा हा खाय, हाथ जोड़ बोलीं—नाथ जैसे आपने आय हम अबलाओं को इस महादुष्ट की बध से निकाला, तैसे अब कृपाकर इन दासियों को साथ ले चलिये औ निज सेवा में रखिये तो भला ।

यह बात सुन श्रीकृष्णचन्द ने तिन्हें इतना कह कि हम तुम्हारे साथ ले चलने को रथ पालकियां मंगावें हैं, सुभगदन्त की ओर देखा । सुभगदंत प्रभु के मन का कारण समझ अपनी राजधानी में जाय, हथी घोडे सजवाय, घुड़बहल औ रथ झमझमाते जगमगाते जुतवाय, सुखपाल, पालकी, नालकी, डोली, चंडोल, झलाबोर के कसवाय लिवाय लाया । हरि देखते ही राजकन्याओं को उन पर चढ़ने की आज्ञा दे सुभगदंत को साथ ले राजमंदिर में जाय उसे राजगादी पर बिठाय राजतिलक उसे निज हाथ से दे आप बिदा ले जिस काल सब राजकन्याओं को साथ लिए वहां से द्वारका को चले तिस समै की सोभा कुछ बरनी नहीं जाती कि हाथी बैलों की झला-बोर गंगा-यमुनी झूलों की चमक और घोड़ों की पाखरों की दमक औ सुखपाल, पालकी, नालकी, डोली, चंडोल, रथ, घुड़ब-हलों के घटाटोपों की ओप औ उनकी मोतियों की झालरों की जोत सूरज की जोत से मिल एक हो जगमगाय रही थी ।

आगे श्रीकृष्णचंद सब राजकन्याओं को लिए कितने एक दिन में चले २ द्वारकापुरी पहुंचे। वहां जाय राजकन्याओं को राजमंदिर में रख, राजा उग्रसेन के पास जाय प्रनाम कर पहले तो श्रीकृष्णजी ने भौमासुर के मारने और राजकन्याओं के छुड़ाय लाने का सब भेद कह सुनाय। फिर राजा उग्रसेन से विदा होय प्रद्यु सतिभा को साथ ले, छत्र कुंडल लिए गरूड़ पर बैठ बैकुंठ को गये। तहाँ पहुँचते ही—

कुण्डल दिए अदिति के ईस। छत्र धरयौ सुरपति के सीस॥

यह समाचार पाय वहां नारद आया, तिस से हरि ने कह सुनाया कि तुम जाय इंद्र से कहो जो सतिभामा तुमसे कल्पवृत्त मांगती है। देखो वह क्या कहता है? इस बात का उत्तर मुझे ला दो पीछे समझा जायगा। महाराज, इतनी बात श्रीकृष्णचन्दजी के मुख से सुन नारदजी ने सुरपति से जाय कहा कि सतिभामा तुम्हारी भौजाई तुमसे कपल्तरु मांगती है, तुम क्या कहते हो सो कहो, मैं उन्हें जाय सुनाउं कि इन्द्र ने यह कहा। इस बात के सुनते ही इन्द्र पहले तो हकबकाय कुछ सोच रहा, पीछे उससे नारद मुनि का कहा सब इन्द्रानी से जाय कहा।

इन्द्रानी सुन कहै रिसाय। सुरपति तेरी कुमति न जाय॥
तै है बड़ो मूढ़ पति अंधु। को है कृष्ण कौन को बंधु॥

तुझे वह सुध है कै नहीं, जो उसने ब्रज में से तेरी पूजा मेट ब्रजवासियों से गिर पुजवाय, छलकर तेरी पूजा का सब पकवान आप खाया। फिर सात दिन तुझे गिर पर बरसवाय

उसने तेरा गर्व गंवाय सब जगत् में निरादर किया। इस बात की कुछ तेरे ताईं लाज है कै नहीं। वह अपनी स्त्री की बात मानता है, तू मेरा कहा क्यों नहीं सुनता।

महाराज, जब इन्द्रानि ने इन्द्र से यों कह सुनाया, तब वह अपना सा मुंह ले उलट नारदजी के पास आया और बोला—ऋषिराय, तुम मेरी ओरसे जाय श्रीकृष्णचन्द से कहो कि कल्पवृक्ष नंदन वन तज अनत न जायगा औ जायगा तो वहां किसी भांति न रहेगा। इतना कह फिर समझा के कहियो जो आगे की भांति अब यहां हमसे बिगाड़ न करैं, जैसे ब्रज में ब्रजवासियों को बहकाय गिरि का मिस कर सब हमारी पूजा की सामां खाय गये, नहीं तो महायुद्ध होगा।

यह बात सुन नारदजी ने आय श्रीकृष्णचन्द से इन्द्र की बात कही कह सुनाय के कहा—महाराज, कल्पतरु इन्द्र तो देता था पर इन्द्रानि ने न देने दिया। इस बात के सुनते ही श्रीमुरारी गर्वप्रहरी नंदनवन में जाय, रखवालों को मार भगाय, कल्पवृक्ष को उठाय गरुड़ पर धर ले आये। उस काल वे रखवाले जो प्रभु के हाथ की मार खाय भागे थे, इन्द्र के पास जाय पुकारे। कल्पतरु के ले जाने के समाचार पाय महाराज, राजा इन्द्र अति कोप कर वज्र हाथ में ले, सब देवताओं को बुलाय, ऐरावत हाथी पर चढ़ श्रीकृष्णचन्द्रजी से युद्ध करने को उपस्थित हुआ।

फिर नारद मुनिजी ने जाय इन्द्र से कहा—राजा, तू महा मूर्ख है जो स्त्री के कहे भगवान से लड़ने को उपस्थित हुआ है।

ऐसी बात कहते तुझे लाज नहीं आती। जो तुझे लड़ना ही था तो जब भौमासुर तेरा छत्र औ अदिति के कुंडल छिनाय ले गया तब क्यों न लड़ा, अब प्रभु ने भौमासुर को मार कुंडल औ छत्र ला दिया, तो तू उनही से लड़ने लगा। जो तू ऐसा ही बलवान था तो भौमासुर से क्यौं न लड़ा? तू वह दिन भूल गया जो ब्रज में जाय प्रभु की अति दीनता कर अपना अपराध क्षमा कराय आया, फिर उनहीं से लड़ने चला है। महाराज, नारदजी के मुख से इतनी बात सुनते ही राजा इंद्र जों युद्ध करने को उपस्थित हुआ तों अछताय-पछताय लज्जित हो मन मार रह गया।

आगे श्रीकृष्णचंद द्वारका पधारे, तब हरपित भये देख हरि को यादव सारे। प्रभु ने सतिभामा के मंदिर में कल्पवृक्ष ले जाय के रक्खा औ राजा उग्रसेन ने सोलह सहस्र एक सौ जो राजकन्या अनब्याही थीं, सब वेद रीति से श्रीकृष्णचंद को ब्याहीं।

भयौ वेद विधि मंगलचार। ऐसे हरि विहरत संसार।
सोलह सहस्र एकसौ ग्रेहा। रहत कृष्ण कर परम सनेहा॥
पटरानी आठो जे गनी। प्रीति निरंतर तिनसों घनी॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा, हरि ने ऐसे भौमासर को वध किया औ अदिति का कुंडल औ इंद्र का छत्र ला दिया। फिर सोलह सहस्र एक सौ आठ विवाह कर श्रीकृष्णचंद द्वारकापुरी में आनंद से सब को ले लीला करने लगे।

१६

नृग-मोक्ष

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, इक्ष्वाकुवंसी राजा नृग बड़ा ज्ञानी, दानी, धर्मात्मा, साहसी था। उसने अनगिनत गौ दान किया। जो गंगा की बालू के कन, भादों के मेह की बूंदें औ आकाश के तारे गिने जायं तो राजा नृग के दान की गाय भी गिनी जायँ। ऐसा जो ज्ञानी महादानी राजा सो थोड़े अधर्म से गिरगिट हो अंधे कुएं में रहा, तिसे श्रीकृष्णचंदजी ने मोक्ष दिया।

इतनी कथा सुन श्रीशुकदेवजी से राजा परीक्षित ने पूछा—महाराज, ऐसा धर्मात्मा दानी राजा किस पाप से गिरगिट हो अंधे कुएं में रहा औ श्रीकृष्णचंदजी ने कैसे उसे तारा, यह कथा तुम मुझे समझाकर कहो जो मेरे मनका संदेह जाय। श्रीशुकदेव जी बोले—महाराज, आप चित दे मन लगाय सुनिये, मैं जों की तों सब कथा कह सुनाता हूँ कि राजा नृग तो नित प्रति गौ दान किया करते ही थे, पर एक दिन प्रात ही न्हाय संध्या पूजा करके सहस्र धौली, धूमरी, काली, पीली, भूरी, कबरी गौ मंगाय, रूपे के खुर, सोने के सींग, तांबे की पीठ समेत पाटंबर उढ़ाय, संकल्पीं, और उनके ऊपर बहुत-सा अन धन ब्राह्मनों को दिया, वे ले अपने घर गये। दूसरे दिन फिर राजा उसी भांति गौ दान करने लगा तो एक गाय पहले दिन की संकल्पी अनजाने

आन मिली, सो भी राजा ने उन गायों के साथ दान कर दी। ब्राह्मन ले अपने घर को चला। आगे दूसरे ब्राह्मन ने अपनी गौ पहचान बाट में रोकी औ कहा कि यह गाय मेरी है मुझे कल्ह राजा के ह्यां से मिली है, भाई तू क्यों इसे लिये जाता है। वह ब्राह्मण बोला—इसे तो मैं अभी राजा के ह्यां से लिये चला आता हूँ तेरी कहां से हुई। महाराज, वे दोनों ब्राह्मन इसी भांति मेरी मेरी कर झगड़ने लगे। निदान झगड़ते-झगड़ते वे दोनों राजा के पास गये। राजा ने दोनों की बात सुन हाथ जोड़ अति विनती कर कहा कि—

कोऊ लाख रुपया लेउ। गैया एक काहू कौं देउ॥

इतनी बात के सुनते ही दोनों झगड़ालू ब्राह्मन अति क्रोध कर बोले कि महाराज, जो गाय हमने स्वस्ति बोल के ली सो करोड़ रुपये पाने से भी हम न देंगे, वह तो हमारे प्रान के साथ है। महाराज, पुनि राजा ने उन ब्राह्मनों को पाओं पड़-पड़ अनेक अनेक भांति फुसलाया, समझाया पर उन तामसी ब्राह्मनों ने राजा का कहना न माना। निदान महा क्रोध कर इतना कह दोनों ब्राह्मन गाय छोड़ चले गये कि महाराज जो गाय आपने संकल्प कर हमें दी औ हमने स्वस्ति बोल हाथ पसार ली, वह गाय रुपये से नहीं दी जाती, अच्छा यों तुम्हारे यहां रही तो कुछ चिंता नहीं।

महाराज, ब्राह्मनों के जाते ही राजा नृग पहले तो अति उदास हो मन ही मन कहने लगा कि यह अधर्म अनजाने मुझसे

हुआ सो कैसे छुटेगा औ पीछे अति दानपुन्य करने लगा; कितने एक दिन बीते राजा नृग कालबस हो मर गया, उसे यम के गन धर्मराज के पास ले गए। धर्मराज राजा को देखते ही सिहासन से उठ खड़ा हुआ। पुनि आवभगत कर आसन पर बैठाय अति हित कर बोला—महाराज, तुम्हारा पुन्य है बहुत, औ पाप है थोड़ा, कहो पहले क्या भुगतोगे।

सुन नृप कहत जोर कै हाथ। मेरो धर्म टरौ जनि नाथ॥
पहले हौं भुगतौंगो पाप। तन धर कै सहि हौं संताप॥

इतनी बात के सुनते ही धर्मराज ने राजा नृग से कहा कि महाराज तुमने अनजाने जो दान की हुई गाय फिर दान की, उसी पाप से आपको गिरगिट हो बन बीच गोमती तीर अंधे कुएं में रहना होगा। जब द्वापर के अन्त में श्रीकृष्णचन्द अवतार लेंगे तब तुम्हें वे मोक्ष देंगे, महाराज इतना कह धर्मराज चुप रहा औ राजा नृग उसी समैं गिरगिट हो अन्धे कुएं में जा गिरा औ जीव भक्षन कर वहां रहने लगा।

आगे कई जुग बीते द्वापर के अन्त में श्रीकृष्णचन्दजी ने अवतार लिया औ ब्रजलीला कर जब द्वारका को गए औ उनके बेटे पोते भए, तब एक दिन कितने एक श्रीकृष्णजी के बेटे पोते मिल अहेर को गए औ बन में अहेर करते २ प्यासे भए। देवी, वे बन में जल ढूंढते २ उसी अन्धे कुंए पर गए जहां राजा नृग गिरगिट का जन्म ले रहा था, कुएं में झांकते ही एक ने पुकार के सबसे कहा कि अरे भाई, इस कूप में कितना बड़ा एक

गिरगिट है।

इतनी बात के सुनते ही सब दौड़ आये औ कुएं के मनघटे पर खड़े हो लगे पगड़ी फेंटे मिलाय २ लटकाय २ उसे काढ़ने औ आपस में यों कहने कि भाई, इसे विन कुएं से निकाले-हम यहां से न जायेंगे। महाराज, जब वह पगड़ी फेंटों की रस्सी से न निकला तब उन्होंने गांव से सन, सूत, मूंज, चाम की मोटी मोटी भारी-भारी बरतें मंगवाई और कुएं में फांस गिरगिट को बांध बलकर खैंचने लगे, पर वह वहां से टसका भी नहीं। तब किसी ने द्वारका में जाय श्रीकृष्णजी से कहा कि महाराज, बन में अंधे कुएं के भीतर एक बड़ा मोटा गिरगिट है, उसे सब कुंवर काढ़ हारे पर वह नहीं निकलता।

इतनी बात के सुनते ही हरि उठ धाये और चले २ वहां आये जहां सब लड़के गिरगिट को निकाल रहे थे। प्रभु को देखते ही सब लड़के बोले कि पिता देखो यह कितना बड़ा गिरगिट है, हम बड़ी बेर से इसे निकाल रहे हैं यह निकलता नहीं। महाराज, इस वचन को सुन जों श्रीकृष्णचन्द्रजी नें कुंए में उतर उसके शरीर में चरन लगाया, तों वह देह को छोड़ अति सुन्दर पुरुप हुआ।

भूपति रूप रह्यौ गहि पाय। हाथ जोड़ बिनवै सिर नाय॥

कृपासिन्धु, आपने बड़ी कृपा की जो इस महा विपत में आय मेरी सुध ली। शुकदेवजी बोले—राजा, जब वह मनुष रूप हो हरि से इस ढब की बातें करने लगा, तब यादुओं के बालक औ

हरि के वेटे पोते अचरज कर श्रीकृष्णचन्द से पूछने लगे कि महारज यह कौन है, और किस पाप से गिरगिट हो यहां रहा था, सो कृपाकर कहो तो हमारे मन का सन्देह जाय। उस काल प्रभु ने आप कुछ न कह उस राजा से कहा—

अपनो भेद कहो समझाय। जैसे सबै सुनैं मन लाय॥
को हो आप कहां ते आये। कौन पाप यह काया पाए?
सुनकै नृग कह जोरे हाथ। तुम सब जानत हो यदुनाथ॥

तिस पर आप पूछते हो तो मैं कहता हूँ, मेरा नाम है राजा नृग। मैंने अनगिनत गौ ब्राह्मनों को तुम्हारे निमित्त दीं। एक दिन की वात है कि मैंने कितनी एक गाय संकल्प कर ब्राह्मनों को दीं दूसरे दिन उन गायों में से एक गाय फिर आई सो मैंने और गायों के साथ अनजाने दूसरे द्विज को दान कर दीं। जों वह लेकर निकला तो पहले ब्राह्मन ने अपनी गौ पहचान इससे कहा—यह गाय मेरी है मुझे कल राजा के ह्यां से मिली है तू इसे क्यों लिए जाता है। वह बोला मैं अभी राजा के ह्यां से लिये चला आता हूँ तेरी कैसे हुई। महाराज, वे दोनों विप्र इसी वात पर झगड़ते झगड़ते मेरे पास आये। मैंने उन्हें समझाया और कहा कि एक गाय के पलटे मुझसे लाख रुपैया लो औ तुममें से कोई यह गाय छोड़ दो।

महाराज, मेरा कहा हठकर उन दोनों ने न माना। निदान गौ छोड़ क्रोध कर वे दोनों चले गये। मैं अछताय पछताय मन मार बैठ रहा। अन्त समै जम के दूत मुझे धर्मराज के पास ले गये।

धर्मराजने मुझसे पूछा कि राजा, तेरा धर्म है बहुत औ पाप थोड़ा, कह पहले क्या भुगतेगा। मैंने कहा—पाप। इस बात के सुनते ही महाराज धर्मराज बोले कि राजा तैने ब्राह्मण को दी हुई गाय फिर दान की इस अधर्म से तू गिरगिट हो पृथ्वीपर जाय गोमती तीर वन के बीच अंधकूप में रह। जब द्वापर युग के अन्त में श्री कृष्णचंद अवतार ले तेरे पास जायंगे तब तेरा उद्धार होगा।

महाराज, तभी से मैं सरट स्वरूप इस अंधकूप में पड़े आपके चरनकमल का ध्यान करता था, अब आय आपने मुझे महाकष्ट से उबारा औ भवसागर से पार उतारा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, इतना कह राजा नृग तो विदा हो विमान में बैठ बैकुंठ को गया औ श्रीकृष्णचंदजी सब बाल गोपालों को समझाय के कहने लगे—

विप्र दोष जनि कोऊ करौ। मत कोउ अंश विप्र को हरौ॥
मन संकल्प कियौ जनि राखौ। सत्य वचन विप्रन सों भाखौ॥
विप्रहिं दियौ फेर जो लेइ। ताकौं दंड इतौ यम देइ॥
विप्रन के सेवक भएरहियौ। सब अपराध विप्र कौ सहियौ॥
विप्रहि माने सो महि माने। विप्रन अरु मोहि भिन्न न जाने॥

जो मुझ में औ ब्राह्मण में भेद जानेगा सो नर्क में पड़ेगा औ विप्रको मानेगा वहमुझे पावेगा औ निस्संदेह परमधाममें आवेगा।

महाराज, यह बात कह श्रीकृष्णजी सबको वहां से ले द्वारिकापुरी पधारे।

२०

पौंड्रक-मोक्ष

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, काशीपुरी में एक पौंड्रक नाम राजा, सो महाबली औ बड़ा प्रतापी था। तिसने विष्णु का भेष किया छल बल कर सबका मन हर लिया। सदा पीत बसन, बैजंतीमाल, मुक्तमाल, मनिमाल पहिने रहै औ संख, चक्र, गदा, पद्म लिए, दो हाथ काठ के किये, एक घोड़े पर काठ ही का गरुड़ धरे उस पर चढ़ा फिरे। वह वासुदेव पौंड्रक कहावे औ सबसे आपको पुजावे। जो राजा उसकी आज्ञा न माने उस पर चढ़ जाय, फिर मार धाड़ कर विसे अपने बस में रक्खे।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, विसका यह आचरन देख सुन देश देश, नगर नगर, गांव गांव घर घर में लोग चरचा करने लगे कि एक वासुदेव तो व्रजभूमि के बीच यदुकुल में प्रगट हुए थे सो द्वारकापुरी में विराजते हैं, दूसरा अब काशी में हुआ है। दोनों में हम किसे सच्चा जानें औ मानें। महाराज, देश देश में यह चरचा हो रही थी कि कुछ संधान पाय, वासुदेव पौंड्रक एक दिन अपनी सभा में आय बोला—

को है कृष्ण द्वारिका रहै। ताकौं वासुदेव जग कहै ॥
भक्त हेतु भू हौं औतरयौ। मेरो भेष तहां तिन धरयौ॥

इतनी बात कह दूत को बुलाय, उसने ऊंच नीच की बातें सब समझाय बुझाय इतना कह

द्वारका में श्रीकृष्णचंद्रजी के पास भेज दिया कि कै तौ मेरा भेष बनाए फिरता है सो छोड़ दे, नहीं तो लड़ने का विचार कर। आज्ञा पाते ही दूत बिदा हो काशी से चला चला द्वारकापुरी पहुँचा औ श्रीकृष्णचंद्रजी की सभा में जा उपस्थित हुआ। प्रभु ने इससे पूछा तू कौन है और कहां से आया है? बोला—मैं काशीपुरी के वासुदेव पौंड्रक का दूत हूँ। स्वामी का पठाया कुछ संदेशा कहने आप के पास आया हूँ। कहो तो कहूँ। श्रीकृष्णचंद बोले—अच्छा कह। प्रभु के मुख से यह वचन निकलते ही दूत खड़ा हो हाथ जोड़ कहने लगा कि महाराज, वासुदेव पौंड्रक ने कहा है कि त्रिभुवनपति जगत का करता तो मैं हूँ, तू कौन है जो मेरा भेष बनाय जरासंध के डर से भाग द्वारका में जाय रहा है। कै तो मेरा बाना छोड़ शीघ्र आय मेरी शरण गह नहीं तो तेरे सब यदुवंसियों समेत तुझे आय मारूँगा और भूमि का भार उतार अपने भक्तों को पालूंगा। मैं ही हूँ अलख अगोचर निरंकार। मेरा ही जप, तप, यज्ञ, दान करते हैं सुर, मुनि, ऋषि, नर बार बार। मैं ही ब्रह्मा हो बनाता हूँ, विष्णु हो पालता हूँ, शिव हो संहारता हूँ। मैंने ही मच्छ रूप हो वेद डूबते निकाले, कच्छ सरूप हो गिरधारन किया, बाराह बन भूमि को रख लिया, नृसिंह अवतार ले हिरनकस्यप को बध किया, बावन अवतार ले बलि को छला, रामावतार ले महादुष्ट रावन को मारा। मेरा यही काम है कि जब जब असुर मेरे भक्तों को आय सताते हैं तब तब मैं अवतार ले भूमि का भार उतारता हूं।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीछित से कहा कि

महाराज, वासुदेव पौंड्रक का दूत तो इस ढब की बातें करता था औ श्रीकृष्ण आनंदकंद रत्नसिंहासन पर बैठे यादवों की सभा में हंस २ कर सुनते थे, कि इस बीच कोई जदुबंसी बोल उठा—

तोहि कहा जम आयो लैन। भाखत जो तू ऐसे बैन॥
मारैं कहा तोहि हम नीच। आयो है कपटी के बीच॥

जो तू बसीठ न होता तो बिना मारे न छोड़ते, दूत को मारना उचित नहीं। महाराज, जब जदुबंसीने यह बात कही तब श्रीकृष्ण जी ने उस दूत को निकट बुलाय, समझाय बुझाय के कहा कि तू जाय अपने वासुदेव से कह कि कृष्ण ने कहा है जो मैं तेरा बाना छोड़ शरण आता हूँ सावधान हो रहे। इतनी बात के सुनते ही दूत दंडवत कर बिदा हुआ औ श्रीकृष्णचंद जी भी अपनी सेना ले काशीपुरी को सिधारे। दूत ने जाय वासुदेव पौंड्रक से कहा कि महाराज, मैंने द्वारका में जाय आपका कहा सदेशा सब श्रीकृष्ण को सुनाया, सुनकर उन्हों ने कहा कि तू अपने स्वामी से जाय कह कि सावधान हो रहे, मैं उसका बाना छोड़ सरन लेन आता हूँ।

महाराज, बसीठ यह बात कहता ही था कि किसी ने आय कहा—महाराज, आप निचिंत क्यों बैठे हो श्रीकृष्ण अपनी सेना ले चढ़ि आया। इतनी बात सुनते ही वासुदेव पौंड्रक उसी भेष से अपना सब कटक ले चढ़ धाया औ चला चला श्रीकृष्ण चंद के सनमुख आया। तिसके साथ एक और भी काशी का राजा चढ़ दौड़ा। दोनों ओर दल तुल कर खड़े हुए, जुझाऊ

बाजने लगे, सूर वीर रावत लड़ने औ कायर खेत छोड़ छोड़ अपना जीव ले ले भागने लगे। उस काल युद्ध करता करता कालबस हो बासुदेव पौंड्रक उसी भांति श्रीकृष्णचंद के सनमुख जा ललकारा, उसे विष्णु भेष से देख, जदुबंसियों ने श्रीकृष्णचन्दजी ने पूछा कि महाराज इसे इस भेष में कैसे मारेंगे? प्रभु ने कहा—कपटी के मारने का कुछ दो नहीं।

इतना कह हरि ने सुदरसन चक्र को आज्ञा दी। उसने जाते ही जो दो भुजा काठ की थीं सो उखाड़ लीं, उसके साथ गरुड़ भी टूटा औ तुरंग भी भागा। जब बासुदेव पौंड्रक नीचे गिरा तब सुदरसन ने उसका सिर काट फेंका।

कटत सीस नृप पौंड्रक तरयो। सीस जाय काशी में परयो॥
जहां हुतौ ताकौ रनवासु। देखत सीस सुन्दरी तासु॥
रोवें यों कहि खैंचें बार। यह गति कहा भई करतार॥
तुम तो अजर अमर ह्वै भए। कैसे प्रान पलक में गए॥

महाराज, रानियों का रोना सुन सुदत्त नाम उसका एक बेटा था सो वहां आय, बाप का सिर कटा देख अति क्रोध कर कहने लगा कि जिसने मेरे पिता को मारा है उससे मैं बिन पलटा लिये न रहूंगा।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, बासुदेव पौंड्रक को मार श्रीकृष्णचंदजी तो अपना सब कटक ले द्वारका को सिधारे औ उसका बेटा अपने बाप का बैर लेने को महादेव जी की अति कठिन तपस्या करने लगा। इसमें कितने एक दिन पीछे एक दिन प्रसन्न हो महादेव भोलानाथ ने आय कहा कि

बर मांग। यह बोला—महाराज, मुझे यही बर दीजे कि श्रीकृष्ण से मैं अपने पिता का बदला लूं। शिवजी बोले–अच्छा जो तू बैर लिया चाहता है तो एक काम कर। बोला—क्या? कहा—उलटे वेदमंत्रों से यज्ञ कर, इससे एक राक्षसी अग्नि से निकलेगी, उससे जो तू कहेगा सो वह करेगी। इतना बचन शिवजी के मुख से सुन महाराज, वह जाय, ब्राह्मनों को बुलवाय वेदी रच तिल, जौ, घी, चीनी आदि सब होम की सामां ले शाकल बनाय लगा उलटे वेदमंत्र पढ़ पढ़ होम करने। निदान यज्ञ करते करते अग्निकुण्ड से कृत्या नाम एक राक्षसी निकली, सो श्रीकृष्णजी के पीछे ही पीछे नगर देस गांव जलाती जलाती द्वारकापुरी में जा पहुंची औ लगी पुरी को जलाने। नगर को जलते देख सब जदुबंसी भय खाय, श्रीकृष्णचंद जी के पास जा पुकारे कि महाराज, इस आग से कैसे बचेंगे, यह तो सारे नगर को जलाती चली आती है। प्रभु बोले—तुम किसी बात की चिंता मत करो, यह कृत्या नाम राक्षसी काशी से आई है, मैं अभी इसका उपाय करता हूँ।

महाराज, इतना कह श्रीकृष्णजी ने सुदरसन चक्र को आज्ञा दी कि इसे मार भगाव और इसी समय जाय काशीपुरीको जलाय आव। हरि की आज्ञा पाते ही सुदरशन चक्र ने कृत्या को मार भगाया औ बात के कहते ही काशी को जा जलाया।

परजा भागी फिरैं दुखारी। गारी देहिं सुदक्षहिं भारी॥
फिरयो चक्र शिवपुरी जराय। सोई कही कृष्ण सो आय॥

२१

जरासंध-वध

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र करुणासिंधु दीनबन्धु भक्तहितकारी ऋषि मुनि ब्राह्मण क्षत्रियों की सभा में बैठे थे कि राजा युधिष्ठिर ने आय गिड़गिड़ाय बिनती कर हाथ जोड़ शिर नाय के कहा हे शिव बिरंचि के ईस ! तुम्हारा ध्यान करते है सदा सुर मुनि ऋषि योगीश। तुम हौ अलख अगोचर अभेद, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेद—

मुनि योगीश्वर इकचित ध्यावत। तिनके मन छन कभू न आवत॥
हमको घरही दरशन देतु। मानत प्रेम भक्त के हेतु॥
जैसी मोहन लीला करौ। काहू पै नहि जाने परौ॥
माया में भूल्यो संसार। हमसों करत लोक व्यवहार॥
जो तुमको सुमिरत जगदीस। ताहि आपनो जानत ईश॥
अभिमानी ते हौ तुम दूर। सतवादी के जीवन मूर॥

महाराज ! इतना कह पुनि राजा युधिष्ठिर बोले कि हे दीन दयालु, आपकी दया से मेरे सब काम सिद्ध हुए, पर एक ही अभिलाषा रही। प्रभु बोले सो क्या ? राजा ने कहा कि मेरा यही मनोरथ है कि राजसूययज्ञ कर आपको अर्पण करूं तो भवसागर तरूं, इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हो बोले कि राजा ! यह तुमने भला मनोरथ किया, इससे सुर, नर, मुनि, ऋषि सब संतुष्ट होयंगे, यह सब को भावता है और

इसका करना तुम्हें कुछ कठिन नहीं क्योंकि तुम्हारे चारों भाई अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, बड़े प्रतापी और अति बली हैं, संसार में अब ऐसा कोई नहीं जो इनका सामना करै, पहले इन्हें भेजिये कि यह जाय दशों दिशा के राजाओं को जीत अपने वश कर आवें, पीछे आप निश्चिन्ताई से यज्ञ कीजिये। राजा! प्रभु के मुख से इतनी बात जो निकली त्यों ही राजा युधिष्ठिर ने अपने चारों भाइयों को बुलाय कटक दे चारों को चारों ओर भेज दिया। दक्षिण को सहदेव पधारे, पश्चिम को नकुल सिधारे, उत्तर को अर्जुन धाये, पूर्व में भीमसेन आये। आगे कितने एक दिन बीच महाराज! वे चारों हरिप्रतापसे सारे द्वीप नौखण्ड जीत दशों दिशा के राजाओं को वशकर अपने साथ ले आये। उस काल राजा युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ श्रीकृष्णचन्दजी से कहा कि महाराज! आपकी सहायता से यह काम तो हुआ, अब क्या आज्ञा होती है? इसमें उद्धवजी बोले कि धर्मावतार! सब देश के तो नरेश आये, पर अब एक मगध देश के राजा जरासंध ही आपके वश का नहीं और जब तक वह वश न होगा तब तक यज्ञ भी करना सफल न होगा। महाराज! जरासंध राजा वृहद्रथ का बेटा महाबली बड़ा प्रतापी और अति दानी धर्मात्मा है, हर किसी की सामर्थ्य नहीं जो उसका सामना करे। इस बात को सुन जो राजा युधिष्ठिर उदास हुए तो श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि महाराज! आप किसी बात की चिन्ता मत कीजै, भाई भीम, अर्जुन समेत हमें आज्ञा दीजै, कै तो बलछल कर हम उसे पकड़

लावैं, कै मार आवैं। इस बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने दोनों भाइयों को आज्ञा दी। तब हरि ने उन दोनों को अपने साथ ले मगध देश की बाट ली। आगे जाय पंथ में श्रीकृष्णजी ने अर्जुन और भीमसेन से कहा कि—

विप्र रूप ह्वै पुर पग धारिय। छल बल कर वैरी द्रुत मारिय॥

महाराज, इतनी बात कह श्रीकृष्णजीने ब्राह्मण का भेष किया, उनके साथ भीम अर्जुन ने भी विप्र वेष लिया। त्रिपुंड्र किये, पुस्तक कांख में लिये, अति उज्ज्वल स्वरूप, सुन्दर रूप बनठन ऐसे चले कि जैसे तीनों गुण सत, रज, तम देह धरे जाते होयं, कै तीनों काल। निदान कितने एक दिनोंमें चले चले वे मगध देश में पहुंचे और दोपहरके समय राजा जरासंध की पंवरि पर जा खड़े हुए। इनका वेष देख पौरियोंने अपने राजा से जा कहा कि महाराज! तीन ब्राह्मण अतिथि बड़े तेजस्वी, महापंडित अतिज्ञानी कुछ वांछा किये द्वार पर खड़े हैं, हमें क्या आज्ञा होती है? महाराज! इस बात के सुनते ही राजा जरासंध उठ आया और इन तीनोंसे प्रणाम कर अतिमान सन्मानसे घर में ले गया। आगे वह इन्हें सिंहासन पर बैठाय आप सन्मुख हाथ जोड़ खड़ा हो देख देख सोच सोच बोला कि—

याचक जो परद्वारे आवै। बड़ो भूप सोउ अतिथि कहावै॥
विप्र नहीं तुम जोधा बली। बात न कछू कपट की भली॥
जो ठग ठगन रूप धरि आवै। ठगितो जाय भलो न कहावै॥
छिपे न क्षत्रिय कांति तिहारी। दीसत शूर वीर बलधारी॥
तेजवंत तुम तीनों भाई। शिव विरंचि हरि से बरदाई॥

मैं जान्यो जियकर निर्मान। करो देव तुम अ
तुम्हरी इच्छा हो सो करौं। अपनी वाचाते न
दानी मिथ्या कबहुं न भाषै। तन मन धन दे कछू
मांगौ सोही देहौं दान। सुत सुन्दरि सर्वस्व

महाराज! इस बात के सुनते ही श्रीकृष्णचंद जी ने
महाराज! किसी समय राजा हरिश्चंद्रजी बड़ा दानी हो
कि जिसकी कीर्ति संसारमें अबतक छाय रही है, सुनिये एक
राजा हरिश्चन्द्र के देश में काल पड़ा और अन्न बिन सब
मरने लगे, तब राजाने अपना सर्वस्व बेंच २ कर सबको खिला
जब देश नगर धन गया और निर्धन हो राजा रहा, तब एक दि
सांझ समय यह तो कुटुम्ब समेत भूखा बैठा था कि इसमें विश्वा
मित्र ने आय इसका सत्व देखने को यह वचन कहा--महाराज,
मुझे धन दीजे और कन्यादान का सा फल लीजे। इस वचन के
सुनते ही जो कछु घर में था सो ला दिया। पुनि ऋषि ने कहा--
महाराज! मेरा काम इतने में न होगा। फिर राजा ने दास दासी
बेच धन ला दिया और धन जन गंवाय निर्धन हो स्त्री पुत्र को
ले रहा। पुनि ऋषि ने कहा कि धर्ममूर्ति। इतने धन से मेरा
काम न सरा अब मैं किसके पास जाय मांगूं औ मुझे तो संसार
में तुमसे अधिक धनवान धर्मात्मा दानी कोई नहीं दृष्टि आता है
श्वपचनाम चांडाल माया पात्र है कहो तो उससे जा मांगूं
पर इसमें भी लाज आती है कि ऐसे दानी राजा को यांच
क्या यांचूं। महाराज! इतनी बातके सुनते ही राजा

हरिश्चन्द्र विश्वामित्र को साथ ले उस चांडाल के घर गये और इन्होंने उससे कहा कि भाई ! तू हमें एक वर्ष के लिये गहने धर और इनका मनोरथ पूरा कर। श्वपच बोला—

कैसे टहल हमारी करिहौ। राजस तामस मनते हरिहौ॥
तुम नृप महातेज बलधारी। नीच टहल है खरी हमारी॥

महाराज, हमारे तो यही काम है कि श्मशान में जाय चौकी दे और जो मृतक आवे उनसे कर ले पुनि हमारे घर की चौकसी करे, तुमसे यह हो सके तो मैं रुपये दूं और तुम्हें बधक रक्खूं। राजाने कहा अच्छा मैं वर्षभर तुम्हारी सेवा करूंगा तुम इन्हें रुपये दो। महाराज ! इतना वचन राजा के मुख से निकलते ही श्वपच ने विश्वामित्र को रुपये गिन दिये, वह ले अपने घर गये और राजा वहां रह उनकी सेवा करने लगा। कितने एक दिन पीछे कालवश हो राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहिताश्व मर गया। उस मृतक को ले रानी मरघट में गई और ज्यों चिता बनाय अग्नि संस्कार करने लगी त्योंही राजा ने आय कर मांगा,

रानी बिलख कहै दुख पाय। देखौ समुझि हिये तुम राय॥

यह तुम्हारा पुत्र रोहिताश्व है और कर देने को मेरे पास और तो कुछ नहीं एक यही चीर है जो पहरे खड़ी हूं। राजा ने कहा मेरा इसमें कुछ बस नहीं। मैं स्वामी के कार्य पर खड़ा हूँ, जो स्वामी का कार्य न करूं तो मेरा सत्यत्व जाय। महाराज ! इस बात के सुनते ही रानी ने ज्यों चीर उतारने को आंचल पर हाथ डाला त्योंही तीनों लोक कांप उठे। यों ही भगवान् ने राजा रानी का सत्त देख पहले एक बिमान

भेज दिया और पीछे से आप दर्शन दे तीनों को उद्धार किया। महाराज! जब विधाता ने रोहिताश्व को जिवाय राजा रानी को पुत्र समेत विमान पर बैठाय बैकुंठ जाने की आज्ञा की, तब राजा हरिश्चंद्र ने हाथ जोड़ भगवान से कहा कि हे दीनबन्धु! पतितपावन!! दीनदयालु!!! मैं श्वपच बिना बैकुंठ धाम में कैसे जा करूं बिश्राम। इतना वचन सुन और राजा के मनका अभिप्राय जान श्रीभक्तहितकारी करुणासिंधु हरि ने श्वपच को भी राजा रानी और कुंवर के साथ तारा—

वहां हरिश्चंद्र अमर पद पायो। यहां युगानयुग यश चलि आयो

महाराज! यह प्रसंग जरासंध को सुनाय श्रीकृष्णचंदजी ने कहा कि महाराज और सुनिये कि रतिदेव ने ऐसे तप किया कि अड़तालीस दिन बिन पानी रहा और जब जल पीने बैठा तिसी समय कोई प्यासा आया इतने वह नीर आप न पी उसे तृषावंत को पिलाया। उस जल दान से उसने मुक्ति पाई। पुनि राजा बलि ने अति दान किया तो पाताल का राज लिया और अब तक उसका यश चला आता है। फिर देखिये कि उद्दालक-मुनि छठे महीने अन्न खाते थे। एक समय खाती बिरियां उनके यहां कोई अतिथि आया। उन्होंने अपना भोजन आप न खाय भूखे को खिलाया और उस क्षुधा ही में मरे निदान, अन्न-दान करने से वैकुंठ को गये चढ़कर बिमान। पुनि एक समय सब देवताओं को साथ ले राजा इन्द्र ने जाय दधीचि से कहा कि महाराज! हम वृत्रासुर के हाथ से अब बच नहीं सकते, जो आप

अपनी अस्थि हमें दीजे तो उसके हाथ से बचें नहींतो बचना कठिन है, क्योंकि वह बिन तुम्हारे हाड़ के आयुध किसी भांति न मारा जायगा। महाराज, इतनी बात सुनते ही दधीचि ने शरीर गाय से चटवाय जांघ का हाड़ निकाल दिया। देवताओं ने ले उस अस्थि का वज्र बनाया और दधीचि ने प्राण गंवाया और वैकुंठ धाम पाया—

ऐसे दाता भये अपार। तिनको यश गावत संसार॥

राजा! यों कह श्रीकृष्णचंदजी ने जरासंध से कहा कि महाराज! जैसे आगे और युग में धर्मात्मा दानी राजा होगये हैं तैसे अब इस काल में तुम हो। जो आगे उन्होंने याचकों की अभिलाषा पूरी की तो तुम अब हमारी आशा पुजाओ। कहा है-

याचक कहा न मांगई, दाता कहा न देय।
गृहसुत सुन्दरि लोभ नहिं, तनु शिर दे यश लेय॥

इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही जरासंध बोला कि याचक को दाता की पीर नहीं होती, तो भी दानी धीर अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता इसमें सुख पावै कै दुःख। हरि ने कपटरूप धर बामन बन राजा बलि के पास जाय तीन पग पृथ्वी मांगी। उस समय शुक्रने बलि को चिताया तो भी राजा ने प्रण न छोड़ा

देह समेत मही तिन दई। ताकी जग में कीरति भई॥
याचक विष्णु कहा यश लीन्हों। सर्वसु लै तोऊ हठ कीन्हों॥

इससे तुम पहले अपना नाम भेद कहो तब जो तुम मांगोगे सो मैं दूंगा, मैं मिथ्या नहीं भाषता। श्रीकृष्णचंदजी बोले कि राजा हम क्षत्रिय हैं, बासुदेव हमारा नाम है, तुम भली भांति हमें

जानते हो और ये दोनों अर्जुन भीम हमारे फुफेरे भाई हैं। हम युद्ध करने को तुम्हारे पास आये, हमसे युद्ध कीजे, हम यही तुमसे मांगने आये हैं, और कुछ नहीं मांगते। महाराज! यह बात श्रीकृष्णचंदजी से सुन जरासंध हंसकर बोला कि मैं तुमसे क्या लड़ूंगा, तू मेरे सोहीं भाग चुका है और अर्जुन से भी न लड़ूंगा, क्योंकि यह विदर्भ देश गया था, तहां नारी का वेष करके रहा, भीमसेन से कहो तो इससे लड़ूं। वह मेरे समान का है, इससे लड़ने में मुझे लाज नहीं।

पहले तुम सब भोजन करो। पाछे मल्ल अखाड़े लरो॥
भोजन दे नृप बाहर आयो। भीमसेन तहं बोलि पठायो॥
अपनी गदा ताहि तिन दई। गदा दूसरी आपन लई॥
जहां सभामंडल बन्यो; बैठे जाय मुरारि।
जरासंध अरु भीम तहं, भये ठाढ़ इक बारि॥
टोपी शीश काछनी काछे। बने रूप नटुआ के आछे॥

महाराज! जिस समय दोनों बीर अखाड़े में खम ठोंक गदा तान, ध्वजा पलट झूम कर सन्मुख आये, उस काल ऐसे जनाये कि मानों दो मतंग मतवाले उठ धाये। आगे जरासंध ने भीमसेन से कहा कि पहले गदा तू चला क्योंकि तू ब्राह्मण का वेष ले मेरी पौरी में आया था इससे मैं पहले प्रहार न करूंगा। यह बात सुन भीमसेन बोले कि राजा! हमसे धर्मयुद्ध है इससे यह ज्ञान न होना चाहिये। जिसका जी चाहे सो पहले शस्त्र करे महाराज! उन वीरों ने परस्पर ये बातें कर एक साथ ही गदा

चलाई और युद्ध करने लगे।

ताकत घातैं आप आपनी। चोट करत बाईं दाहिनी॥
अंग बचाय उछरि पग धरैं। झपटहिं गदा गदा सों लरैं॥
खटपट चोट गदा पटकारी। लागत शब्द कुलाहल भारी॥

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! इसी भांति दोनों बली दिन भर तो धर्मयुद्ध करते और सांझ को घर आय एक साथ भोजन कर विश्राम करते। ऐसे नित लड़ते-लड़ते २७ दिन भए तब एक दिन उन दोनों के लड़ने के समय श्रीकृष्णचन्द्रजी ने मन ही मन विचार कि यह यों न मारा जायगा, क्योंकि जब यह जन्मा था तब दो फांक हो जन्मा था। उस समय जरा राक्षसी ने आय जरासंध का मुंह और नाक मूंदा तब दोनों फांक मिलगईं। यह समाचार सुनि उसी समय उसके पिता बृहद्रथ ने ज्योतिषियों को बुलाय के पूछा कि कहो, इस लड़के का नाम क्या होगा? और कैसा होगा? ज्योतिषियों ने कहा कि महाराज! इसका नाम जरासंध हुआ और यह बड़ा प्रतापी और अजर अमर होगा, जब तक इनकी संधी न फटैगी तब तक यह किसी से न मारा जायगा। इतना कह ज्योतिषी बिदा हो चले गए। महाराज! यह बात श्रीकृष्णचन्द्रजी ने मन ही मन सोच और अपना बल दे भीमसेन को तिनुका चीर सैन से जताया कि इसे इस रीति से चीर डालो। प्रभुके चिताते ही भीमसेन ने जरासंध को पकड़कर दे मारा और एक जांघ पर पांव दे दूसरा पांव हाथ से पकड़

यों चीर डाला कि जैसे कोई दातून चीर डाले। जरासंध के मरते ही सुर, किन्नर, गंधर्व ढोल दमामे, भेरी बजाय फूल बरसाय बरसाय जयजयकार करने लगे और दुःख द्वन्द्व जाय सारे नगर में आनन्द होगया। उसी बिरियां जरासंध की नारी रोती २ श्रीकृष्णचन्द्रजी के सन्मुख खड़ी हो हाथ जोड़ बोली कि धन्य है; धन्य है नाथ! तुम्हें जो ऐसा काम किया कि जिसने सर्वस दिया, तुमने उसका प्राण लिया, जो जन तुम्हें सुत वित्त समर्पै देह, उससे तुम करते हो ऐसा ही स्नेह—

कपट रूप कर छल बल कियो। जगत आय तुम यह यश लियो।

महाराज! जरासंध की रानी ने जब करुणा कर करुणानिधान के आगे हाथ जोड़ विनती कर यों कहा, तब प्रभुने दयालु हो पहले जरासंधकी क्रिया की। पीछे उसके सुत सहदेव को बुलाय राजतिलक दे सिंहासन पर बिठाय के कहा, पुत्र! नीति सहित राज्य कीजो, और ऋषि, मुनि, गौ, ब्राह्मण प्रजा की रक्षा करो।

---

(२२)

सुदामा की कथा

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, अब मैं सुदामा की कथा कहता हूँ कि जैसे वह प्रभु के पास गया औ उसका दरिद्र कटा, सो तुम मन दे सुनौ। दक्षिण दिशा की ओर है एक द्रविड़ देश, तहां विप्र औ वनिक बसते थे नरेश। जिनके राज में घर घर

होता था भजन सुमरिन औ हरि का ध्यान, पुनि सब करते थे तप यज्ञ धर्म दान औ साध संत गौ ब्राह्मन का सनमान।

ऐसे बसैं सबै तिहिं ठौर। हरि बिन कछू न जानैं और॥

तिसी देश में सुदामा नाम ब्राह्मण श्रीकृष्णचंद का गुरु भाई अति दीन तन छीन महादरिद्री ऐसा कि जिसके घर पैन घास न खाने को कुछ पास रहता था। एक दिन सुदामा की स्त्री दरिद्र से अति घबराय महादुख पाय, पति के निकट जाय, भय खाय डरती कांपती बोली कि महाराज, अब इस दरिद्र के हाथ से महादुःख पाते हैं, जो आप इसे खोया चाहिये तो मैं एक उपाय बताऊँ। ब्राह्मन बोला, सो क्या, कहा-तुम्हारे परम मित्र त्रिलोकीनाथ द्वारकावासी श्रीकृष्णचंद आनन्दकंद हैं, जो उनके पास जाओ तो यह जाय, क्योंकि वे अर्थ धर्म काम मोक्ष के दाता हैं।

महाराज, जब ब्राह्मनी ने ऐसे समझायकर कहा, तब सुदामा बोला कि हे प्रिये, बिन दिये श्रीकृष्णचंद भी किसी को कुछ नहीं देते। मैं भली भांति से जानता हूँ कि जन्म भर मैंने किसी को कभी कुछ नहीं दिया, बिन दिये कहां से पाऊँगा। हां, तेरे कहे से जाऊँगा, तो श्रीकृष्णजी के दरशन कर आऊंगा। इस बात के सुनते ही ब्राह्मनी ने एक अति पुराने धौले वस्त्र में थोड़े से चावल बांध ला दिये प्रभु की भेंट के लिये और डोर लोटा औ लाठी आगे धरी। तब तो सुदामा डोर लोटा कांधे पर डाल चावल की पोटली कांख में दबाय, लाठी हाथ में ले, गनेश को

मनाय श्रीकृष्णचंदजी का ध्यान कर द्वारकापुरी को पधारा।

महाराज, बाट ही में चलते २ सुदामा मन ही मन कहने लगा कि भला धन तो मेरी प्रारब्ध में नहीं पर द्वारका जाने में श्रीकृष्णचंद आनन्दकंद का दरशन तो करूँगा। इसी भांति से सोच विचार करता २ सुदामा तीन पहर के बीच द्वारकापुरी में पहुंचा, तो क्या देखता है कि नगरके चारों ओर समुद्र है औ बीचमें पुरी। वह पुरी कैसी है कि जिसके चहुँ ओर वन उपवन फूल फल रहे हैं, तड़ाग बापी इंदारों पर रहट परोहे चल रहे हैं, ठौर २ गायों के यूथके यूथ चर रहे हैं, तिनके साथ साथ ग्वाल बाल न्यारे ही कुतूहल करते हैं।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, सुदामा वन उपवन की शोभा निरख पुरी के भीतर जाय देखे तो कंचन के मनिमय मंदिर महासुन्दर जगमगाय रहे हैं, ठांव २ अथा-इयों में जदुबंशी इन्द्र की सी सभा किये बैठे हैं। हाट बाट चौहट्टों में नाना प्रकार की वस्तु बिक रही है, घर घर जिधर तिधर गान दान हरिभजन औ प्रभु का जस होरहा है औ सारे नगर-निवासी महा आनन्द में हैं। महाराज, यह चरित्र देखता देखता औ श्रीकृष्णचंद का मंदिर पूछता २ सुदामा जा प्रभु की सिंहपौर पर खड़ा हुआ। इसने किसी से डरते २ पूछा कि श्रीकृष्णचँदजी कहां विराजते हैं? उसने कहा कि देवता, आप मंदिर भीतर जाओ, सनमुख ही श्रीकृष्णचंदजी रत्न सिंहासन पर बैठे हैं।

महाराज, इतना वचन सुन सुदामा जों गया, तों देखते ही श्रीकृष्णचंद सिंहासन से उतर आगू बढ़ जो भीतर भेंट कर अति प्यार से हाथ पकड़ उसे ले गये। पुनि सिंहासन पर बिठाय पांव धोय चरनामृत लिया, आगे चंदन चरच, अक्षत लगाय, पुष्प चढ़ाय, धूप दीप कर प्रभु ने सुदामा की पूजा की।

इतनौ करिकै जोरे हाथ। कुशल क्षेम पूछत यदुनाथ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा कि महाराज, यह चरित्र देख श्री रुक्मिनीजी समेत आठौं पटरानियां औ सोलह सहस्र आठ सौ रानियां और सब यदुवंसी जो उस समय वहां थे, मन ही मन यों कहने लगे कि इस दरिद्री, दुर्बल मलीन, वस्त्र हीन ब्राह्मन ने ऐसा क्या अगले जन्म पुन्य किया था जो त्रिलोकीनाथ ने इसे इतना माना। महाराज, अंतरजामी श्रीकृष्णचंद उस काल सबके मन की बात समझ उनका संदेह मिटाने को सुदामा से गुरुके घर की बातें करनेलगे कि भाई तुम्हें वह सुध है जो एकदिनगुरु-पत्नी नेहमें तुम्हें ईंधन लेने भेजा था और जब वन से ईंधन ले गठड़िया बांध सिर पर घर घर को चले, तब आंधी और मेह आया औ लगा मूसलाधार बरसने, जल थल चारों ओर भर गया, हम तुम भीगकर महा दुःख पाय जाड़ा खाय रात भर एक वृक्ष के नीचे रहे। भोर ही गुरुदेव वन में ढूंढ़ने आये औ अति करुना कर असीस दे हमें तुम्हें अपने साथ घर लिवाय लाए।

इतना कह पुनि श्रीकृष्णचंदजी बोले कि भाई जब से तुम

गुरुदेव के ह्यां से बिछड़े, तब से हमने तुम्हारा समाचार न पाया था कि कहां थे औ क्या करते थे। अब आय दरस दिखाय तुमने हमें महासुख दिया और घर पवित्र किया। सुदामा बोले-हे कृपासिंधु, दीनबंधु, स्वामी, अंतरयामी, तुम सब जानते हो—कोई बात संसार में ऐसी नहीं जो तुमसे छिपी है।

२३

सुदामा का वैभव

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, अंतरजामी श्रीकृष्णजी ने सुदामा की बात सुन औ उसके अनेक मनोरथ समझ हँसकर कहा कि भाई, भाभी ने हमारे लिये क्या भेंट भेजी है सो देते क्यों नहीं, कांख में किस लिये दबाय रहे हो। महाराज, यह वचन सुन सुदामा तो सकुचाय मुरझाय रहा और प्रभु ने झट चावल की पोटली उसकी कांख से निकाल ली। पुनि खोल उसमें से अति रुचि कर दो मुट्ठी चावल खाये और जों तीसरी मुट्ठी भरी, तो श्रीरुक्मिनीजी ने हरि का हाथ पकड़ा औ कहा कि महाराज, आपने दो लोक तो इसे दिए अब अपने रहने को भी कोई ठौर रक्खोगे के नहीं। यह तो ब्राह्मन सुशील कुलीन अति वैरागी महा त्यागी सा दृष्टि आता है, क्योंकि इसे विभौ पाने से कुछ हर्ष न हुआ। इससे मैंने जाना कि लाभ हानि समान जानते हैं, इन्हें पाने का हर्ष न जाने का शोक।

इतनी बात रुक्मिनीजी के मुख से निकलते ही कृष्णचंदजी ने कहा कि हे प्रिये, यह मेरा परम मित्र है, इसके गुन मैं कहां तक बखानूं। सदा सर्वदा मेरे स्नेह में मगन रहता है और उसके आगे संसार के सुख को तृनवत समझता है।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, ऐसे अनेक २ प्रकार की बातें कर प्रभु रुक्मिनीजी को समझाय, सुदामा को मंदिर में लिवाय ले गए। आगे षटरस भोजन करवाय पान खिलाय हरि ने सुदामा को फेन सी सेजपर ले जाय बैठाया। वह पथ का हारा थका तो था ही, सेज पर जाय सुख पाय सो गया। पुने उस समय विश्वकर्मा को बुलाके कहा—तुम अभी जाय सुदामा के मंदिर अति सुन्दर कंचन रत्न के बनाय, तिनमें अष्टसिद्धि नवनिधि धर आओ जो इसे किसी बात की कांक्षा न रहे। इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही विश्वकर्मा वहां जाय बात की बात में बनाय आया औ हरि से कह अपने स्थान को गया।

भोर होते ही सुदामा उठ स्नान ध्यान भजन पूजा से निचिंत हो प्रभु के पास विदा होने गया, उस समय श्रीकृष्णचंदजी मुख से तो कुछ न बोल सके, पर प्रेम में मगन हो आंखें डब-डबाय सिथल हो देख रहे। सुदामा बिदा हो प्रनाम कर अपने घर को चला औ पंथ में जाय मन ही मन विचार करने लगा कि भला भया जो मैंने प्रभुसे कुछ न मांगा जो उनसे कुछ मांगत तो वे देते तो सही पर मुझे लोभी लालची समझते। कुछ चिंता नहीं

ब्राह्मनीको मैं समझाय लूंगा। श्रीकृष्णचंदजी ने मेरा अति मान सन्मान किया औ मुझे निर्लोभी जाना यही मुझे लाख है। महाराज, ऐसे सोच विचार करता २ सुदामा अपने गांव के निकट आया, तो क्या देखता है कि न वह गांव है न वह टूटी मड़ैया, वहां तो एक इन्द्रपुरी सी बस रही है। देखते ही सुदामा अति दुखित हो कहने लगा कि हे नाथ, तू ने यह क्या किया? एक दुख तो था ही दूसरा और दिया। ह्याँ से मेरी झोंपड़ी क्या हुई और ब्राह्मनी कहां गई, किससे पूंछू और किधर ढूंढू?

इतना कह द्वार पर जाय सुदामा ने द्वारपाल से पूछा कि यह मंदिर अति सुन्दर किसके हैं? द्वारपाल ने कहा—श्रीकृष्णचंद के मित्र सुदामा के हैं। यह बात सुन जों सुदामा कुछ कहने को हुआ तों भीतर से देख उसकी ब्राह्मनी अच्छे वस्त्र आभूषण पहने नख सिख से सिंगार किए, पान खाए, सुगन्ध लगाए, सखियों को साथ लिए पति के निकट आई।

पायन पर पाटंबर डारे। हाथ जोड़ ये बचन उचारे॥
ठाड़े क्यों मंदिर पग धारौ। मन सों सोच करो तुम न्यारौ।
तुम पाछे विश्वकर्मा आए। तिन मंदिर पल मांझ बनाए॥

महाराज, इतनी बात ब्राह्मनीके मुखसे सुन सुदामाजी मंदिर में गए और अति विभौ देख महा उदास भए। ब्राह्मनी बोली—स्वामी, धन पाय लोग प्रसन्न होते हैं, तुम उदास हुए, इसका कारन क्या है सो कृपाकर कहिए जो मेरे मन का संदेह

जाय। सुदामा बोला कि हे प्रिये ! यह माया बड़ी ठगनी है, इसने सारे संसार को ठगा है, ठगती है औ ठगेगी, सो प्रभु ने मुझे दी औ मेरे प्रेम की प्रतीत न की। मैंने उनसे कच माँगी थी जो उन्होंने मुझे दी। इसी से मेरा चित्त उदास है। ब्राह्मनी बोली—स्वामी, तुमने तो श्रीकृष्णचंद्रजी से कुछ न मांगा था पर वे अंतरजामी घट-घट की जानते हैं। मेरे मन में धन की वासना थी सो प्रभु ने पूरी की, तुम अपने मन में और कुछ न समझो। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, इस प्रसंग को जो सदा सुने सुनावेगा सो जन जगत में आय दुख कभी न पावेगा औ अन्तकाल बैकुंठ धाम जावेगा।

२४

विकासुर-वध और रुद्र-मोक्ष

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, भगवत की अद्भुत लीला है, इसे सब कोई जानता है, जो जन हरि की पूजा करे सो दरिद्री होय औ और देव को माने सो धनवान। देखो हरि हर की कैसी रीति है। ये लक्ष्मीपति, वे गवरीपति, ये धरें बनमाल, वे मुंड-माल। ये चक्रपानि, वे त्रिशूलपानि। ये धरनीधर, वे गंगाधर। ये मुरली बजावें, वे सींगी। ये बैकुण्ठनाथ, वे कैलाशवासी। ये प्रतिपालें वे संहारें। ये चरचें चन्दन, वे लगावें भभूत, ये ओढ़े अंबर वे बाघम्बर। ये पढ़ें वेद, वे आगम। इनका वाहन गरुड़,

उनका नंदी। ये रहैं ग्वालबालों में, वे भूतप्रेतों में।

दोऊ प्रभु की उलटी रीति। जित इच्छा तित कीजे प्रीति॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, राजा युधिष्ठिर से श्रीकृष्णचंद ने कहा कि हे युधिष्ठिर, जिस पर मैं अनुग्रह करता हूँ होले २ उसका सब धन खोता हूँ। इसलिए कि धनहीन को भाई बंधु स्त्री पुत्र आदि सब कुटुम्ब के लोग तज देते हैं, तब विसे वैराग उपजता है, वैराग होने से धन जन की माया छोड़ निरमोही हो मन लगाय भजन करता है, भजन के प्रताप से अटल निर्वान पद पाता है। इतना कह पुनि शुकदेव जी कहने लगे कि महाराज, और देवता की पूजा करने से मन-कामना पूरी होती है पर मुक्ति नहीं मिलती।

यह प्रसंग सुनाय मुनि ने पुनि राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, एकसमै कश्यपका पुत्र विकासुर तप करनेकी अभिलाषा कर जों घर से निकला, तो पथ में उसे नारद मुनि मिले। नारद-जी को देखते ही इसने दंडवत कर हाथ जोड़ सनमुख खड़े हो अति दीनता कर पूछा कि महाराज, ब्रह्मा विष्णु महादेव इन तीनों देवताओं में शीघ्र वरदाता कौन है सो कृपाकर कहो तो मैं उन्हीं की तपस्या करूं। नारद जी बोले कि सुन विकासुर, इन तीनों देवताओं में महादेवजी बड़े बरदायक हैं, इन्हें न रीझते बिलंब न खीजते। देखो शिवजी ने थोड़े से तप करने से प्रसन्न हो सहस्रार्जुन को सहस्र हाथ दिया औ अल्प ही अपराधमें क्रोध कर उसका नाश किया। महाराज, इतना कह नारद मुनितो चले

गए औ विकासुर अपने स्थान पर आय महादेव का अति तप यज्ञ करने लगा। सात दिन के बीच उसने छुरी से अपने शरीर का मांस सब काट काट होम दिया। आठवें दिन जब सिर काटनेका मन किया तब भोलानाथ ने आय उसका हाथ पकड़ के कहा, कि मैं तुझसे प्रसन्न हुआ, जो तेरी इच्छा में आवे सो वर मांग, मैं तुझे अभी दूंगा। इतना बचन शिवजी के मुख से निकलते ही विकासुर हाथ जोड़कर बोला—

ऐसौ वर दीजै अवै, जाके सिर धरौं हाथ।
भस्म होय सो पलक में, करहु कृपा तुम नाथ॥

महाराज, बात के कहते ही महादेवजी ने उसे मुहं मांगा वर दिया। वर पाय वह शिव ही के सिर पर हाथ धरने गया। उस काल भय खाय महादेवजी आसन छोड़ भागे। उनके पीछे असुर भी दौड़ा। महाराज, सदा शिवजी जहां २ फिरें, तहां तहां वह भी उनके पीछे ही लगा आया। निदान अति व्याकुल हो महादेवजी वैकुण्ठमें गए। इनको महादुखित देख भक्तहितकारी वैकुंठ नाथ श्रीमुरारी करुनानिधान करुनाकर विप्र भेष धर विकासुर के सनमुख जाय बोले कि हे असुरराय, तुम इनके पीछे क्यों श्रम करते हो, यह मुझे समझाकर कहो। बात के सुनते ही विकासुर ने सब भेद कह सुनाया। पुनि भगवान् बोले कि हे असुरराय, तुम सा सयाना हो धोखा खाय यह बड़े अचरज की बात है। इस नंगे मुनंगे बावले भांग धतूरा खाने वाले जोगी की बात कौन सत्य माने, यह सदा छार लगाए, सर्प लिपटाए, भयानक भेष

किए भूत प्रेतों को संग लिए श्मशान में रहता है। इसकी बात किसके जी में सच आवे। महाराज, यह बात कह श्रीनारायन बोले कि हे असुरराय, जो तुम मेरा कहा झूठ मानो तो अपने सिर पर हाथ रख देख लो।

महाराज, प्रभु के मुख से इतनी बात सुनते ही, माया के वश अज्ञान हो, विकासुर ने जों अपने सिर पर हाथ रखा तों जलकर भस्म का ढेर हुआ। असुर के मरते ही सुरपुर में आनन्द के बाजन बाजने लगे औ देवता जैजैकार कर फूल बरसावने, विद्याधर गन्धर्व किन्नर हरिगुन गाने। उस काल हरिने हर की अति स्तुति कर विदा किया औ विकासुर को मोक्ष पदारथ दिया। श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज, इस प्रसंग को जो सुने सुनावेगा, सो निसन्देह हरि हर की कृपा से परम पद पावेगा।

२५

त्रिदेव--परीक्षा

शुकदेवजी बोले कि महाराज, एक समै सरस्वतीके तीर सब ऋषि मुनि बैठे तप यज्ञ करते थे कि उनमें से किसी ने पूछा कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओं में बड़ा कान है सो कृपा कर कहो। इसमें किसी ने कहा शिव, किसी ने कहा विष्णु, किसी ने कहा ब्रह्मा, पर सबने मिल एक को बड़ा न बताया। तब कई एक बड़े २ मुनीशों ऋपियों ने कहा कि हम यों तो किसी

को घात नहीं मानते पर हाँ जो कोई उन तीनों देवताओं की जाकर परीक्षा कर आवै औ धर्म सरूपी कहै तो उसका कहना सत्य मानें।

महाराज, यह बात सुन सबने प्रमान की औ ब्रह्मा के पुत्र भृगु को तीनों देवताओं की परीक्षा कर आने की आज्ञा दी। आज्ञा पाय भृगुमुनि प्रथम ब्रह्मलोक में गए औ चुपचाप ब्रह्मा की सभा में जा बैठे, न दंडवत की, न स्तुति, न परिक्रमा दी। राजा पुत्र का अनाचार देख ब्रह्मा ने महा कोप किया और चाहा कि श्राप दूं, पर पुत्र की ममता कर न दिया। उस काल भृगु ब्रह्मा को रजोगुन में आसक्त देख वहाँ से उठ कैलाश में गये औ जहां शिव पार्वती विराजते थे तहाँ जा खड़ा रहा। इसे देख शिवजी खड़े हो जों हाथ पसार मिलने को हुए तो यह बैठ गया। बैठते ही शिवजी ने अति क्रोध किया औ इसके मारने को त्रिशूल हाथ में लिया। उस समय श्रीपार्वतीजी ने अति विनंती कर पाओं पड़ महादेवजी को समझाया औ कहा कि यह तुम्हारा छोटा भाई है इसका अपराध क्षमा कीजै। कहा है—

बालक सों जो चूक कछु परै। साध न कबहूँ मन में धरै॥

महाराज, जब पार्वतीजी ने शिवजी को समझा कर ठंडा किया तब भृगु महादेवजी को तमोगुन में लीन देख चल खड़े हुए। पुनि बैकुंठ में गए जहाँ भगवान् मनिमय कंचन के छपरखट पर फूलों की सेज में लक्ष्मी के साथ सोते थे। जाते ही भृगु ने भगवानके हृदै में एक लात ऐसी मारी कि वे नींद से चौंक पड़े। मुनि को देख लक्ष्मी

को छोड़ छपर खट से उतर हरि भृगुजी का पाँव सिर आँखों से लगाय लगे दावने औ यों कहने कि हे ऋषिराय, मेरा अपराध क्षमा कीजे, मेरे हृदय कठोर की चोट तुम्हारे कोमल कमलचरन में अनजाने लगी, यह दोष चित में न लीजे। इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही भृगुजी अति प्रसन्न हो स्तुति कर बिदा हो वहाँ आए, जहाँ सरस्वती तीर पर सब ऋषिमुनि बैठे थे। आते ही भृगु जी ने तीनों देवताओं का भेद सब जों का तों कह सुनाया कि—

ब्रह्मा राजस लपटान्यो। महादेव तामस में सान्यो॥
विष्णु जु सात्त्विक माँहि प्रधान। तिनते बड़ो देव नहीं आन॥
सुनत ऋषिन को संसौ गयो। सबही के मन आनन्द भयो॥
विष्णु प्रसंसा सब ने करी। अविचल भक्ति हृदै में धरी॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज मैं अंतरकथा कहता हूँ तुम मन लगाय सुनौ। द्वारका पुरी में राजा उग्रसेन तो धर्म राज करते थे औ श्रीकृष्ण बलराम जी उन के आज्ञाकारी। राजा के राज से सब लोग अपने अपने स्वधर्म में सावधान, काज कर्म में सज्ञान रहते औ आनंद चैन करते थे। तहाँ एक ब्राह्मण भी अति सुशील धरमिष्ट रहता था। एक समैं उसके पुत्र हो मर गया। वह मरे पुत्र को ले राजा उग्रसेन के द्वार पर गया औ जो उसके मुहँ में आया सो कहने लगा कि तुम बड़े अधर्मी दुष्कर्मी पापी हो, तुम्हारे ही कर्म धर्म से प्रजा दुख पाती है और मेरा भी पुत्र तुम्हारे ही पाप से मरा।

महाराज, इसी भाँति की अनेक अनेक बातें कह मरा लड़का

राजद्वार पर रख ब्राह्मन अपने घर आया। आगे उसके आठ बेटे हुए औ आठों को वह उसी रीति से राजद्वार पर रख आया। जब नवाँ पुत्र होने को हुआ तब वह ब्राह्मन फिर राजा उग्रसेन की सभा में जा श्रीकृष्णचंदजी के सन्मुख खड़ा हो पत्रों के मरने का दुख सुमिर सुमिर रो रो यों कहने लगा—धिक्कार है राजा औ इसके राज को, पुनि धिक्कार है उन लोगों को जो इस अधर्मी की सेवा करते हैं औ धिक्कार है मुझे जो इस पुरी में रहता हूँ। इन पापियों के देश में न रहता तो मेरे पुत्र बचते। इन्हीं के अधर्म से मेरे पुत्र मरे औ किसी ने उपराला न किया।

महाराज, इसी ढब की सभा के बीच खड़े हो ब्राह्मन ने रो रो बहुत सी बातें कहीं पर कोई कुछ न बोला। निदान श्रीकृष्ण-चंद के पास बैठा सुन सुन घबराकर अर्जुन बोला कि हे देवता तू किसके आगे यह बात कहे है औ क्यों इतना खेद करे है। इस सभा में कोई धनुधर नहीं जो तेरा दुख दूर करे। आज-कल के राजा आप काजी हैं, पर-दुःख निवारन नहीं जो प्रजा को सुख दें औ गौ ब्राह्मन की रक्षा करें। ऐसे सुनाय पुनि अर्जुन ने ब्राह्मन से कहा कि देवता, अब तुम जाय अपने घर निश्चिंत हो बैठो, जब तुम्हारे लड़का होने का दिन आवे तब तुम मेरे पास आइयो, मैं तुम्हारे साथ चलूँगा औ लड़के को न मरने दूंगा। महाराज, इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मन खिजलाय के बोला कि मैं इस सभा के बीच श्रीकृष्ण बलराम प्रद्युम्न औ अनुरुद्ध छुड़ाय ऐसा बलवान किसी को नहीं देखता जो मेरे पुत्र को काल के हाथ से बचावे। अर्जुन बोला कि ब्राह्मन, तू मुझे नहीं जानता

कि मेरा नाम धनंजय है। मैं तुझसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो मैं तेरा सुत काल के हाथ से न बचाऊँ तो तेरे मरे हुए लड़के जहां पाऊँ तहाँ से ले आय तुझे दिखाऊँ औ वे भी न मिलें तो गांडीव धनुष समेत अपने तईं अग्नि में जलाऊँ। महाराज, प्रतिज्ञा कर जब अर्जुन ने ऐसे कहा तब वह ब्राह्मन संतोष कर अपने घर गया। पुनि पुत्र होने के समय विप्र अर्जुन के निकट आया। उस काल अर्जुन धनुषबान ले उसके साथ उठ धाया। आगे वहाँ जाय विसका घर अर्जुन ने बानों से ऐसा छाया कि जिसमें पवन भी प्रवेश न कर सके औ आप धनुषबान लिए उसके चारों ओर फिरने लगा।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, अर्जुन ने बहुत सा उपाय बालक के बचाने को किया पर न बचा, और दिन बालक होने के समैं रोता था, उस दिन साँस भी न लिया, वरन पेट ही से मरा निकला। मरे लड़के का होना सुन लज्जित हो अर्जुन श्रीकृष्णचंद के निकट आया औ उसके पीछे ब्राह्मन भी। महाराज, आते ही रो रो वह ब्राह्मन कहने लगा कि रे अर्जुन, धिक्कार है तुझे औ तेरे जीतब को जो मिथ्या वचन कह संसार में लोगों को मुख दिखाता है। अरे नपुंसक जो मेरे पुत्र को काल से न बचा सकता था, तो तैंने प्रतिज्ञा क्यों की थी कि मैं तेरे पुत्र को बचाऊँगा औ न बचा सकूँगा तो तेरे मरे हुए सब पुत्र ला दूंगा।

महाराज, इतनी बात के सुनते ही अर्जुन धनुषबान ले वहाँ से उठ चला चला संजमनी पुरी में धर्मराज के पास गया। इसे देख धर्मराज उठ खड़ा हुआ औ हाथ जोड़ स्तुति कर बोला कि महाराज, आपका आगमन यहाँ कैसे हुआ। अर्जुन बोला कि मैं अमुक ब्राह्मन के बालक लेने आया हूँ। धर्मराज ने कहा कि यहाँ वे बालक नहीं आए। महाराज, इतना बचन धर्मराज के मुख से निकलते ही अर्जुन वहाँ से बिदा हो सब ठौर फिरा, पर उसने ब्राह्मन के लड़कों को कहीं न पाया। निदान अछता पछता द्वारकापुरी में आया औ चिता बनाय धनुषबान समेत जलने को उपस्थित हुआ। आगे अग्नि जलाय अर्जुन जों चाहे कि चिता पर बैठे तों श्रीमुरारी गर्वप्रहारी ने आय हाथ पकड़ा औ हँस के कहा कि हे अर्जुन तू मत जलै, तेरी प्रतिज्ञा मैं पूरी करूँगा। जहाँ उस ब्राह्मन के पुत्र होंगे तहां से ला दूंगा। महाराज, ऐसे कह त्रिलोकीनाथ रथ पर बैठ अर्जुन को साथ ले पूरब दिशा को चले औ सात समुद्र पार हो लोकालोक पर्वत के निकट पहुँचे। वहाँ जाय रथ से उतर एक अति अँधेरी कंदरा में पैठे, उस समय श्रीकृष्णचन्दजी ने सुदरसन चक्र को आज्ञा की, वह कोटि सूर्य का प्रकाश किये प्रभु के आगे महाअंधकार को टालता चला।

तम तज केतिक आगे गए। जल में तबै जु पैठत भए॥
महा तरंग तास में लसे। मूँदि आँख ये तामें धसे॥
पहुड़े हुए शेषजी जहाँ। कृष्ण अरु अर्जुन पहुँचे तहाँ॥

जाते ही आँख खोल कर देखा कि एक बड़ा लम्बा चौड़ा ऊँचा

कंचन का मनिमय मंदिर अति सुन्दर है, तहाँ शेषजी के सीस प
रतनजटित सिंहासन धरा है, तिस पर स्यामघन रूप, सुन्दर सरू
चंद्रवदन, कँवल-नयन, किरीट कुण्डल पहने, पीतवसन ओढ़े, पीतांवर काछे, वनमाल मुक्तमाल डाले आप प्रभु मोहिनी मूरती विराजे हैं और ब्रह्मा-रुद्र-इंद्र आदि सब देवता सन्मुख खड़े स्तुति करते हैं। महाराज, ऐसा सरूप देख अर्जुन औ श्रीकृष्णचंद जी ने प्रभु के सोंही जाय, दंडवत कर हाथ जोड़ अपने आने का सब कारन कहा। बात के सुनते ही प्रभु ने ब्राह्मन के बालक सब मँगाय दीने औ अर्जुन ने देखभाल प्रसन्न हो लीने। तब प्रभु बोले—

तुम दोऊ मेरी कला जु आहि। हरि अर्जुन देखौ चित चाहि॥
भार उतारन भुव पर गए। साधु संत को बहु सुख दए॥
असुर दैत्य तुम सब संहारे। सुर नर मुनि के काज सँवारे॥
मेरे अंस जु तुम मैं द्वै हैं। पूरन काम तुम्हारे ह्वै हैं॥

इतना कह भगवान ने अर्जुन औ श्रीकृष्ण जी को बिदा ‍्या। ये बालक ले पुरी में आए, द्विज के पुत्र द्विज ने पाए, घर आनंद मंगल भए बधाए। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने ा परीक्षित से कहा कि महाराज—

जे यह कथा सुने धर ध्यान। तिनके पुत्र होयँ कल्यान॥

सय्यद इन्शा अल्लाखाँ

[सं० १ — सं० १८७५]

इन्शा के पिता माशा अल्ला खाँ मुग़ल दर्बार के शाही हकीम थे। सय्यद इन्शा अल्ला खाँ बहुत ही चतुर तथा प्रतिभा-शाली थे। इनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी। ये स्वभाव के चंचल और तबीअत के रंगीले थे।

ये न केवल हिन्दी ही के प्रसिद्ध लेखक थे, भारत की अन्य कई भाषाओं के भी अच्छे जानकार थे, फ़ारसी पर भी इनका अच्छा अधिकार था।

"रानी केतकी की कहानी" इनकी सुप्रसिद्ध तथा मौलिक कृति है। यह सं० १८५५ और १८६० के बीच निर्मित हुई। इसकी भाषा चलती तथा चटपटी हिन्दी है। इसमें अरबी फ़ारसी का एक शब्द भी प्रयुक्त नहीं किया गया। भाषा की दृष्टि से यह कृति बहुत महत्व की है, कारण, यह शुद्ध अथवा ठेठ हिन्दी में, या यूँ कहिए कि तद्भव शब्दों में लिखी गई है।

ये उच्च कोटि के कवि न थे, परन्तु जो कुछ लिखा वह अपने ढंग का अनूठा था, विचित्र था, चमत्कार-पूर्ण था। इनकी कृतियों में हँसी-ठट्ठा, विनोद-प्रमोद, चंचलता तथा चुलबुलापन सर्वत्र विद्यमान है।

इन्शा और कतील की एक कृति "दर्याए लिताफ़त" है। यह १८०२ ई० में लिखी गई। इसका पहला भाग इनका ही लिखा हुआ है। यह फ़ारसी में है। भारतीयों द्वारा लिखे गए उर्दू व्याकरणों में यह सब से पहला है और भाषा विज्ञान की दृष्टि से बहुत काम की चीज़ है।

रानी केतकी की कहानी

[निर्माण-काल—सं० १८५५ और १८६० के बीच ।]

किसी देश में किसी राजा के घर एक बेटा था। उसे उसके माँ बाप और सब घर के लोग कुँवर उदैभान करके पुकारते थे। सचमुच उसके जीवन की जोत में सूरज की एक सोत आ मिली थी। उसका अच्छापन और भला लगना कुछ ऐसा न था जो किसी के लिखने और कहने में आ सके। पन्द्रह बरस भर के उसने सोलहवें में पाँव रक्खा था। कुछ यों ही सी उसकी मसें भीनती चली थीं। अकड़ तकड़ उसमें बहुत सारी थी। किसी को कुछ न समझता था पर किसी बात के सोच का घर घाट पाया न था और चाह की नदी का पाट उसने देखा न था। एक दिन हरियाली देखने को अपने घोड़े पर चढ़ के उसे अठखेल और अल्हड़पन के साथ देखता भालता चला जाता था। इतने में जो एक हिरनी उसके सामने आई तो उसका जी लोट पोट हुआ। उस हिरनी के पीछे सबको छोड़ छाड़कर घोड़ा फेंका। भला कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब सूरज छिप गया और हिरनी आँख से ओझल हुई तब तो कुँवर उदैभान भूखा प्यासा उनींदा जाइयाँ और अँगड़ाइयाँ लेता हक्का बक्का होके आसरा लगा ढूंढने। इतने में कुछ अमराइयाँ ध्यान में चढ़ीं। उधर चल निकला तो क्या

देखता है जो चालीस पचास लड़कियाँ झूला डाले पड़ी झूल रही हैं और सावन गातियाँ हैं। ज्यों ही उन्होंने उसको देखा—तू कौन ? तू कौन ? की चिंघाड़ सी पड़ गई।

दोहरा

कोई कहती थी यह उचक्का है।
कोई कहती थी एक पक्का है॥

वही झूलने वाली लाल जोड़ा पहने हुए जिसको सब रानी केतकी कहती थीं बोली—'हक न धक जो तुम झट से टपक पड़े यह न जाना जो यहाँ लड़कियाँ अपने झूल रहीं हैं, अजी तुम जो इस रूप के साथ बेधड़क चले आये हो ! ठण्डे ठण्डे चले जाओ'। तब कुँवर ने मसोस के मलौला खा के कहा 'इतनी इतनी रुखाइयां न दीजिये। मैं सारे दिन का थका हुआ एक पेड़ की छाँह में ओस का बचाव करके पड़ रहूँगा। बड़े तड़के धुन्धलके में उठ कर जिधर को मुँह पड़ेगा चला जाऊँगा। कुछ किसी का लेता देता नहीं। एक हिरनी के पीछे सब लोगों को छोड़-छाड़ कर घोड़ा फेंका था कोई घोड़ा उसको पा सकता था ? जब तलक उजाला रहा उसी के ध्यान में था। जब अँधेरा छा गया और जी बहुत घबरा गया, इन अमराइयां का आसरा ढूंढ़कर यहाँ चला आया हूँ। कुछ रोक टोक तो इतनी न थी जो माथा ठनक जाता और रुक रहता। सर उठाए हाँपता हुआ चला आया।'

यह बात सुन कर वह जो लाल जोड़े वाली सब की सिरधरी

थी उसने कहा—'इनको कहदो जहाँ जी चाहे अपने पड़ रहें और जो कुछ खाने पीने को माँगे सो इन्हें पहुँचा दो। घर आए को आज तक किसी ने मार नहीं डाला। इनके मुँह का डौल, गाल तम-तमाए और होंठ पपड़ाए, और घोड़े का हाँपना, और जी का काँपना और ठण्डी साँसें भरना और निढाल गिरे पड़ना इनको सच्चा करता है। बात बनाई हुई और सचोटी की कोई छिपती नहीं, पर हमारे और इनके बीच कुछ ओट कपड़े लत्ते की करदो। इतना आसरा पाके सब से परे जो कोने में पाँच सात पौदे थे उनकी छाँव में कुँवर उदैभान ने अपना बिछौना किया और कुछ सिरहाने धर कर चाहता था कि सो रहे, पर नींद कोई चाहत की लगावट में आती थी ? पड़ा पड़ा अपने जी से बातें कर रहा था। जब रात साँय साँय बोलने लगी और साथ वालियाँ सब सो रहीं, रानी केतकी ने अपनी सहेली मदनबान को जगा कर यों कहा—'तू मेरे साथ चल, पर तेरे पाओं पड़ती हूँ कोई सुनने न पाए। अरी यह मेरा जोड़ा मेरे और उसके बनाने वाले ने मिला दिया। मैं इसी जी में इन अमराइयों में आई थी।' रानी केतकी मदनबान का हाथ पकड़े हुए वहां आन पहुँची थी, जहां कुँवर उदैभान लेटे हुए कुछ कुछ सोच में बड़बड़ा रहे थे। मदनबान आगे बढ़ के कहने लगी 'तुम्हें अकेला जानकर रानीजी आप आई हैं।' कुँवर उदैभान यह सुनकर उठ बैठे। कुँवर और रानी दोनों चुपचाप बैठे, पर मदन-बान दोनों को गुदगुदा रही थी। होते २ रानी का यह पता खुला कि राजा जगतपरकास की बेटी है और उनकी माँ रानी कामलता

कहलाती हैं। उनको उनके माँ बाप ने कह दिया है एक महीने पीछे अमराइयों में जाकर झूल आया करो। आज वही दिन था सो तुम से मुठभेड़ हो गयी। बहुत महाराजों के कुँवरों से बातें आईं पर किसी पर इनका ध्यान न चढ़ा। तुम्हारे धन भाग जो तुम्हारे पास सबसे छुप के मैं जो उनके लड़कपन की गोइयाँ हूँ मुझे अपने साथ लेके आई हैं। अब तुम अपनी बीती कहानी कहो कि तुम किस देश के कौन हो। उन्होंने कहा 'मेरा बाप राजा सूरजभान और माँ रानी लछमीबास हैं। आपस में जो गंठ जोड़ हो जाय तो कुछ अनोखी अचरज और अचम्भे की बात नहीं। योंही आगे से होता चला आया है। जैसा मुँह वैसा थप्पड़, जोड़ तोड़ टटोल लेते हैं। दोनों महाराजों को चितचाही बात अच्छी लगेगी पर हम तुम दोनों के जी का गाठजोड़ा चाहिये।' इसी में मदनबान बोल उठी 'सो तो हुआ, अपनी अपनी अँगूठी हेरफेर कर लो और आपस में लिखौती भी लिख दो फिर कुछ हिचिर पिचिर न रहे'। कुँवर उदैभान ने अपनी अँगूठी रानी केतकी को पहना दी और रानी ने भी अपनी अँगूठी कुँवर की उंगली में डाल दी। इतने में मदनबान बोली, जो सच पूछो तो इतनी भी बहुत हुई, मेरे सर चोट है इतना बढ़ चलना अच्छा नहीं, अब उठ चलो।' पिछले पहर से रानी तो अपनी सहेलियों को लेके जिधर से आई थी उधर को चली गई और कुँवर उदैभान अपने घोड़े को पीठ लगा कर अपने लोगों से मिलके अपने घर पहुँचे।

पर कुँवर जी का रूप क्या कहूँ कुछ कहने में नहीं आता।

न खाना, न पीना, न मग चलना, न किसी से कुछ कहना-सुनना, जिस ध्यान में थे उसी में गुथे रहना और घड़ी २ कुछ सोच कर सिर धुनना। होते होते लोगों में इस बात की चरचा फैल गई। किसी किसी ने महाराज और महारानी से कहा 'यह कुँवर उदैभान जिससे तुम्हारे घर का उजाला है उसके इन दिनों में कुछ बुरे तेवर और बेडौल आँखें दिखाई देती हैं। घर से बाहर पाँव नहीं धरता। घर वालियाँ जो किसी डौल से बहलातियाँ हैं तो और कुछ नहीं करता, ठंडी २ साँसें भरता है और बहुत किसीने छेड़ा तो छपरखट पर जाके अपना मुँह लपेट के आठ २ आँसू पड़ा रोता है।' यह सुनते ही कुँवर उदैभान के माँ बाप दोनों दौड़ आये, गले लगाया, मुँह चूम पाँव पर बेटे के गिर पड़े, हाथ जोड़े और कहा 'जो अपने जी की बात है सो कहते क्यों नहीं? क्या दुखड़ा है जो पड़े पड़े कराहते हो? राज पाट जिसको चाहो दे डालो। कहो तो तुम क्या चाहते हो? तुम्हारा जी क्यों नहीं लगता? भला वह क्या है जो हो नहीं सकता। मुँह से बोलो, जी खोलो। जो कुछ कहने में सोच करते हो अभी लिख भेजो, जो कुछ लिखोगे ज्यों के त्यों करने में आयेगी। जो तुम कहो कुँए में गिर पड़ो तो हम अभी दोनों गिर पड़ते हैं। कहो सिर काट डालो तो सिर अपने अभी काट डालते हैं।' कुँवर उदैभान जो बोलते ही न थे लिख भेजने का आसरा पाकर इतना बोले 'अच्छा आप सिधारिये मैं लिख भेजता हूँ, पर मेरे उस लिखे को मेरे मुँह पर किसी ढबसे न लाना, इसी लिये मैं मारे लाजके

मुख पाट होके पड़ा था और आपसे कुछ न कहता था।' यह सुन कर दोनों महाराज और महारानी अपने अपने स्थान को सिधारे। तब कुँवर ने यह लिख भेजा 'अब जो मेरा जी होठों पर आगया और किसी डौल न रहा गया और आपने मुझे सौ सौ रूप से खोला और बहुत सा टटोला तब तो लाज छोड़ के हाथ जोड़ के मुँह को फाड़ के घिघिया के यह लिखता हूँ।

'उस दिन मैं हरियाली देखने को गया था। एक हिरनी मेरे सामने कनौतियाँ उठाए आगई उसके पीछे मैंने घोड़ा बग-छुट फेंका। जब तक उजाला रहा उसके धुन में बहका किया। जब सूरज डूबा, मेरा जी ऊबा, सुहानी सी अमराइयाँ ताड़ के मैं उनमें गया तो उन अमराइयों का पत्ता पत्ता मेरे जी का गाहक हुआ। वहां का यह सौहिला है, कुछ लड़कियां झूला डाले झूल रही थीं। उनकी सरधरी कोई रानी केतकी महाराज जगतपरकास की बेटी हैं। उन्होंने यह अँगूठी अपनी मुझे दी और मेरी अँगूठी उन्होंने ले ली और लिखौट भी लिख दी। सो यह अँगूठी उनकी लिखौट समेत मेरे लिखे हुए के साथ पहुँचती है। अब आप पढ़ लीजिए। जिस में बेटे का जी रह जाय सो कीजिए।' महाराज और महारानी ने अपने बेटे के लिए लिखे हुए पर सोने के पानी से यों लिखा। 'हम दोनों ने इस अँगूठी और लिखौट को अपनी आँखों से मला, अब तुम इतने कुढ़ो पचो मत। जो रानी केतकी के मां-बाप तुम्हारी बात मानते हैं तो हमारे समधी और समधिन हैं और दोनों

राज एक हो जायेंगे और जो कुछ नाह नूह ठहरेगी तो जिस डौल से बन आवेगा ढाल तलवार के बल तुम्हारी दुल्हन हम तुम से मिला देंगे। आज से उदास मत रहा करो। खेलो कूदो, बोलो चालो आनन्दें करो। अच्छी घड़ी शुभ मुहूरत सोच के तुम्हारी ससुराल में किसी बाम्हन को भेजते हैं जो बातचीत चाहे ठीक कर लावे।' और शुभ घड़ी शुभ मुहूरत देख के रानी केतकी के मां-बाप के पास भेजा।

बाम्हन जो शुभ मुहूरत देखकर हड़बड़ी से गया था उस पर बुरी घड़ी पड़ी। सुनते ही रानी केतकी के माँ-बाप ने कहा 'हमारे उनके नाता नहीं होने का। उनके बाप दादे हमारे बाप दादे के आगे सदा हाथ जोड़ कर बातें किया करते थे और जो टुक तेवरी चढ़ी देखते थे बहुत डरते थे, क्या हुआ जो अब वह ऊँचे पर चढ़ गए जिनके माथे हम बांयें पांव के अँगूठे से टीका लगावें वह महाराजों का राजा हो जाये। किस का मुँह जो यह बात हमारे मुँह पर लावे।' बाम्हन ने जल भुन के कहा 'अगले भी इसी विचार में थे। राजा सूरजभान भी भरी सभा में कहते थे हम में उनमें कुछ गोत का तो मेल नहीं। पर कुँवर की हठसे कुछ हमारी नहीं चलती; नहीं तो ऐसी ओछी बात कब हमारे मुँह से निकलती।' यह सुनते ही उस महाराज ने बाम्हन के सिर पर फूलों की चंगेर फेंक मारी और कहा 'जो बाम्हन की हत्या का धड़का न होता तो तुझको अभी चक्की में दलवा डालता' और अपने लोगों से कहा 'इसको ले जाओ और ऊपर एक अँधेरी कोठरी में मूँद रक्खो'

जो इस वाह्मन पर बीती सो सब उदैभान के मां-बाप ने सुनी। सुनते ही लड़न की ठान अपना ठाट बांध भादों के दल बादल जैसे घिर आते हैं चढ़ आया। जब दोनों महाराजों में लड़ाई होने लगी रानी केतकी सावन भादों के रूप समान रोने लगी, और दोनों के जी में यह आ गई, यह कैसी चाहत जिस में लोहू बरसने लगा, और अच्छी बातों को जी तरसने लगा। कुँवर ने चुपके से यह लिख भेजा 'अब मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हुआ जाता है। दोनों महाराजों को आपस में लड़ने दो, किसी डौल से जो हो सके तो तुम मुझे अपने पास बुला लो, हम तुम दोनों मिलके किसी और देस को निकल चलें, होनी हो सो हो, सिर रहता रहे, जाता जाय'। एक मालिन जिसको फूलकली कर सब पुकारते थे उसने उस कुँवर की चिट्ठी किसी फूल की पखड़ी में लपेट सपेट कर रानी केतकी तक पहुँचा दी। रानी ने उस चिट्ठी को अपनी आँखों लगाया और मालन को एक थाल मोती दिये और उस चिट्ठी की पीठ पर अपने मुँह की पीक से यह लिखा 'ऐ मेरे जी के गाहक, जो तू मुझे बोटी बोटी करके चील कौवों को दे डाले तो भी मेरी आंखों को चैन और कलेजे में सुख हो, पर यह बात भाग चलने की अच्छी नहीं। डौल से बेटा बेटी के बाहर है। जी तुझ से प्यारा नहीं, एक तो क्या जो करोड़ जी जाते रहें। पर भागने की कोई बात हमें रुचती नहीं।'

यह चिट्ठी पीक भरी जो कुँवर तक जा पहुँची वह उस पर कई एक थाल सोने के हीरे मोती पुखराज के खचाखच भरे हुए निछावर करके लुटा देता है। और जितनी उसे बेचैनी थी उससे चौगुनी पचगुनी हो जाती है। और चिट्ठी को अपने उस गोरे दंड पर बांध लेता है।

जगतपरकास अपने गुरु को, जो कैलाश पहाड़ पर रहता था, लिख भेजता है 'कुछ हमारी सहाय कीजिए, महा कठिन हम पर बिपता आ पड़ी है। राजा सूरजभान को अब यहां तक बाव बँहक ने लिया है जो उन्होंने हम से महाराजों से नाते का डौल किया है।'

कैलाश पहाड़ जो एक डौल चांदी का है उसपर राजा जगतपरकास का गुरु, जिसको इन्दरलोक के लोग सब महेन्दरगिर कहते थे, ध्यान ज्ञान में कोई नव्वे लाख अतीतों के साथ ठाकुर के भजन में दिन-रात लगा रहता था। सोना रूपा तांवे रांगे का बनाना तो क्या और गुटका मुँह में लेकर उड़ना परे रहे। उसको और बातें इस ढब की ध्यान में थीं जो कहने सुनने से बाहर हैं। मेंह सोने रूपे का बरसा देना और जिस रूप में चाहना हो जाना सब कुछ उसके आगे खेल था, गाने बजाने में महादेव जी छुट सब उसके आगे कान पकड़ते थे। सरस्वती जिस को सब लोग कहते थे उन्ने भी कुछ गुनगुनाना उसीसे सीखा था। उसके सामने छः राग छत्तीस रागनियां आठ पहर रूप बंदियों का सा धरे हुए उसकी सेवा में सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं। और वहां अतीतों

को गिर कह कर पुकारते थे—भैरों गिर, बिभास गिर, हिंडोल-गिर, मेघनाथ, केदारनाथ, दीपकसेन, जोती स्वरूप, सारङ्गरूप। और अतीतिनें इस ढब से कहलाती थीं—गूजरी, टोड़ी, असावरी, गौरी, मालसिरी, बिलावली। जब चाहता अधर में सिंहासन पर बैठ कर उड़ाए फिरता था और नव्वे लाख अतीत गुटके अपने मुंह में लिए गेरुये वसतर पहने जटा बिखारे उसके साथ होते थे। जिस घड़ी रानी केतकी के बाप की चिट्ठी एक बगला उसके घर तक पहुँचा देता है गुरु महेन्दर गिर एक चिंघाड़ मारकर दल बादलों को तहलका देता है, बगम्बर पर बैठ भभूत अपने मुंह से मल कुछ कुछ पठन्त करता हुआ बाव के घोड़े के पीठ लगा और सब अतीत मृगछालों पर बैठे हुए गुटके मुंह में लिए हुए बोल उठे 'गोरख जागा और मुछन्दर भागा।' एक आँख की झपक में वहां आ पहुँचता है जहां दोनों महाराजों में लड़ाई हो रही थी। पहले तो एक काली आंधी आई फिर ओले बरसे फिर टिड्डी आई। किसी को अपनी सुध न रही। राजा सूरजभान के जितने हाथी घोड़े और जितने लोग और भीड़भाड़ थी कुछ न समझा गया कि किधर गई और उन्हें कौन उठा ले गया। राजा जगतपरकास के लोगों पर और रानी केतकी के लोगों पर केवड़े की बूंदों की नन्हीं नन्हीं फुहार सी पड़ने लगी। जब वह सब कुछ हो चुका तो गुरु जी ने अतीतों से कहा 'उदैभान, सूरजभान, लछमीबास इन तीनों को हिरनी हिरन बना के किसी बन में छोड़ दो और जो उनके साथी हों उन सभों को तोड़ फोड़ दो।' जैसा कुछ गुरुजी

ने कहा, झटपट वही किया। विपत का मारा कुंवर उदयभान और उसका बाप वह राजा सूरजभान और उसकी मां लक्ष्मीवास हिरनी हिरन बन गये। हरी घास कई बरस तक चरते रहे और उस भीड़भाड़ का तो कुछ थल बेड़ा न मिला, किधर गई और कहां थी। बस यहां की यहीं रहने दो। फिर सुनो। अब रानी केतकी के बाप महाराजा जगतपरकास की सुनिये। उनके घर का घर गुरु जी के पांव पर गिरा और सब ने सिर झुका कर कहा 'महाराज यह आपने बड़ा काम किया। हम सबको रख लिया। जो आज आप न पहुँचते तो क्या रहा था। सब ने मर मिटने की ठान ली थी। इन पापियों से कुछ न चलेगी, यह जानते थे। राज पाट हमारा अब निछावर करके जिसको चाहिये दे डालिये, राज हमसे नहीं थम सकता। सूरजभान के हाथ से आपने बचाया। अब कोई उनका चचा चंदरभान चढ़ आवेगा तो क्या बचना होगा। अपने आप में तो सकत नहीं, फिर ऐसे राँज का फिटे मुंह, कहां तक आपको सताया करें।' जोगी महेन्दर गिर ने यह सुन कर कहा 'तुम हमारे बेटा हो, आनन्दें करो, दन दनाओ, सुख चैन से रहो। अब वह कौन है जो तुम्हें आंख भर कर और ढब से देख सके। वह बघम्बर और यह भभूत हमने तुमको दिया। जो कुछ ऐसी गाढ़ पड़े तो इसमें एक रोंगटा तोड़ आग में फूँक दीजिये। यह रोंगटा फुकने न पावेगा जो बात की बात में हम आ पहुँचेंगे। रहा भभूत, सो लो इसलिए है जो कोई इसे अंजन करै वह सब को देखे और उसे कोई

न देखे, जो चाहे सो करै ।

गुरु महेन्दर गिर जिनके पांव पूजिए और 'धन धन महाराज' कहिये, उनसे तो कुछ छिपाव न था । महाराज जगतपरकास उनको मुर्छल करते हुए अपनी रानियों के पास लेगये । सोने रूपे के फूल गोद भर भर सब ने निछावर किए और माथे रगड़े । उन्होंने सब की पीठें ठोकीं । रानी केतकी ने भी गुरु जी को दंडवत की पर जी में बहुत सी गुरु जी को गालियां दीं । गुरुजी सात दिन सात रातें यहां रह कर जगतपरकास को सिंहासन पर बैठा कर अपने बघम्बर पर बैठ उसी डौल से कैलाश पर आ धमके और राजा जगतपरकास अपने अगले ढब से राज करने लगा ।

एक दिन रानी केतकी ने अपनी मां रानी कामलता को भुलावे में डाल कर यों कहा और पूछा—'गुरुजी गुसाईं महेन्दर गिर ने जो भभूत मेरे बाप को दिया है वह कहां रखा है और उससे क्या होता है ?' रानी कामलता बोल उठी 'तेरी वारी ! तू क्यों पूछती है ?' रानी केतकी कहने लगी 'आंख मिचौवल खेलने के लिए चाहती हूं, अब अपनी सहेलियों के साथ खेलूँ और चोर बनूँ तो मुझको कोई पकड़ न सके ।' महारानी ने कहा 'वह खेलने के लिए नहीं है । ऐसे लटके किसी बुरे दिन को सम्भालने को डाल रखते हैं, क्या जाने कोई घड़ी कैसी है कैसी नहीं ।' रानी केतकी अपनी मां की इस बात पर अपना मुंह थुथा कर उठ गई और दिन भर खाना न खाया । महाराज ने जो बुलाया तो कहा 'मुझे रुचे नहीं ।' तब रानी कामलता बोल उठी 'अजी तुमने सुना भी,

बेटी तुम्हारी आंख मिचौवल खेलने केलिए वह भभूत गुरुजी का दिया मांगती थी। मैंने न दिया और कहा लड़की वह लड़कपन की बातें अच्छी नहीं, किसी बुरे दिन के लिए गुरुजी दे गए हैं। इसी पर मुझसे रूठी है। बहुतेरा बहलाती हूं मानती नहीं।' महाराज ने कहा 'भभूत तो क्या मुझे तो अपना जी भी उससे प्यारा नहीं, उसके एक पहर के बहल जाने पर एक जी तो क्या जो करोर जी हों तो दे डालें।' रानी केतको को डिबिया में से थोड़ा सा भभूत दिया। कई दिन तलक आंख मिचौवल अपनी मां बाप के सामने सहेलियों के साथ खेलती सबको हँसाती रहती जो सौ सौ थाल मोतियों के निछावर हुआ किए। क्या कहूं! एक चुहल थी जो कहिए तो करोड़ों पोथियों में ज्यों की त्यों न आ सके।

एक रात रानी केतकी उसी ध्यान में मदनबान से यों बोल उठी 'अब मैं निगोड़ी लाज से कुट करती हूँ, तू मेरा साथ दे।' मदनबान ने कहा 'क्योंकर'। रानी केतकी ने वह भभूत का लेना उसे बताया और यह सुनाया 'यह सब आंख मिचौवल के झाईं-झप्पे मैंने इसी दिन के लिए कर रक्खे थे।' मदनबान बोली 'मेरा कलेजा थरथराने लगा। अरी यह माना कि तुम अपनी आंख में उस भभूत का अंजन कर लोगी और मेरे भी लगा दोगी तो हमें तुम्हें कोई न देखेगा और हम तुम सबको देखेंगी, पर ऐसी हम कहां जी चली हैं जो बिन साथ जोबन लिये बन-बन में पड़ी भटका करें और हिरनों की सींगों पर दोनों हाथ डाल कर लटका करें।

और जिसके लिये यह सब कुछ है सो वह कहां और होय तो क्या जाने यह रानी केतकी है और यह मदनबान निगौड़ी नोची खसोटी उजड़ी उनकी सहेली है। चूल्हे और भाड़ में जाय वह जिसके लिये आपको मां बाप का राज-पाट सुख नींद लाज छोड़ कर नदियों के कछहरों में फिरना पड़े, सो भी बेडौल। जो वह अपने रूप में होते तो भला थोड़ा बहुत आसरा था। ना जी यह तो हम से न हो सकेगा, जो महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता का हम जान बूझकर घर उजाड़ें और उनकी जो इकलौती लाड़ली बेटी है उसको भगा ले जावें और जहां तहां उसे भटकावें और बनास्पती खिलावें और अपने चोंडै को हिलावें। जब तुम्हारे और उसके मां बाप में लड़ाई हो रही थी और उन्ने उस मालिन के हाथ तुम्हें लिख भेजा था जो मुझे अपने पास बुला लो, महाराजों को आपस में लड़ने दो, जो होनी हो सो हो, हम तुम मिलके किसी देश को निकल चलें। उस दिन न समझीं। तब तो वह तावभाव दिखाया। अब जो वह कुंवर उदैभान और उसके मां बाप तीनों जी हिरनी हिरन बन गए। क्या जाने किधर होंगे। उनके ध्यान पर इतनी कर बैठिए जो किसी ने तुम्हारे घराने में न की अच्छी नहीं। इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछताओगी और अपना किया पाओगी। मुझसे कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुंह से जीते जी न न निकलती पर यह बात मेरे पेट में नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो, तुमने अभी कुछ देखा नहीं। जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाव देखूँगी तो

तुम्हारे बापसे कहकर वह भभूत जो वह मुवा निगोड़ा भूत मुछंदर का पूत अवधूत दे गया है हाथ मुरकवाकर छिनवा लूँगी।' रानी केतकी ने यह रूखाइयां मदनवान की सुनकर हँसकर टाल दिया और कहा 'जिसका जी ठिकाने में न हो उसे ऐसी लाखों सूझती हैं पर कहने और करनेमें बहुतसा फेर है। भला यह कोई अंधेर है जो मैं मां बाप राज पाट लाज छोड़ कर हिरन के पीछे दौड़ती करछालें मारती फिरूँ, पर अरी तू तो बड़ी बावली चिड़िया है जो यह बात सच जानी और मुझसे लड़ने लगी।'

दस पन्द्रह दिन पीछे एक दिन रानी केतकी बिन कहे मदनवान के वह भभूत आँखों में लगा के घर से बाहर निकल गई। कुछ कहने में आता नहीं जो माँ बाप पर हुई। सब ने यह बात ठहराई, गुरु जी ने कुछ समझ कर रानी केतकी को अपने पास बुला लिया होगा। महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता राज पाट उस वियोग में छोड़ छाड़ कर एक पहाड़ की चोटीपर जा बैठे और किसी को अपने लोगों में से राज थामने को छोड़ गए। बहुत दिनों पर पीछे एक दिन महारानी ने महाराज जगतपरकास से कहा 'रानी केतकी का कुछ भेद जानती होगी तो मदनवान जानती होगी। उसे बुलाकर पूछो तो'। महाराज ने उसे बुलाकर पूछा तो मदनवान ने सब बातें खोलियाँ। रानी केतकी के माँ बाप ने कहा 'अरी मदनवान जो तू भी उसके साथ होती तो हमारा जी भरता—अब जो वह तुझे ले जावे तो कुछ

इचर पचर न कीजियो। उसके साथ हो लीजियो। जितना भभूत है तू अपने पास रख। हम कहाँ इस राख को चूल्हे में डालेंगे। गुरु जी ने दोनों राज्य का खोज खोया। कुँवर उदयभान और उसके माँ बाप दोनों अलग हो रहे। जगतपरकास और कामलता की यों तलपट किया। भभूत न होती तो यह बातें काहे को सामने आतीं।' मदनबान भी उनके ढूँढ़ने को निकली। अंजन लगाये हुये 'रानी केतकी, रानी केतकी' कहती हुई उड़ी फिरती थी। बहुत दिनों पीछे कहीं रानी केतकी भी हिरनों की दहाड़ों में 'उदैभान उदैभान' चिंघाड़ती हुई आ निकली। एक ने एक को ताड़ कर पुकारा 'अपनी तनी आँखें धो डालो।' एक डबरे पर बैठ कर दोनों की मुठभेड़ हुई। लग के ऐसी रोइयाँ जो पहाड़ों में कूक सी पड़ गई।

दोनों जनियां एक अच्छी सी छाँव को ताड़ कर आ बैठियाँ और अपनी अपनी दोहराने लगीं।

रानी केतकी ने अपनी बीती सब कही और मदनबान वही अगला झींकना झींका की और उनके माँ बाप ने जो उनके लिए जोग साधा या जो वियोग लिया था सब कहा। जब मदनबान यह सब कुछ कह चुकी तब फिर हँसने लगी।

पर मदनबान से कुछ रानी केतकी के आँसू पोंछते से चली। उन्ने यह बात कही 'जो तुम कहीं ठहरो तो मैं तुम्हारे उन उजड़े हुए माँ बाप को चुपचाप ले आऊँ और उन्हीं से इस नाते को ठहराऊँ। गोसाईं महेन्दर गिर जिसकी यह सब करतूत है वह भी

इन्हीं दोनों उजड़े हुओं की मुट्ठी में है। अब भी जो मेरा कहा तुम्हारे ध्यान चढ़े तो गये हुए दिन फिर सकते हैं। पर तुम्हारे कुछ भावे नहीं हम क्या पड़ी बकती हैं। मैं इस पर बीड़ा उठाती हूं।' बहुत दिनों पीछे रानी केतकी ने इस पर अच्छा कहा और मदनबान को अपने माँ बाप के पास भेजा और चिट्ठी अपने हाथों से लिख भेजी 'जो आप से हो सके तो उस जोगी से ठहरा के आवें।'

मदनबान रानी केतकी को अकेली छोड़ कर राजा जगतपरकास और रानी कामलता जिस पहाड़ पर बैठीं थीं, झट से आदेश करके आ खड़ी हुई और कहने लगी 'लीजे आप राज कीजे, आपका घर नए सिर से बसा और अच्छे दिन आए। रानी केतकी का एक बाल भी बांका नहीं हुआ। उन्हीं के हाथों की लिखी चिट्ठी लाई हूं, आप पढ़ लीजिए। आगे जो जी चाहे सो कीजिये'। महाराज ने उस बघम्बर में से एक रोंगटा तोड़कर आग पर रख कर फूँक दिया। बात की बात में गोसाईं महेन्दर गिर आ पहुँचा और जो कुछ नया स्वांग जोगी-जोगिन का आया आंखों देखा। सबको छाती लगाया और कहा 'बघम्बर तो इसीलिए मैं सौंप गया था कि जो तुम पर कुछ हो तो इसका एक बाल फूँक दीजियो। तुम्हारी यह गत हो गई। अब तक क्या कर रहे थे और किन नींदों सोते थे। पर तुम क्या करो? यह खिलाड़ी जो रूप चाहे सो दिखावे, जो नाच चाहे नचावै। भभूत लड़की को क्या देना था। हिरन हिरनी उदैभान

और सूरजभान इनके बाप को और लक्ष्मीबास उसकी मां को मैंने किया था। फिर उन तीनों को जैसा का तैसा करना कोई बड़ी बात न थी। अच्छा, हुई सो हुई। अब उठ चलो अपने राज पर विराजो और व्याह का ठाठ करो। अब तुम अपनी बेटी को समेटो। कुँवर उदैभान को मैंने अपना बेटा किया और उसको लेके मैं व्याहने चढ़ूँगा'। महाराज यह सुनते ही अपनी गद्दी पर जा बैठे और उसी घड़ी यह कह दिया 'सारी छतों और कोठों को गोटे से मढ़ो और सोने और रूपे के सुनहरे रुपहरे सेहरे सब झाड़ पहाड़ों पर बांध दो और पेड़ों में मोती की लड़ियां बाँध दो और कह दो—चालीस दिन चालीस रात तक जिस घर में नाच आठ पहर न रहेगा उस घर वाले से मैं रूठ रहूंगा और यह जानूँगा यह मेरे दुःख सुख का साथी नहीं। और छः महीने कोई चलने वाला कहीं न ठहरे, रात दिन चला जावे'। इस हेर फेर में वह राज सब कहीं था। सब कहीं यही डौल था।

फिर महाराजा और महारानी और महेन्द्रगिर मदनबान के साथ जहां रानी केतकी चुपचाप सुन खींचे हुए बैठी थी चुपचपाते वहां आन पहुँचे। गुरु जी रानी केतकी को अपनी गोद में लेकर कुँवर उदैभान का चढ़ावा चढ़ा दिया और कहा, 'तुम अपने माँ बाप के साथ अपने घर सिधारो, अब बेटे उदयभान को लिये हुए आता हूँ।' गुरु जी गोसांई जिनको दण्डौत है सो तो यों सिधारते हैं। आगे जो होगी सो कहने में आवेगी। यहाँ पर धूमधाम फैलावा अब ध्यान कीजिये। महाराज

जगतपरकास ने अपने सारे देश में कह दिया 'यह पुकार दे जो यह न करेगा उसकी बुरी गति होवेगी। गाँव गाँव में अपने सामने छिपोले वना घना के सूहे कपड़े उन पर लगा के गोट धनुप की और गोखरू रूपहले सुनहरे की किरनें और डांक टांक टांक रक्खो और जितने वड़, पीपल नये पुराने जहां जहां पर हों उनके फूल के सेहरे वड़े वड़े ऐसे जिनमें सिर से लगा पैर तलक पहुंचे वाँधो।'

चौतुका

पौदों ने रंगा के सूहे जोड़े पहने।
सब पाँव में डालियों ने तोड़े पहने॥
बूटे बूटे ने फूल फूल के गहने पहने।
जो वहुत न थे तो थोड़े थोड़े पहने॥

जितने डहडहे और हरियावल फूल पात थे, सबने अपने हाथ में चहचही मेंहदी की सजावट की, सजावट के साथ जितनी समावट में समा सके, कर लिए और जहाँ जहाँ नवल व्याही दुल्हने नन्हीं नन्हीं कलियों की और सुहागिनें नई नई कलियों के जोड़े पँखुड़ियों के पहने हुई थीं। सबने अपनी अपनी गोद सुहाग और प्यार के फूल और फलों से भरी और तीन वरस का पैसा सारे उस राजा के राजभर में जो लोग दिया करते थे, उस ढब से हो सकता था खेती वारी करके हल जोत के और कपड़ा लत्ता वेचकर सो सब उनको छोड़ दिया और कहा जो अपने अपने घरों में वनावट की ठाट करें। और जितने र जभर में कूँएँ थे खंड-

और सूरजभान उनके बाप को और लक्ष्मीवास उसकी मां को मैंने किया था। फिर उन तीनों को जैसा का तैसा करना कोई बड़ी बात न थी। अच्छा, हुई सो हुई। अब उठ चलो अपने राज पर विराजो और व्याह का ठाठ करो। अब तुम अपनी बेटी को समेटो। कुँवर उदैभान को मैंने अपना बेटा किया और उसको लेके में व्याहने चढ़ूँगा'। महाराज यह सुनते ही अपनी गद्दी पर जा बैठे और उसी घड़ी यह कह दिया 'सारी छतों और कोठों को गोटे से मढ़ो और सोने और रूपे के सुनहरे रुपहरे सेहरे सब झाड़ पहाड़ों पर बांध दो और पेड़ों में मोती की लड़ियां बाँध दो और कह दो—चालीस दिन चालीस रात तक जिस घर में नाच आठ पहर न रहेगा उस घर वाले से मैं रूठ रहूंगा और यह जानूँगा यह मेरे दुःख सुख का साथी नहीं। और छः महीने कोई चलने वाला कहीं न ठहरे, रात दिन चला जावे'। इस हेर फेर में वह राज सब कहीं था। सब कहीं यही डौल था।

फिर महाराजा और महारानी और महेन्द्रगिर मदनबान के साथ जहां रानी केतकी चुपचाप सुन खींचे हुए बैठी थी चुपचपाते वहां आन पहुँचे। गुरु जी रानी केतकी को अपनी गोद में लेकर कुँवर उदैभान का चढ़ावा चढ़ा दिया और कहा, 'तुम अपने माँ बाप के साथ अपने घर सिधारो, अब बेटे उदयभान को लिये हुए आता हूँ।' गुरु जी गोसांई जिनको दण्डौत है सो तो यों सिधारते हैं। आगे जो होगी सो कहने में आवेगी। यहाँ पर धूमधाम फैलावा अब ध्यान कीजिये। महाराज

जगतपरकास ने अपने सारे देश में कह दिया 'यह पुकार दे जो यह न करेगा उसकी बुरी गति होवेगी। गाँव गाँव में अपने सामने छिपोले बना घना फे सूहे कपड़े उन पर लगा के गोट धनुष की और गोखरू रूपहले सुनहरे की किरनें और डांक टांक रक्खो और जितने बड़, पीपल नये पुराने जहां जहां पर हों उनके फूल के सेहरे बड़े बड़े ऐसे जिनमें सिर से लगा पैर तलक पहुंचे बाँधो।'

चौतुका

पौदों ने रंगा के सूहे जोड़े पहने।
सब पाँव में डालियों ने तोड़े पहने॥
बूटे बूटे ने फूल फूल के गहने पहने।
जो बहुत न थे तो थोड़े थोड़े पहने॥

जितने डहडहे और हरियावल फूल पात थे, सबने अपने हाथ में चहचही मेंहदी की सजावट की, सजावट के साथ जितनी समावट में समा सके, कर लिए और जहाँ जहाँ नवल ब्याही दुल्हने नन्हीं नन्हीं कलियों की और सुहागिनें नई नई कलियों के जोड़े पँखुड़ियों के पहने हुई थीं। सबने अपनी अपनी गोद सुहाग और प्यार के फूल और फलों से भरी और तीन बरस का पैसा सारे उस राजा के राजभर में जो लोग दिया करते थे, उस ढब से हो सकता था खेती बारी करके हल जोत के और कपड़ा लत्ता बेचकर सो सब उनको छोड़ दिया और कहा जो अपने अपने घरों में बनावट की ठाट करें। और जितने रजभर में कूँएँ थे खंड-

सालों की खंडसालें उनमें उड़ेल गईं और सारे बनों और पहाड़ तलियों में लाल पटों की झमझमाहट रातों को दिखाई देने लगी। और जितनी झीलें थीं उनमें कुसुम और टेसू और हारसिंगार पड़ गया और केसरी भी थोड़ी थोड़ी बोलने में आ गई। फुनगे से लगा जड़ तलक जितने झाड़ झंखाड़ों में पत्ते और पत्ती बँधी थे उन पर रुपहरे सुनहरे डाक गोंद लगाकर चिपका दिए और सभों को कह दिया जो सूही पगड़ी और सूहे बागे बिन कोई किसी डौल किसी रूप से फिरे चले नहीं। और जितने गवैये बजवैये भाँड भगतिये रसधारी और संगीत पर नाचने वाले थे सब को कह दिया जिस जिस गाँव में जहाँ हों अपने अपने ठिकानों से निकल अच्छे अच्छे बिछौने बिछाकर गाते नाचते कूदते रहा करें।

यहां की बात और चुहलें जो कुछ हैं सो यहीं रहने दो अब आगे सुनो। जोगी महेन्द्रगिर और उसके नव्वे लाख अतीतों ने सारे धन के बन छान मारे पर कहीं कुँवर उदैभान और उसके मां-बाप का ठिकाना न लगा। तब उन्होंने राजा इन्दर को चिट्ठी लिख भेजी। उसे चिट्ठी में यह लिखा हुआ था 'इन तीन जनों को हिरनी-हिरन कर डाला था, अब उनको ढूँढ़ता फिरता हूँ, कहीं नहीं मिलते और मेरी जितनी सकत थी अपनी सी बहुत कर चुका हूँ। अब मेरे मुँह से निकला कुँवर उदैभान मेरा बेटा, मैं उसका बाप। और ससुराल में सब व्याह का ठाठ हो रहा है। अब मुझ पर विपत्ती गाढ़ी पड़ी जो तुम

से हो सके, करो।' राजा इन्दर चिट्ठी को देखते ही गुरु महेन्दर गिर के देखने को सब इन्द्रासन समेट कर आ पहुँचे और कहा 'जैसा आपका वेटा वैसा मेरा वेटा। आपके साथ मैं सारे इन्द्रलोक को समेट कर कुंवर उदैभान को व्याहने चढ़ूँगा।' गोसाँई महेन्दरगिर ने राजा इन्दर से कहा 'हमारी आप की एक ही वात है पर कुछ ऐसा सुझाइये जिससे कुंवर उदैभान हाथ आ जावे।' राजा इन्दर ने कहा 'जितने गवैए और गायने हैं, उन सबको साथ लेकर हम और आप सारे वनों में फिरा करें, कहीं न कहीं ठिकाना लग जायगा।' ।गुरु ने कहा 'अच्छा'।

एक रात राजा इन्दर और गोसाईं महेन्दरगिर निखरी हुई चांदनी में वैठे राग सुन रहे थे। करोड़ों हिरन राग के ध्यान में चौकड़ी भूल आस पास सर झुकाये खड़े थे। इसी में राजा इन्दर ने कहा 'इन सब हिरनों पर—मेरी सकत गुरु की भगत फुरे मन्त्र ईश्वरोवाच—पढ़ के एक एक छींटा पानी का दो।' क्या जाने वह पानी कैसा था छींटों के साथ ही कुँवर उदैभान और उसके मां वाप तीनों जने हिरनों का रुप छोड़कर जैसे थे वैसे हो गये। गोसाईं महेन्दर गिर और राजा इन्दर ने उन तीनों को अपने गले लगाया और वड़ी आव-भगत से अपने पास वैठाया और वही पानी घड़ा अपने लोगों को देकर वहाँ भेजवाया जहाँ सर मुंड़वाते ही ओले पड़े थे। राजा इन्दर के लोगों ने जो पानी के छींटे वही ईश्वरोवाच पढ़के दिये तो जो मरे थे सब उठ खड़े हुये,

और जो २ अधमुये भाग बचे थे, सब सिमट आये। राजा इन्दर और महेन्दर गिर कुँवर उदैभान और राजा सूरजभान और रानी लछमीबास को लेकर एक उड़न-खटोले पर बैठ कर बड़ी धूम-धाम से उनको उनके राज पर बिठा कर ब्याह के ठाट करने लगे। पसेरियों हीरे-मोती उन सब पर से निछावर हुये। राजा सूरज भान और कुँवर उदैभान और रानी लछमीबास चितचाही असीस पाकर फूले न समाये और अपने सारे राज को कह दिया, 'जोरे भौरे के मुँह खोल दो, जिस जिस को जो-जो उकत सूझे बोल दो। आज के दिन का सा कौन सा होगा। हमारी आंखों की पुतलियों का जिस से चैन है उस लाडले इकलौते का ब्याह और हम तीनों का हिरनों के रूप से निकल फिर राज पर बैठना। पहले तो यह चाहिये, जिन २ की बेटियां बिन ब्याहियां हों उन सब को उतना करदो जो अपने जिस चाव चोज से चाहे अपनी गुडियां सँवार के उठावें और जब तक जीती रहें सब की सब हमारे यहां से खाया पकाया रींधा करें। और सब राज भर की बेटियां सदा सुहागिनें बनी रहें और सूहे राते छुट कभी कोई कुछ न पहना करें। और सोने रूपे के केवाड़ गंगा-जमुनी सब घरों में लग जायें और सब कोठों के माथों पर केसर और चन्दन के टीके लगे हों। और जितने पहाड़ हमारे देश में हों उतने ही पहाड़ सोने रूपे के सामने खड़े हो जायें और डांगों की चोटियां मोतियों की मांग से बिना मांगे तांगे भर जायँ और फूलों के गहने और बन्धनवारसे सब झाड़ पहाड़ लदे-फंदे रहें। और इस राजसे

लगा उस राज तक अधर में छत सी वांध दो और चप्पा-चप्पा कहीं ऐसा न रहे जहां भीड़ भड़क्का, धूम धड़क्का न हो जाय। फूल वहुत सारे खंड जायें जो नदियां जैसे सचमुच फूल की वहतियां हैं यह समझा जाय। और यह डौल कर दो जिधर से दूल्हा को व्याहने चढ़ें सव लाडली और हीरे और पुखराज की उमड़ में इधर और उधर कँवल की टट्टियां वन जायें और क्यारियां सी हो जाएँ जिनके वीचोवीच से हो निकलें और कोई डाँग और पहाड़ तली का चढ़ाव उतार ऐसा दिखाई न दे जिस की गोद पँखुरियों से भरी हुई न हो।

राजा इन्दर ने कह दिया, 'वह लड़कियां चुलवुलियां जो अपने मद में उड़ चलियां हैं उन से कहदो—'सोलह सिंगार वाल वाल-गजमोती पिरोवो। अपने अपने अचरज और अचम्भे के उड़न-खटोलों की इस राज से लेकर उस राज तक अधर में छत सी वांध दो। कुछ उस रूप से उड़ चलो जो उड़न खटोलों की क्यारियां और फुलवारियां सी सैंकड़ों कोस तक हो जायें, और ऊपर ही ऊपर मिरदंग वीन जलतरंग मुँहचँग घुँघरू तवले करताल और सैंकड़ों इस ढब के अनोखे वाजे वजते आयें और उन क्यारियों के वीच में हीरे पुखराज अनवेध मोतियों के झाड़ और लालपटों की भीड़भाड़ की झमझमाहट दिखाई दे और इन्हीं लालपटों में से हाथफूल फूलझाड़ियां जाही जुही कदम गेंदा चमेली इस ढव छूटने लगें जो देखने वालों की छातियां के केवाड़ खुल जायें और पटाखे जो उछल-उछल फूटें उनमें से हँसती

सुपारी और घोलते पखरोटे ढल पड़ें और जब हम सब को हँसी आवे तो चाहिये उस हँसी से मोतियों की लड़ियां झड़ें जो सबके सब उनको चुन चुन के राजे हो जायें। डोमनियों के रूप में सारंगियां छेड़ छेड़ सोहलें गाओ, दोनों हाथ हिलाके अँगुलियां नचाओ, जो किसी ने न सुने हों। वह ताव भाव व चाव देखाओ, ठुड्डियां गिनगिनावो, नाक भँवें तान-तान भाव बतावो, कोई छुट कर रह न जावो। ऐसा चाव लाखों बरस में होता है।' जो-जो राजा इन्दर ने अपने मुंह से निकाला था आंख की झपक के साथ वही होने लगा। और जो कुछ उन दोनों महाराजोंने कह दिया था, सब कुछ उसी रूप से ठीक-ठीक हो गया। जिस ब्याह की यह कुछ फैलावट और जमावट और रचावट ऊपर तले इस जमघटे के साथ हो, उसका और कुछ फैलावा क्या कुछ होगा, यही ध्यान करलो।

जब कुँवर उदैभान को वे इस रूप से ब्याहने चढ़े और वह बाम्हन जो अंधेरी कोठरी में मुँदा हुआ था उस को भी साथ लेलिया और बहुत से हाथ जोड़े और कहा 'बाम्हन देवता हमारे कहने सुनने पर न जावो, तुम्हारी जो रीत चली हुई आई है बताते चलो।' एक उड़न-खटोले पर वह भी रीत बताने को साथ हो लिया। राजा इन्दर और महेन्दरगिर ऐरावत हाथी पर झूलते झालते देखते भालते चले जाते थे। राजा सूरजभान दूल्हा के घोड़े के साथ माला जपता हुआ पैदल था। इसी में एक सन्नाटा हुआ। सब घबरा गये। उस

सन्नाटे में जो वह ६० लाख अतीत थे सब जोगी से बने हुये सब मोतियों की लड़ियों की सेली गले में डाले हुये और गातियाँ उसी ढब की बाँधे हुये मिरिगछालों और बघम्बरों पर आ ठहर गये। लोगों के जियों में जितनी उमंग छा रही थी वह चौगुनी पचगुनी हो गई। सुखपालों और चंडोलों और रथों पर जितनी रानियां थीं महारानी लछमीवास के पीछे चली आतियां थीं, सब को गुदगुदियां सी होने लगीं। उसमें कहीं भरथरी का स्वाँग आया, कहीं जोगी जति आ खड़े हुये। कहीं-कहीं गोरख जागे कहीं मुच्छन्दर नाथ भागे। कहीं मच्छ कच्छ बराह सन्मुख हुए। कहीं परसुराम, कहीं बावन रूप, कहीं हरनाकुस और नरसिंह, कहीं राम लछमन सीता आए, कहीं रावन और लंका का बखेड़ा सारे का सारा सामने देखाई देने लगा। कहीं कन्हैया जी की जन्मअस्टमी होना और बसुदेव का गोकुल ले जाना और उनका बढ़ चलना, गाएँ चरानी और मुरली बजानी और गोपियों से धूम मचानी और राधिका-रहस और कुब्जा का बस कर लेना, कहीं करील की कुँजें, बंसीवट, चीरघाट, बृन्दावन, सेवाकुंज, बरसाने में रहना और कन्हैया से जो जो हुआ था सब का सब ज्यों का त्यों आँखों में आना और द्वारिका जाना और वहाँ सोने का घर बनाना इधर बिरिज को न आना और सोलह सौ गोपियों का तलमलाना सामने आ गया।

कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों राज की नदियों में थे, पक्के चांदी के थक्के से होकर लोगों को हक्का बक्का कर रहे थे।

निवाड़े, भौलिये, बजरे, लचके, मोरपंखी, स्याम सुन्दर, रामसुंदर और जितनी ढब की नावें थीं सुनहरी रुपहरी, सजी सजाई कसी कसाई सौ सौ लचके खातियाँ आतियाँ जातियाँ लहरातियाँ फिरतियाँ थीं। उन सभी पर खचाखच कंचनियाँ, राम-जनियाँ, डोमनियाँ भरी हुईं अपने अपने करतबों में नाचती गाती बजाती कूदती फाँदती धूमें मचातियाँ थीं। और कोई नाव ऐसी न थी जो सोने रूपे के पत्तरों में मढ़ी हुई और सवारी से डटी हुई न हो। और बहुत सी नावों पर हिंडोले भी उसी ढब के थे। उन पर गायनें बैठी झूलती हुई सोहनी, केदार, बागेसरी, कान्हड़ों में गा रहीं थीं। दल बादल ऐसे नेवाड़ों के सब झीलों में छा रहे थे।

इस धूमधाम के साथ कुँवर उदैभान सेहरा बाँध जब दुल्हन के घर तक आ पहुंचा और जो रीतें उनके घराने में चली आई थीं, होने लगियां।

उस घड़ी मदनवान को रानी केतकी के बादले का जूड़ा और भीना भीनापन और अँखड़ियों का लजाना और [illegible] बिखारा जाना भला लग गया तो रानी केतकी की बास सूँ[illegible] लगी और अपनी आँखों को ऐसा कर लिया जैसे कोई [illegible] लगता है। सिरे से लगीं पाँव तक वारी फेरी होके तलवे सुहला[illegible] लगी। तब रानी केतकी झट एक धीमी सी सिसकी लचके [illegible] साथ ले उठी। मदनवान बोली 'मेरे हाथ के ठोके से वही [illegible] का छाला दुख गया होगा जो हिरणों को ढूँढ़ने में पड़ गया था।

इसी दुख की चुटकी से रानी केतकी ने मसोस कर कहा 'काँटा अड़ा तो अड़ा, छाला पड़ा तो पड़ा पर निगोड़ी तू क्यों मेरी पनछाला हुई'।

दूल्हा उदैभान सिंहासन पर बैठा और इधर उधर राजा इन्दर और जोगी महेन्दर गिर जम गए और दूल्हा का बाप अपने बेटे के पीछे माला लिए कुछ गुनगुनाने लगा। और नाच लगा होने और अधर में जो उड़नखटोले राजा इन्दर के अखाड़े के थे सब उसी रूप से छत बाँधे हुए थिरका किए। दोनों महारानियाँ समधिन बन के आपस में मिलियाँ चलियाँ और देखने दाखने को कोठों पर चन्दन के किवाड़ों के आड़ तले आ बैठियाँ। सवाँग संगीत भँड़ताल रहस हँसी होने लगी। जितने राग और रागनियाँ थीं—ईमन कल्यान, शुद्ध कल्यान, झिंझोटी, कान्हड़ा, खम्माच, सोहनी, परज, बिहाग, सोरठ, कालंगड़ा, भैरवी, पटललित, भैरों रूप पकड़े हुए सचमुच के जैसे गाने वाले होते हैं उसी रूप में अपने समय पर गाने लगे और गाने लगियाँ। उस नाच का जो ताव भाव रचावट के साथ हो, किसका मुँह जो कह सके। जितने महाराजा जगतपरकास के सुख चैन के घर थे—माधो बिलास, रसधाम, कृष्णनिवास, लच्छीभवन, चन्द्रभवन सबके सब लप्पे से लपेटे और सच्चे मोतियों की झालरें अपनी अपनी गांठ में समेटे हुए एक फबन के साथ झूम रहे थे।

बीचोंबीच उन सब घरों के एक आरसी धाम बना था जिसकी छत और किवाड़ और आंगनमें आरसी छुट कहीं लकड़ी

इट पत्थर का पुट एक उँगली के पोर बराबर न लगी थी। चांदनी का जोड़ा पहने जब रात घड़ी एक रह गई थी तब रानी केतकी सी दूल्हन को उसी आरसीभवन में बैठाकर दूल्हा को बुला भेजा। कुँवर उदैभान कन्हैया सा बना हुआ सिर पर मुकट धरे सेहरा बाँधे उसी तड़ावे और जमघट के साथ चाँद सा मुखड़ा लिए जा पहुँचा, जिस जिस ढब से बाम्हन और पंडित कहते गये और जो जो महाराजों में रीतें होती चली आई थीं, उसी डौल से उसी रूप से भँवरी गठ जोड़ा हो लिया।

यह उड़नखटोले वालियां जो अधर में छत सी बांधे हुए थिरक रही थीं, भर भर झोलियाँ और मूठियां हीरे और मोतियों से निछावर करने के लिए उतर आइयाँ और उड़न खटोले अधर में ज्यों के त्यों छत बाँधे हुए खड़े रहे और वह दूल्हा दूल्हन पर से सात सात फेरे वारी फेरे होने में पिस गइयां। सभों को एक चुपकी सी लग गई। राजा इन्दर ने दुल्हन की मुँह दिखाई में एक हीरे का एक डाल छपरखट और एक पेड़ी पुखराज की दी और एक पारिजात का पौधा जिस में जो फल चाहो सो मिले दूल्हा दूल्हन के सामने लगा दिया। और एक कामधेनु गाय की पठिया बछिया भी उसके पीछे बांध दी और इक्कीस लौंडियाँ उन्हीं उड़नखटोले वालियों में से चुन के अच्छी से अच्छी सुथरी से सुथरी गाती बजातियां सीतियां पिरोतियां और सुघर से सुघर सौंपी और उन्हें कह दिया 'रानी केतकी छुट उन के दूल्हा से कुछ बातचीत न रखना, नहीं तो सब की सब पत्थर की मूरतें हो जावोगी और

अपना किया पावोगी।' और गोसाईं महेन्दरगिर ने बावन तोले पाव रत्ती जो सुनते हैं उस की इक्कीस चुटकी आगे रखी और कही "यह भी एक खेल है, जब चाहिए बहुत सा ताँबा गला के एक इतनी सी चुटकी छोड़ दीजो, कंचन हो जायगा" और जोगी जी ने सभों से यह कह दिया 'जो लोग उनके ब्याह में जागे हैं उन के घरों में चालीस दिन चालीस रात सोने की नदियों के रूप में मनी बरसे। जब तक जियें किसी बात को फिर न तरसें।' नौ लाख निन्नानवे गायें सोने रूपे की सिंगौरियों का जड़ाऊ गहन पहने हुए घुंघरू छमछमातियाँ महन्तों को दान हुईं। और सात बरस का पैसा सारे राज को छोड़ दिया गया। बाईस सौ हाथी और छत्तीस सौ ऊँट रुपये के तोड़े लादे हुये लुटा दिए। कोई उस भीड़ भाड़ में दोनों राज का रहने वाला ऐसा न रहा जिस को घोड़ा जोड़ा रुपयों का तोड़ा जड़ाऊ कपड़ों के जोड़े न मिले हों। और मदनबान छुट दूल्हा दूल्हन के पास किसी का हियाव न था जो बिन बुलाये चली जाय, बिन बुलाये दौड़ी आये तो वही आये और हँसाय तो वही हँसाये। रानी केतकी के छेड़ने के लिए उनके कुँवर उदैभान को कुँवर क्योड़ा जी कह के पुकारती थी और ऐसी बातों को सौ-सौ रूप से सँवारती थी।

सदल मिश्र

[सं० १८३०—१६०५]

ये बिहार के रहने वाले थे। ये लक्ष्मण मिश्र के पौत्र और वेदमणि के सुपुत्र थे। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। ये भी गिल क्राइस्ट साहिब की अध्यक्षता में फोर्ट विलियम कालेज में काम करते थे और उन्हीं की प्रेरणा से इन्होंने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। इसमें खड़ी बोली बोलचाल की भाषा प्रयुक्त की गई है और कहीं कहीं ब्रज तथा पूर्वी हिंदी के शब्द भी ए जाते हैं।

हर्पित् हो उसके तट पर जा विधि से स्नान सन्ध्या कर शिव की पूजा करने लगे और समाधि लगाई। सौ बरस दिन उनको वहां बीत गया। पीछे जब ध्यान छूटा तो तुरन्त कन्दमूल फूल फल कुश वो ईंधन ले पिता के पास पहुँचे। देखते ही क्रोध से लाल आँख कर बोले—

चौपाई

इतना दिन कहो कहां लगाए। तेरे कारण बहु दुख पाए॥
अग्निहोत्र यह यज्ञ हमारा। तुम बिन गया अकारथ सारा॥

पुत्र करते हैं सुख पाने को, नहीं तो निपुत्र होना अच्छा। अब ही से पिता माता को दुःख देने लगा न जाने आगे क्या करेगा। देखो अग्निहोत्र से ब्रह्मा आदि देवता और पितर सब सन्तुष्ट होते हैं, सो हम से कुछ हो सका नहीं।

पिता की बात सुनि नासिकेत बोले कि अग्निहोत्र कर्म्म केवल संसार के बन्धन के लिये है, मेरे जानने में तो योग समान दूसरी क्रिया मुक्तिदायक नहीं कि जिसको ब्रह्मा आदि देवता सब भी साधते रहते हैं।

उद्दालक बोले वेद पढ़ि अग्नि होत्र करके करोड़न्ह बरस सुरपुर में नाना भोगविलास करते हैं। योग से कहो क्या होता है ?

नासिकेत ने कहा वेद पढ़ि अग्निहोत्र करने से बार बार संसार में आते जाते हैं। योग साधने से इस देह से मुक्त हो आनन्द विहार करते हैं।

यह समाचार वैशम्पायन मुनि राजा जन्मेजय से कहते हैं

कि इस प्रकार पुत्र को बराबर उत्तरदायक जान उद्दालक ऋषि ने शाप दिया कि जाव, अब ही तुम यमलोक सिधारो। अब इहाँ तुम्हारे रहने से हम प्रसन्न नहीं। पहले तो वे डरावने शाप से लगे काँपने, फिर धीरज धर योग के बल से तुरन्त यम के निकट चल खड़े भये।

सुनते ही आस पास के मुनि सब हाय हाय करते दौड़ आए। सिर में जटा, अङ्ग में बभूत, केले के छिलके का लंगोट बांधे, मृग का चर्म ओढ़े, छोटा सा लड़का जान मीठी मीठी बात कहते देख कर बहुत पछताने लगे।

पाँव पकड़ कर महतारी रोने कलपने लगी। तब उद्दालक मुनि मोह से अकुला कर कहने लगे 'क्यों पुत्र ! हमको बिसराय चले जाते हो। हम समान कुटिल कठोर निर्दयी दूसरा कौन जगमें होगा जो तुमको शाप दे। क्यों कर पूत उस पुरी में जावोगे कि जहाँ राजा कहिये तो यम है, वो महाभयावनी वैतरनी नदी बहती है, बाट में कितने एक दूरतक सदा अग्नि ऐसी बरसती रहती है कि जहाँ पापी सब जा जा जलते हैं।

नासिकेत ने कहा 'पिता ! कुछ खेद मत करो, आपके प्रताप से यमराज के देश शीघ्र मैं चला आऊँगा। तुम से पिता की बात जो सदा सत्य होती आई है, सो मैं झुठाने नहीं सकता हूँ। देखिये सत्य ही से चन्द्रमा सूर्य नित्य भ्रमते हैं। सत्य ही स्वर्ग में है, नहीं तो बिना उसके नरक भोग होता है। इसलिये यम की पुरी को देखूँगा। पिता ! मन को आकुल मत करो। इतना कह माता

सहित पिता वो ऋषि को प्रणाम कर झट वहाँ से अन्तर्धान हो शिव का मन्त्र जपते वो ब्रह्मा का ध्यान करते चले, और बड़े सिद्ध थे इस कारण पल भर में वह यम की सभा में, कि जहाँ अत्री आदि अनेक ऋषि लोग अपनी अपनी पोथी खोल न्याय विचार यमराज से कहते थे, जा पहुँचे।

चौपाई

शिव स्वरूप अति सुन्दर बालक। निपट छोट देखत सुखदायक॥
जटा मुकट वो भस्म लगाये। जातहि सकल सभा [मन] भाए॥

तब सिर नवाय प्रणाम कहि हाथ जोर लगे धर्म्मराज की स्तुति करने।

वैशम्पायन मुनि राजा जन्मेजय से कहते हैं, सूर्य्य समान तेजस्वी नासिकेत मुनि को, जिनके जाने से सभा शोभने लगी, देखते ही धर्म्मराज हर्षित हो तुरन्त उठ खड़े भए, आदर मान कर निकट अपने आसन पर ऋषि को बैठाय वो प्यार से समाचार पूछने लगे।

चौपाई

बालहिपन में बड़ी सिधाई। कहो मुनीश कैसे यह पाई॥
धन्य पिता जिनके तुम भए। तुम्हें देख पातक सब गये॥
कारण कौन यहाँ तुम आए। बार बार मेरे गुण गाए॥
अमृति वाणी बहुत सुनाई। कहत सोहावनि अति सुखदायी॥

इतनी यम की बातें सुन नासिकेत ने कहा 'दीनदयाल! अपनी भूल कहाँ तक मैं आपको सुनाऊं। जब कुमति आ घेरती

है। बाप का वचन रखने के लिए ये महापुरुष यहाँ आए, जो कुछ कहते हैं सावधान होकर सुनिए।

किंकरों की यह बात सुनि चित्रगुप्त ने मुनि से पूछा कि महाराज! तुम्हारे दर्शन से निपट हम संतुष्ट भए, कहो क्या अभिलाष है, सो मैं पूरण करूँ।

नासिकेत बोले, ईश्वर ने अति उत्तम तुमको बनाया है, सब शास्त्र के ज्ञाता, धर्म अधर्म के विचार और तेज में देखते हैं कि यम के समान ही हो। और प्राणियों के सकल कर्म्म के जाननि-हार बार बार मैं तुमको प्रणाम करता हूँ। पुण्य पाप के कारण से सुख दुख के जो जो स्थान इस नगर में हैं सो देखने की मेरी इच्छा है। कृपानिधान! दया करके हमारे मनोरथ को पुरावो।

वैशम्पायन कहते हैं इस प्रकार से विनती किए पर चित्रगुप्त की आज्ञा ले दूतों ने नासिकेत को ले जा स्वर्ग नरक, जहां पुण्य पाप के फल पावते हैं, दिखा सुन, प्रसन्न कर फिर चित्रगुप्त को कहते हुए धर्मराज के पास ले आय खड़ा कर दिया।

महा तेजस्वी व समर्थ जान उनके आवते ही वे उठ खड़े भए और आसन दे बैठाय प्रीति कर पूछने लगे कि कहो नासिकेत ऋषि! चित्रगुप्त समेत सारे पुर व नाना भाँति के लोग जो अपने अपने कर्म्म का फल भोगते हैं, देख आए? श्रद्धा पूरी भई?

ये बोले 'महाराज! तुम्हारे प्रसाद से सब स्थान से मैं हो

आया। अब माता पिता हमारे शोक से कलपते होंगे, आज्ञा करो तो उनका दर्शन करूँ।

तब इतना वचन सुनि धर्म्मराज निपट हर्षित भए, वो यह वर दे उनको अपने यहाँ से विदा किया कि आज से तुम अपने योग के बल से सब दुःख से छूट और मृत्यु को जीत युवा स्वरूप हो सदा आनन्द विहार में मगन रहो। और जो तुम्हारे कुल में होगा सो हमारा कबहीं न मुँह देखेगा।

इस प्रकार से यह वर पाय नासिकेत मुनि मन के समान वेग से चले, सो पल भर में जहां माता पिता मारे मोह से दुबरा कर मरने योग्य हो रहे थे, वहाँ अचानक जा पहुंचे। वो जाते ही दोनों की प्रदक्षिणा की, वो चरण छू प्रणाम कर सन्मुख जा बैठे।

[पत्नी] सहित उद्दालक ऋषि पुत्र को कुशल से देख बहुत हर्षित भये, वो तुरन्त गोदी में बैठा अति आनन्द से रो रो बार-बार मुँह चूमने लगे और कहने लगे कि नासिकेत! आज हमारा जन्म सारथ हुआ। हम समान क्रोधी दुराचारी पापी संसार में कौन होगा जो बिना अपराध शाप दे तुमको संकट में टाला। धन्य हो पुत्र कि इसी देह से यम की पुरी को देख ज्यों के त्यों फिर चले आए। जग में एक से एक सिद्ध हुए और हैं, पर मैं जानता हूँ कि तुम्हारे गुण वो तेज को कोई दशांश भी नहीं पा सकता है। कहो कैसे धर्म्मराज का लोक व नगर है? कैसा यम का रूप, किस प्रकार की बाट कि जिस से इतना शीघ्र

गये वो आये ? क्या खाने पीने को पाया ? किस रीति से बात-चीत की ? और जो कुछ अचरज देखा सुना हो सो हम से कहो कि सन्देह मिटे, वो जो करने को होय सो मैं करूँ।

नासिकेत बोले, पिता ! आप के पुण्य प्रताप से यम के मन्दिर हम गये। सब के संहारकर निहार दूत सहित धमराज, पुण्य पाप के लिखने वाले चित्रगुप्त और भाँति भाँति के देवता अनगणित मैंने देखे। बड़ी स्तुति से रिझा कर यम से यह वर पाया कि इसी देह से जाओ, अब तुम्हारा जन्म मरण न होवेगा और युवा वयस सब दिन सुख में भरे पुरे रहोगे।

वैशम्पायन कहते हैं, इतने में नासिकेत धर्म्मराज के पुर से हो आया, यह सुन ऋषि लोग बहुत चकित हो अपने अपने आश्रम में जिस भांति से तप करते थे, उसी प्रकार से यमलोक के समाचार पूछने के लिये चल खड़े भये। कितने एक तो नीचे माथे ऊपर पाँव किये और कितने एक ही चरण से खड़े, कोई एक ही हाथ उठाये, किसी को देखो तो मौन ही व्रत किये, कोई सूखे पत्ते ही खा, कोई निराहरी हूये, बहुतेरे संसार सागर पार होने को योग ही में मगन दिगम्बर वेष बनाये, कठिन से कठिन तपस्या में मन लगाये, जहाँ पिता के समीप नासिकेत बैठे थे वहां आन पहुँचे।

देखते ही वे हर्षित हो उठ खड़े भये वो प्रणाम कर मिल भेट, कुशल क्षेम पूछ, आसन दे एक-एक को अलग-अलग बैठा

पाँव धुला, आचमन करा, अक्षत चन्दन फूल ले सबों को पूजने लगे ।

तब समय जान ऋषि लोग बोल उठे कि नासिकेत ! हम तुम से अति प्रसन्न भये । शिष्टाचार तो जैसा कुछ चाहिये वैसा हो चुका वो होता रहेगा, अब यमलोक की बात सुनाओ । कैसी वह पुरी है कि जहाँ सदा आप धर्म्मराज विराजते रहते हैं ? कैसे यम के दूत हैं ? क्या वहां की रीति रहन ज्ञान तपस्या वो कैसी वहां वैतरणी नदी है ? और यहाँ जो करते सो वहाँ कैसे भोगते हैं ? किस करम के फेर से यम के कोप में जा पड़ते हैं ? कैसा उनका दण्ड व कैसे चित्रगुप्त हैं जो प्राणियों के धर्म्म अधर्म्म लिख धर्म्मराज को जानते हैं ? पास में उनके कौन कौन मुनि लोग रहते हैं ? सो सब कृपा कर कहो कि जिस से अति सन्तुष्ट हो तुम्हारे गुण को गावें ।

उनकी इतनी बात सुन बीच में बैठे नासिकेत मुनि कहने लगे कि जितने तुम साधु सन्त हो सो अब सावधान हो सुनो । ऐसी आश्चर्य यह कथा है कि जिस के श्रवन से रोमञ्च होते हैं ।

(नासिकेतोपाख्यान से)

शिव प्रसाद

[सं० १८८०—१९५२]

आपके पिता का नाम बाबू गोपीचद था। आप उर्दू फारसी, हिंदी तथा संस्कृत के अच्छे विद्वान थे और अंग्रेजी की भी अच्छी जानकारी रखते थे आप भरतपुर दरबार में नौकर थे सन् १९१३ में आप शिक्षा-विभग में इन्सपेक्टर के पद पर नियुक्त हुए। परन्तु मुसलमानों के प्रभुत्व के कारण राजा साहब कुछ चौंके से रहते थे। उर्दू के पक्षपाती कहीं नाराज न हो जायें, इस डर से राजा साहब ने अपनी शैली में उर्दू शब्दों तथा उर्दू मुहाविरों का जी खोल प्रयोग किया, जिससे उनकी भाषा बहुत अधिक उर्दू मय हो गई।

आप की कृतियां ये हैं:—

(१ इतिहास तिमिर-नाशक, (२) मानव-धर्म-सार, (६, भाषा का इतिहास।

उन दिनों हिंदी में पाठ्य-पुस्तकों का अभाव था, इसलिए इसे दूर करने के लिए आपने ३५ पुस्तकें स्वयं लिखीं। और दूसरों से भी लिखवाई। आप ही के सदुद्योग से उर्दूदानों का विरोध होते भी हिंदी को शिक्षा विभाग में स्थान मिला।

आपने भिन्न भिन्न पुस्तकों में तीन विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया:—

(१) राजा साहब का ध्यान पहले ठेठ हिंदी की ओर था। वे पहले एक प्रकार से शुद्धिवादी ही थे। मानव-धर्म-सार की संस्कृतपूर्ण उच्च श्रेणी की हिंदी इस बात का प्रमाण है। इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है।

(२) पाठ्य पुस्तकों की भाषा ठेठ हिंदी का आश्रय लिए हुए है, जिसमें कहीं कहीं अरबी-फारसी के चलते शब्द तथा चुस्त मुहाविरे भी पाये जाते हैं। परन्तु अरबी फारसी का पुट भाषा में सजीवता पैदा करने के लिए लाया जाता है।

(३) उन्होंने हिंदी में एक पत्र 'बनारस-अखबार' निकाला, किन्तु उसकी भाषा इतनी क्लिष्ट उर्दू थी कि जिसे हिंदी कहते हुए संकोच होता है। इसमें प्राय: संस्कृत अरबी फारसी के शब्द एक ही पंक्ति में मिलाकर बिठाये हुए देखने में आते हैं। इस प्रकार राजा साहब ने नागरी अक्षरों में उर्दू-भाषा को प्रचारित किया।

यद्यपि उनके गद्य में फारसीपन आवश्यकता से अधिक भर गया है तो भी उनकी भाषा में एक विशेष प्रकार का लालित्य है। उनका गद्य चमत्कार-पूर्ण था। 'लेवे' आदि पंडिताऊ रूप भी कई स्थानों पर पाये जाते हैं। विराम-चिह्नों का अभाव था।

———

राजा भोज का सपना

[निर्माण काल—विक्रमी बीसवीं शताब्दी का आरम्भ]

वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी महाराजा भोज का नाम न सुना हो। उसकी महिमा और कीर्त्ति तो सारे जगत् में व्याप रही है। बड़े बड़े महीपाल उसका नाम सुनते ही काँप उठते और बड़े बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवाते, सेना उसकी समुद्र की तरंगों का नमूना और खजाना उसका सोने चाँदी और रत्नों की खान से भी दूना। उसके दान ने राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया और उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया। कोई उसके राज्य भर में भूखा न होता और न कोई उघाड़ा रहने पाता। जो सत्तू माँगने आता उसे मोतीचूर मिलता और गजी चाहता उसे मलमल दी जाती। पैसे की जगह लोगों को अशर्फियाँ बाँटता और मेह की तरह भिखारियों पर मोती बरसाता एक एक श्लोक के लिये लाखों देता और ब्राह्मणों को षट्रस भोजन कराके तब आप खाने को बैठता, तीर्थ-यात्रा स्थान, दान और व्रत-उपवास में सदा तत्पर रहता। उसने बड़े बड़े चांद्रायण किये थे और बड़े बड़े जंगल पहाड़ छान डाले थे।

एक दिन शरद् ऋतु में सन्ध्या के समय फुलवाड़ी के बीच स्वच्छ पानी के कुण्ड के तीर जिसमें कुमुद और कमलों के बीच जलपक्षी किलोलें कर रहे थे, रत्नजटित सिंहासन पर कोमल तकिये के सहारे स्वस्थचित्त बैठा हुआ वह महलों की सुनहरी कलसियाँ लगी हुई संगमरमर की गुमजियों के पीछे से उदय होतता हुआ पूर्णिमा का चन्द्रमा देख रहा था और निर्जन एकान्त होने के कारण मन ही मन में सोचता था कि अहो! मैंने अपने

आपने भिन्न भिन्न पुस्तकों में तीन विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया:—

(१) राजा साहब का ध्यान पहले ठेठ हिंदी की ओर था। वे पहले एक प्रकार से शुद्धिवादी ही थे। मानव-धर्म-सार की संस्कृतपूर्ण उच्च श्रेणी की हिंदी इस बात का प्रमाण है। इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है।

(२) पाठ्य पुस्तकों की भाषा ठेठ हिंदी का आश्रय लिए हुए है, जिसमें कहीं कहीं अरबी-फारसी के चलते शब्द तथा चुस्त मुहाविरे भी पाये जाते हैं। परन्तु अरबी फारसी का पुट भाषा में सजीवता पैदा करने के लिए लाया जाता है।

(३) उन्होंने हिंदी में एक पत्र 'बनारस-अखबार' निकाला, किन्तु उसकी भाशा इतनी क्लिष्ट उर्दू थी कि जिसे हिंदी कहते हुए संकोच होता है। इसमें प्राय: संस्कृत अरबी फारसी के शब्द एक ही पंक्ति में मिलाकर बिठाये हुए देखने में आते हैं। इस प्रकार राजा साहब ने नागरी अक्षरों में उर्दू-भाषा को प्रचारित किया।

यद्यपि उनके गद्य में फारसीपन आवश्यकता से अधिक भर गया है तो भी उनकी भाषा में एक विशेष प्रकार का लालित्य है। उनका गद्य चमत्कार-पूर्ण था। 'लेवे' आदि पंडिताऊ रूप भी कई स्थानों पर पाये जाते हैं। विराम-चिह्नों का अभाव थ।

राजा भोज का सपना

[निर्माण काल—विक्रमी बीसवीं शताब्दी का आरम्भ]

वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी महाराजा भोज का नाम न सुना हो। उसकी महिमा और कीर्त्ति तो सारे जगत् में व्याप रही है। बड़े बड़े महीपाल उसका नाम सुनते ही काँप उठते और बड़े बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवाते, सेना उसकी समुद्र की तरंगों का नमूना और खजाना उसका सोने चाँदी और रत्नों की खान से भी दूना। उसके दान ने राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया और उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया। कोई उसके राज्य भर में भूखा न होता और न कोई उघाड़ा रहने पाता। जो सत्तू माँगने आता उसे मोतीचूर मिलता और गजी चाहता उसे मलमल दी जाती। पैसे की जगह लोगों को अशर्फियाँ बाँटता और मेह की तरह भिखारियों पर मोती बरसाता एक एक श्लोक के लिये लाखों देता और ब्राह्मणों को पट्रस भोजन कराके तब आप खाने को बैठता, तीर्थ-यात्रा स्थान, दान और व्रत-उपवास में सदा तत्पर रहता। उसने बड़े बड़े चांद्रायण किये थे और बड़े बड़े जंगल पहाड़ छान डाले थे।

एक दिन शरद् ऋतु में सन्ध्या के समय फुलवाड़ी के बीच स्वच्छ पानी के कुण्ड के तीर जिसमें कुमुद और कमलों के बीच जलपक्षी किलोलें कर रहे थे, रत्नजटित सिंहासन पर कोमल तकिये के सहारे स्वस्थचित्त बैठा हुआ वह महलों की सुनहरी कलसियाँ लगी हुई संगमरमर की गुमजियों के पीछे से उदय होतता हुआ पूर्णिमा का चन्द्रमा देख रहा था और निर्जन एकान्त होने के कारण मन ही मन में सोचता था कि अहो! मैंने अपने

कुल को ऐसा प्रकाश किया जैसे सुर्य से इन कमलों का विकास होता है। क्या मनुष्य और क्या जीव जन्तु मैंने अपना सारा जन्म इन्हीं का भला करने में गँवाया और व्रत उपवास करते करते फूल से शरीर को काँटा बनाया। जितना मैंने दान किया उतना तो कभी किसी के ध्यान में भी न आया होगा। जो मैं ही नहीं तो फिर और कौन हो सकता है ? मुझे अपने ईश्वर पर दावा है, वह अवश्य मुझे अच्छी गति देगा। ऐसा कब हो सकता है कि मुझे कुछ दोष लगे ?

इसी अर्से में चोबदार ने पुकारा—'चौधरी इन्द्रदत्त निगाह रूबरू।" श्री माहाराज सलामत भोज ने आँख उठाई, दीवान ने साष्टाँग दण्डवत् की, फिर सम्मुख जा हाथ जोड़ यों निवेदन किया—"पृथ्वीनाथ, सड़क पर वे कुएँ जिनके वास्ते आपने हुक्म दिया था बन कर तैयार हो गये। जो पानी पीता है, आप को असीस देता और जो उन पेड़ों की छाया में विश्राम करता है आपकी बढ़ती दौलत मानता है।" राजा अति प्रसन्न हुआ और बोला कि, 'सुन, मेरी अमलदारी भर में जहाँ सड़कें हैं, कोस कोस पर कुँए खोदवा के सदाव्रत बैठा दे और दुतरफा पेड़ भी जल्द लगवा दे।" इसी अर्से में दानाध्यक्ष ने आकर आशीर्वाद दिया और निवेदन किया "धर्मावतार! वह जो पाँच हजार ब्राह्मण हर साल जाड़े में रजाई पाते हैं सो डेवढ़ी पर हाजिर हैं।" राजा ने कहा —"अब पाँच के बदले पचास हजार को मिला करे और रजाई की जगह शाल दुशाले दिये जावें।" दानाध्यक्ष दुशालों के लाने के वास्ते तोशेखाने में गया। इमारत के दरोगा

ने आकर मुजरा किया और खबर दी कि 'महाराज ! इस बड़े मन्दिर की, जिसके जल्द बना देने वास्ते सरकार से हुक्म हुआ है, आज नींव खुद गई, पत्थर गड़े जाते हैं और लुहार लोहा भी तैयार कर रहे हैं।' महाराज ने तिंवरियां बदल कर उस दरोगा को खूब घुड़का "अरे मूर्ख, वहां पत्थर और लोहे का क्या काम है ? बिल्कुल मन्दिर संगमरमर और संगमूसा से बनवाया जावे और लोहे के बदले उसमें सब जगह सोना काम में आवे जिस में भगवान भी उसे देख कर प्रसन्न हो जावें और मेरा नाम इस संसार अतुल कीर्ति पावे।

यह सुन सारा दरबार पुकार उठा कि "धन्य महाराज ! क्या न हो ? जब ऐसे हो तब तो ऐसे हो ! आपने इस कलिकाल को सतयुग बना दिया, मानो धर्म का उद्धार करने को इस जगत में अवतार लिया है। आज आप से बढ़कर और दूसरा कौन ईश्वर का प्यारा है ? हमने तो पहले ही से आप को साक्षात धर्मराज विचारा है।" व्यास जी ने कथा आरम्भ की, भजन कीर्तन होने लगा। चांद सिर पर चढ़ आया। घड़ियाली ने निवेदन किया कि, महाराज ! आधी रात के निकट है।" राजा की आंखों में नींद आ रही थी, व्यास कथा करते थे, पर राजा की आंखों में ऊंघ आती थी, वह उठ कर रनवास में गया।

जड़ाऊ पलंग और फूलों की सेज पर सोया। रानियां पैर दबाने लगीं। राजा की आंख झप गई तो स्वप्न में क्या देखता है कि वह बड़ा संगमरमर का मंदिर बनकर बिल्कुल तैयार हो गया, जहां कहीं उस पर बेलबूटे का काम किया है, वहां उसने

बारीकी और सफाई में हाथीदांत को भी मात कर दिया है, जहां कहीं पच्चीकारी का हुनर दिखलाया है, वहां जवाहिरों को पत्थर में जड़ कर तस्वीर का नमूना बना दिया है। कहीं लालों के गुल्लालों पर नीलम की बुलबुलें बैठी हैं और आम की जगह हीरों के लोलक लटकाये हैं, कहीं पुखराजों की डन्डियों के पन्ने के पत्ते निकल कर मोतियों के भुट्टे लगाये हैं। सोने के चोबों पर शामियाने और उनके नीचे बिल्लौर के हौजों में गुलाब और केवड़े के फुहारे छूट रहे हैं। मानों धूप जल रहा है सैंकड़ों कपूर के दीपक बल रहे हैं। राजा देखते ही मारे घमन्ड के फूलकर मशक बन गया। कभी नीचे कभी ऊपर, कभी दाहिने कभी बायें निगाह करता और मन में सोचता कि अब इतने पर भी मुझे कोई स्वर्ग में घुसने से रोकेगा या पवित्र पुण्यात्मा न कहेगा ? मुझे अपने कर्मों का भरोसा है, दूसरे किसी से क्या काम पड़ेगा ?

इसी अर्से में वह राजा उस सपने के मन्दिर में खड़ा खड़ा क्या देखता है कि एक ज्योति सी उसके सामने आसमान से उतरी चली आती है। उसका प्रकाश तो हजारों सूर्य से भी अधिक है, परन्तु जैसे सूर्य को बादल घेर लेता है उस प्रकार उसने मुंह पर घूंघट सा डाल लिया है नहीं तो राजा की आँखें कब उस पर ठहर सकती थीं, इस घूँघट पर भी वे मारे चकाचौंध के झपकी चली जाती थीं; राजा उसे देखते ही कांप उठा और लड़खड़ाती सी ज़बान से बोला कि, "हे महाराज ! आप कौन हैं, और मेरे पास किस प्रयोजन से आये हैं ?" उस पुरुषने

बादल की गरजना गंभीर उत्तर दिया कि "मैं सत्य हूं, अंधों की आँखें खोलता हूं, मैं उनके आगे से धोखे की टट्टी हटाता हूं, मैं मृगतृष्णा के भटके हुओं का भ्रम मिटाता हूं और सपने के भूले हुओं को नींद से जगाता हूं। हे भोज! अगर कुछ हिम्मत रखता है तो आ हमारे साथ आ और हमारे तेज के प्रभाव से मनुष्यों के मन के मन्दिरों का भेद ले, इस समय हम तेरे ही मन को जाँच रहे हैं।" राजा के जी पर एक अजब दहशत सी छा गई। नीचे निगाह करके वह गर्दन खुजाने लगा। सत्य बोला, "भोज! तू डरता है. तुझे अपने मन का हाल जानने में भी भय लगता है?" भोज ने कहा, "नहीं, इस बात से तो नहीं डरता, क्योंकि जिसने अपने ताईं नहीं जाना, उसने फिर क्या जाना? सिवाय इसके मैं तो आप चाहता हूं कि कोई मेरे मन की थाह लेवे और अच्छी तरह से जाँचे। मारे व्रत और उपवासों के मैंने अपना फूल सा शरीर काँटा बनाया, ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देते देते सारा खजाना खाली कर डाला, कोई तीर्थ बाक़ी न रखा, कोई नदी या तालाब नहाने से न छोड़ा, ऐसा कोई आदमी नहीं कि जिस की निगाहमें मैं पवित्र पुण्यात्मा न ठहरूँ।" सत्य बोला, 'ठीक, पर भोज! यह तो बतला कि तू ईश्वर की निगाह में क्या है? क्या हवा में विना धूप त्रसरेणु कभी दिखलाई देते हैं? पर सूर्य की किरण पड़ते ही कैसे अनगिनत चमकने लग जाते हैं! क्या कपड़े से छाने हुए मैले पानी में किसी को कीड़े मालूम पड़ते हैं? पर जब खुर्दबीन शीशे को लगा कर देखो तो एक एक घूट में हजारों ही जीव सूझने लग जाते हैं।

जो तू उस बात के जानने से, जिसे अवश्य जानना चाहिए, डरता नहीं तो आ, मैं तेरी आँखें खोलूँगा।"

निदान सत्य यह कह राजा को उस बड़े मन्दिर के ऊँचे दरवाज़े पर चढ़ा ले गया जहाँ से सारा बाग दिखलाई देता था और फिर वह उससे कहने लगा कि 'भोज! मैं अभी तेरे पाप कर्मों की कुछ भी चर्चा नहीं करता। क्योंकि तूने अपने तईं निरा निष्पाप समझ रखा है, पर यह तो बतला कि तूने पुण्यकर्म कौन कौन से किये हैं कि जिन से सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर संतुष्ट होगा।" राजा यह सुन के अत्यन्त प्रसन्न हुआ। यह तो मानों उसके मन की बात थी। पुण्य कर्म के नाम ने उस चित्त को कमल सा खिला दिया। उसे निश्चय था कि पाप तो मैंने चाहे किया हो चाहे न किया हो पर पुण्य मैंने इतना किया है कि भारी से भारी पाप भी उसके पासंग में न ठहरेगा। राजा को वहीं उस समय सपने में तीन पेड़ बड़े ऊँचे अपनी आँख के सामने दिखाई दिये। फलों से वे इतने लदे हुए थे कि मारे बोझ के उनकी टहनियाँ धरती तक झुक गई थीं। राजा उन्हें देखते ही हरा हो गया और बोला कि "सत्य, यह ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया, अर्थात ईश्वर और मनुष्य दोनों की प्रीति के पेड़ हैं, देख फलों के बोझ से यह धरती पर नये हैं। यह तीनों मेरे ही लगाये हैं। पहले में तो ये सब लाल लाल फल मेरे दान से लगे हैं और दूसरे में ये पीले पीले मेरे न्याय से और तीसरे में ये सब सफेद फल मेरे तप का प्रभाव दिखाते हैं।" मानों उस समय वह ध्वनि चारों ओर से राजा के कानों में चली जाती थी

कि "धन्य हो ! आज तुम सा पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं, तुम साक्षात् धर्म के अवतार हो, इस लोक में भी तुमने बड़ा पद पाया है और उस लोक में भी इससे अधिक मिलेगा, तुम मनुष्य और ईश्वर दोनों की आँखों में निर्दोष और निष्पाप हो। सूर्य के मण्डल में लोग कलंक बतलाते हैं पर तुम पर एक छींटा भी नहीं लगाते।"

सत्य बोला कि "भोज, जब मैं इन पेड़ों के पास था, जिन्हें तू ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया बतलाता है, तब तो इनमें फल फूल कुछ भी नहीं थे, निरे ठूँठ से खड़े थे। ये लाल, पीले और सफेद फल कहाँ से आ गए ? ये सचमुच उन पेड़ों में फल लगे हैं या तुझे फुसलाने और वस करने को किसी ने उनकी टहनियों से लटका दिये हैं ? चल, उन पेड़ों के पास चल कर देखें तो सही। मेरी समझ में तो यह लाल लाल फल, जिन्हें तू अपने दान के प्रभाव से लगे बतलाता है, यश और कीर्ति फैलाने की चाह अर्थात् पाने की इच्छा ने इस पेड़ में लगाए हैं।" निदान ज्यांही सत्य ने उस पेड़ के छूने को हाथ बढ़ाया राजा सपने में क्या देखता है कि वह सारे फल जैसे आसमान से ओले गिरते हैं एक आन की आन में धरती पर गिर पड़े। धरती सारी लाल हो गई, पेड़ों पर सिवाय पत्तों के और कुछ न रहा। सत्य ने कहा कि "राजा ! जैसे कोई चीज को मोम से चिपकाता है उसी तरह तू ने अपने भुलाने को प्रशंसा की इच्छा से ये फल इस पेड़ पर लगा लिए थे; सत्य के तेज से यह मोम गल गया, पेड़ ठूँठ का ठूँठ रह गया जो तूने दिया और किया सब दुनिया के

दिखलाने और मनुष्यों से प्रशंसा पाने के लिए। केवल
भक्ति और जीवों की दया से तो कुछ भी नहीं दिया i र
दिया हो या किया हो तो तू ही क्यों नहीं बतलाता ? मूर्ख
के भरोसे पर तू फूला हुआ स्वर्ग में जाने को तैयार हुआ
भोज ने एक ठण्डी साँस ली। उसने तो औरों को भूला र
था, पर वह सब से अधिक भूला हुआ निकला ! सत्य ने उस
की तरफ हाथ बढ़ाया जो सोने की तरह चमकते हुए
पीले फलों से लदा हुआ था। सत्य बोला. "राजा, ये फल तू
अपने भुनाने का, स्वर्ग की स्वार्थ सिद्धि करने की इच्छा से ल
लिये थे। कहने वाले ने ठीक कहा है कि मनुष्य के कर्मों से
उसके मन की भावना का विचार करता है और ईश्वर मनुष्य के
मन की भावना के अनुसार उसके कर्मों का हिसाब लेता है।
तू अच्छी तरह जानता है कि य ी न्याय तेरे राज्य की जड़ है।
जो न्याय न करे तो फिर यह राज्य तेरे हाथमें क्यों कर रह सके ?
जिस राज्य में न्याय नहीं वह तो बेनींव का घर है, बुढ़िया के
दाँन्तों की तरह हिलता है, अब गिरा तब गिरा। मूर्ख, तू ही क्यों
नहीं बतलाता कि यह तेरा न्याय स्वार्थसिद्धि करने और
संसारिक सुख पाने को इच्छा से है, अथवा ईश्वर की भक्ति और
जीवों की दया से ?"

भोज की पेशानी पर पसीना हो आया, उसने आँखें नीचे
कर लीं, उससे जवाब कुछ न बन पड़ा। तीसरे पेड़ की बारी
आई। सत्य का हाथ लगते ही उसकी भी वही हालत हुई। राजा
अत्यन्त लज्जित हुआ। सत्य ने कहा—"मूर्ख ! यह तेरे तप के

कदापि नहीं, इनको तो इस पेड़ पर तेरे अहङ्कार ने लगा रखा था। वह कौनसा व्रत व तीर्थयात्रा है जो तूने निरहङ्कार केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से की हो? तूने यह तप केवल इसी वास्ते किया कि जिसमें तू अपने तईं औरों से अच्छा और बढ़ कर बिचारे। ऐसे ही तप पर गोबर-गनेस, तू स्वर्ग मिलने की उम्मेद रखता है?

पर यह तो बतला कि मन्दिर की उन मुंडेरों पर वे पक्षी से क्या दिखलाई देते हैं? कैसे सुन्दर और प्यारे मालूम होते हैं! पर तो उनके पन्ने के हैं और गरदनें फीरोज की, परन्तु पूँछ में तो सारे प्रकार के जवाहिर जड़ दिये हैं" राजा के जी में घमंड की चिड़िया ने फिर फुरी फुरी ली, मानो बुझते हुए दीये की तरह जगमगा उठा, जल्दी से उत्तर दिया कि हे 'सत्य, यह जो कुछ तू मन्दिर की मुंडेरों पर देखता है मेरे सन्ध्या-वन्दन का प्रभाव है। मैंने जो रातों जाग जाग कर और माथा रगड़ते २ इस मन्दिर की देहलीज को घिसाकर ईश्वर की स्तुति वन्दना और बिनती प्रार्थना की वही अब चिड़ियों की तरह पंख फैलाकर आकाश को जाती हैं, मानों ईश्वर के सामने पहुँच कर अब मुझे स्वर्ग का रास्ता बताती हैं।" सत्य ने कहा कि "राजा, दीनबन्धु, करुणासागर, श्रीजगन्नाथ जगदीश्वर अपने भक्तों की विनती सदा सुनता रहता है, और जो मनुष्य शुद्ध हृदय और निष्कपट होकर नम्रता और श्रद्धा के साथ अपने दुष्कर्मों का पश्चात्ताप अथवा उनकी क्षमा होने का टुक भी निवेदन करता है, वह उसका निवेदन तत्काल सूर्य चाँद का

बैठ कर पार हो जाता है। फिर क्या कारण कि यह सब अब तक मन्दिर की मुंडेर ही पर बैठे रहे ? आ चल देख तो सही, हम लोगों के पास जाने पर आकाश को उड़ जाते हैं या उसी जगह पर परकटे कबूतरों की नाईं फड़फड़ाया करते हैं।" भोज डरा, लेकिन सत्य का साथ न छोड़ा। जब मुंडे पर पहुंचा तो क्या देखता है कि वह सारे पक्षी जो दूर से ऐसे सुन्दर दिखलाई देते थे मरे हुए पड़े हैं। पंख नुचे खुचे और बहुतेरे सर्वथा सड़े हुए यहाँ तक कि मारे दुर्गन्ध के राजा का सिर भिन्ना उठा। दो एक ने जिनमें कुछ दम अवशिष्ट था जो उड़ने का इरादा भी किया तो उनका पंख पारे की तरह भारी हो गया और उन्हें उसी ठौर दबा रखा। सत्य बोला "भोज बस यही तेरे पुण्य कर्म्म हैं ? इन्हीं स्तुति वन्दना और विनती प्रार्थना के भरोसे पर स्वर्ग में जाया चाहता है ? आकृति तो इनकी बहुत अच्छी है पर जान बिलकुल नहीं। तूने जो कुछ किया केवल लोगों के दिखलाने को, जी से कुछ भी नहीं। जो तू एक बार भी जी से पुकारा होता कि—दीनबन्धु, दीनानाथ, दीनहितकारी, मुझ पाप महा अपराधी डूबते हुए को बचा और कृपादृष्टि कर—तो वह तेरी पुकार तीर की तरह तारों के पार पहुँची होती।" राजा ने सिर नीचा कर लिया उत्तर कुछ न मन आया।

सत्य ने कहा कि "भोज अब आ, फिर इस मन्दिर के अन्दर चलें और वहां तेरे मन के मन्दिर को जांचें। यद्यपि मनुष्य के मन के मन्दिर में ऐसे २ अंधेरे तहखाने और तहघरे पड़े हुए हैं कि उनको सिवाय सर्वदर्शी, घट २ अन्तर्यामी, सकल जगत्

स्वामी के और कोई भी नहीं देख अथवा जांच सकता तो भी तेरा परिश्रम व्यर्थ न जावेगा।" राजा उस सत्य के पीछे खिचा २ फिर मन्दिर के अन्दर घुसा पर अब तो उसका हाल ही कुछ से कुछ हो गया। सचमुच सपने का खेल सा दिखलाई दिया। चांदी की सारी चमक जाती रही. सोने की दमक बिल्कुल उड़ गई, दोनों में लोहे की तरह मोर्चा लगा हुआ था, जहां जहां से मुलम्मा उड़ गया था भीतर का ईंट पत्थर कैसा बुरा दिखलाई देता था! जवाहिरों की जगह केवल काले २ दाग रह गये थे और संगमरमर की चट्टानों में हाथ २ भर गहरे गढ़े पड़ गये थे।

राजा यह देख कर भौचक सा रह गया, औसान जाते रहे, हक्का बक्का बन गया, धीमी आवाज से पूछा कि "यह टिड्डीदल की तरह इतने दाग इस मन्दिर में कहां से आये? जिधर मैं निगाह उठाता हूं सिवाय काले काले दागों के और कुछ भी नहीं दिखलाई देता। ऐसा तो छिपी छीट को भी नहीं छापेगा और न शीतला से बिगड़ा किसी का चेहरा देख पड़ेगा। सत्य बोला कि 'राजा, ये दाग जो तुझे इस मन्दिर में दिखलाई देते हैं, वे दुर्वचन हैं जो दिन रात में सैंकड़ों बार तेरे मुख से निकले। याद तो कर तूने क्रोध में आकर कैसी कड़ी कड़ी बातें लोगों को सुनाई हैं? क्या खेल में और क्या अपना अथवा दूसरे का चित्त प्रसन्न करने को, क्या रुपया बचाने अथवा अधिक लाभ पाने को, और क्या दूसरे का देश अपने हाथ में लाने अथवा किसी बराबर वाले से अपना मतलब निकालने और

दुश्मनों को नीचा दिखाने को, कितना झूठ बोला है। अपने दोष छिपाने और दूसरों की आंखों में अच्छा मालूम होने अथवा झूठी प्रशंसा पाने के लिए कैसी २ डींगें मारी हैं और किस किस प्रकार की अत्युक्तियां बघारी हैं! अपने को औरों से अच्छा और औरों को अपने से बुरा दिखलाने को कहां तक बातें बनाई हैं। सो तुझे अब कुछ भी याद न रहा। सर्वथा एक बारगी भूल गया। पर वहां वह तेरे मुंह से निकलते ही बही में दर्ज हुआ। तू इन दागों को गिनने में असमर्थ है, पर उस घटघटनिवासी, अनन्त अविनाशी को एक बात जो तेरे मुंह से निकली है याद है और याद रहेगी। उसके निकट भूत और भविष्य दोनों वर्तमान हैं"। भोज ने सिर न उठाया पर दबी जबान से इतना मुंह से और निकला कि 'दाग तो दाग पर हाथ हाथ भर के गढ़े क्योंकर पड़ गए? सोने चांदी में मोर्चा लगा कर ईंट पत्थर कहां से दिखलाई देने लगे?" सत्य ने कहा कि "राजा, क्या तूने कभी किसी को कोई लगती हुई बात नहीं कही? अथवा बोली ठोली नहीं मारी? अरे नादान वह बोली ठोली तो गोली से भी अधिक काम कर जाती है। तू तो इन गढ़ों को देख कर रोता है, पर तेरे ताने तो बहुतों की छातियों से पार हो गए जब अहंकार मोर्चा लगा तो फिर यह दिखलावे का सोने का पत्तरा कब तक ठहर सकता है? स्वार्थ अश्रद्धा का ईट पत्थर प्रगट हो आया।" राजा को इस अन्तर में चिमगादड़ों ने बहुत तंग कर रक्खा था। मारे दुर्गन्ध के सिर फटा जाता था। भुनगे और पतङ्गों से सारा मकान भर गया था।

बीच २ में पंख वाले सांप और विच्छू भी दिखलाई देते थे। राजा घबड़ा कर चिल्ला उठा कि "यह मैं किस आपत्ति में पड़ा ! इन कमबख्तों को यहां किस ने आने दिया !" सत्य बोला "राजा, सिवाय तेरे इनको और कौन यहां आने देगा ? तू ही तो इन सब को लाया है, यह सब तेरे मन की बुरी वासनाएँ हैं । तूने समझा था कि जैसे समुद्र में लहरें उठा और मिटा करती है, उसी तरह मनुष्य के मन में भी संकल्प की मौजें उठ कर मिट जाती हैं । पर रे मूढ़, याद रख कि आदमी के चित्त में ऐसा सोच विचार कोई नहीं आता जो जगतकर्त्ता, प्राणदाता, परमेश्वर के सामने प्रत्यत्त नहीं हो जाता। यह चिमगादड़ और भुनगे और सांप विच्छू और कीड़े मकोड़े जो तुझे दिखलाई देते हैं वे सब काम, क्रोध, मोह, लोभ, मतसर, अभिमान, मद, ईर्षा के संकल्प विकल्प हैं जो दिन रात तेरे अन्त:करण में उठा किये और इन्हीं चिम-गादड़ और भुनगे और सांप बिच्छू और कीड़े मकोड़ों की तरह तेरे हृदय के आकाश में उड़ते रहे। क्या कभी तेरे जी में किसी राजा की ओर कुछ द्वेष नहीं रहा, या उसके मुल्क माल पर लोभ नहीं आया, या अपनी बड़ाई का अभि-मान नहीं हुआ ? राजा ने एक बड़ी लम्बी ठण्डी सांस ली और अत्यन्त निराश होके यह बात कही कि "इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो कह सके कि मेरा हृदय शुद्ध और मन में कुछ भी पाप नहीं। इस संसार में निष्पाप रहना बड़ा कठिन है। जो पुण्य करना चाहते हैं उन में भी पाप निकल

आता है। इस संसार में पाप रहित कोई भी नहीं। ईश्वर के सामने पवित्र पुण्यात्मा कोई भी नहीं।" सारा मन्दिर बरन सारी धरती और आकाश गूंज उठा। 'कोई भी नहीं, कोई भी नहीं।'

सत्य ने जो आंख उठाकर उस मन्दिर की एक भीत की ओर देखा तो वह अभी दम संगमरमर से काच बन गई। राजा ने कहा कि 'अब तू इस कांच का भी तमाशा देख और जो कर्तव्य कर्मों के न करने से तुझे पाप लगे हैं उनका भी हिसाब ले।' राजा उस कांच में क्या देखता है कि जिस प्रकार बरसात की बढ़ी हुई किसी नदी में जल के प्रवाह बहे जाते हैं, उस प्रकार अगणित मूरतें एक ओर से निकलतीं और दूसरी ओर लोप होती चली जाती हैं! कभी तो राजा को वे सब भूखे और नंगे उस काच में दिखलाई देते जिन्हें राजा खाने पहिनने को दे सकता था, पर न देकर दान का रुपया उन्हीं हट्टे कट्टे मोटे मुण्डे खाते पीते हुओं को देता रहा, जो उसकी खुशामद करते थे, या किसी की सिफारिश ले आते थे, या उस के कारबारियों को घूस देकर मिला लेते थे, सवारी के समय मांगते मांगते और कोलाहल मचाते मचाते उसे तंग कर डालते थे, या दर्बार में आकर उसे लज्जा के भंवर में गिरा देते थे, या झूठा छापा तिलक लगाकर उसे दम्भ के जाल में फंसा लेते थे, या जन्मपत्र में झूठे बुरे ग्रह बतला कर कुछ धमकी देते थे, या सुन्दर कवित्त और श्लोक पढ़कर उसके चित्त को लुभाते थे कभी वे दीन दुःखी दिखलाई देते

जिन पर राजा के कारदार जुल्म किया करते थे और उसने कुछ भी उसकी तहक़ीक़ात और उपाय न किया। कभी उन बीमारों को देखता जिनको नीरोग करा देना राजा के हाथ में था। कभी वे व्यथा के जले और विपत्ति के मारे दिखलाई देते, जिनका जो राजा के दो बात कहने से ठण्डा और सन्तुष्ट हो सकता था। कभी अपने लड़के लड़कियों को देखता जिन्हें वह पढ़ा लिखा कर अच्छी अच्छी बातें सिखा कर बड़े बड़े पापों से बचा सकता था। कभी उन गाँव और इलाके को देखता जिन में कुएँ तालाब खुदवाने और किसानों को सहायता देने और उन्हें खेती बारी के नये २ प्रयोग बतलाने से हजारों गरीबों का भला कर सकता था। कभी उन टूटे हुए पुल और रास्तों को देखता जिन्हें ठीक करने से वह लाखों मुसाफिरों को आराम पहुंचा सकता था। राजा से अधिक देखा न जा सका। थोड़ी देर में घबरा कर हाथों से अपनी आँखें को ढांप लिया। वह अपने घमंड में उन सब कामों को तो सदा याद रखता था और उनकी चरचा किया करता जिन्हें वह अपनी समझ में पुण्य के निमित्त किये हुए समझे हुए था पर उन कर्त्तव्य कामों का कभी टुक भी सोच न किया करता जिन्हें अपनी उन्मत्तता से अचेत होकर छोड़ दिया था। सत्य बोला "राजा, अभी से क्यों घबरा गया। आ इधर आ. इस दूसरे काच में मैं तुझे अब उन पापों को दिखलाता हूं जो तूने अपने जीवन में किये हैं।" राजा ने हाथ जोड़े और पुकारा 'बस महाराज, बस कीजिये, जो कुछ देखा उसी में मैं मिट्टी हो गया कुछ भी

बाक़ी न रहा अब आगे क्षमा कीजिये। पर यह तो बतलाइये कि आपने यहां आकर मेरे शर्बत में जहर घोला और पकी पकाई खीर में सांप का विष उगला, और अपने मेरे आनन्द को इस मन्दिर में आके नाश में मिलाया जिसे मैंने सर्वशक्तिमान भगवान् के अर्पण किया है। चाहे जैसा वह बुरा और अशुद्ध क्यों न हो पर मैंने तो उसी निमित्त बनाया है"। सत्य ने कहा "ठीक, पर यह तो बतला कि भगवान् इस मन्दिर में बैठा है? यदि तूने भगवान् को इस मन्दिर में बिठाया होता तो फिर अशुद्ध क्यों रहता। तनिक आंख उठाकर उस मूर्त्ति को तो देख जिसे तू जन्म भर पूजता रहा है।" राजा ने जो आंख उठाई तो क्या देखता है कि वहां उस बड़ी ऊँची वेदी पर उसी की मूर्त्ति पत्थर की घड़ी हुई रक्खी है, और अभिमान की पगड़ी बाँधे हुए है। सत्य ने कहा कि मूर्ख तूने जो काम किये केवल अपनी प्रतिष्ठा के लिये। इसी प्रतिष्ठा के प्राप्त होने की सदा तेरी भावना रही है और इसी प्रतिष्ठा के लिए तूने अपनी आप पूजा की। रे मूर्ख! सकल-जगत्-स्वामी, घट-घट अन्तर्यामी क्या ऐसे मनरूपी मन्दिरों में भी अपना सिंहासन बिछाने देता है, जो अभिमान और प्रतिष्ठा प्राप्ति की इच्छा इत्यादि से भरा है? ये तो उसकी बिजली पड़ने के योग्य है।" सत्य का इतना कहना था कि पृथ्वी एक बारगी काँप उठी, मानों उसी दम टुकड़े २ हुआ चाहती थी। आकाश में ऐसा शब्द हुआ कि मानों प्रलयकाल का मेघ गरजा। भीत मन्दिर की चारों ओर से अर अरा कर गिर पड़ी, मानों उस पापी राजा को दबा ही लेना

चाहती थी और उस अहङ्कार की मूर्ति पर ऐसी एक बिजली गिरी कि वह धरती पर औंधे मुँह आ पड़ी। "त्राहि माँ, त्राहि माँ" कहके भोज जो चिल्लाया उसकी आँख खुल गई और सपना सपना हो गया।

इस अन्तर में रात बीत कर सवेरा हो गया था, आकाश में लाली दौड़ आई थी। चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। एक ओर से शीतल मंद सुगन्ध हवा चली आती थी दूसरी ओर बीन और मृदङ्ग की ध्वनि। बन्दीजन राजा का यश गाने लगे, हरकारे हर तरफ़ काम को दौड़े। कमल खिले, कुमुद कुम्हलाये, राजा पलंग से उठा, पर जी भारी, माथा थामे हुए न हवा अच्छी लगती थी, न गाने बजाने की कुछ सुध बुध थी। उठते ही पहले यह आज्ञा दी कि इस नगर में जो अच्छे से अच्छे पण्डित हों शीघ्र उनको मेरे पास लाओ। मैंने एक सपना देखा है कि जिसके आगे अब वह सारा खटराग सपना मालूम होता। उस सपने के स्मरण ही से मेरे रोंगटे खड़े हुए जाते हैं।

राजा के मुख से आदेश निकलने की देर थी कि चोबदारों ने तीन पण्डितों को जो उस समय वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य और बृहस्पति के समान प्रख्यात थे, बात की बात में राजा के सामने ला खड़ा किया। राजा का मुँह पीला पड़ गया, माथे पर पसीना आया। पूछा कि "वह कौनसा उपाय है जिससे यह पापी मनुष्य ईश्वर के कोप से छुटकारा पावे।" उनमें से एक बूढ़े पण्डित ने आशीर्वाद देकर निवेदन किया कि "धर्मराज, धर्म्मावतार यह भय तो आपके शत्रुओं को होना चाहिये। आपसे पवित्र पुण्यात्मा

के जी में ऐसा सन्देह क्यों उत्पन्न हुआ। आप अपने पुण्य के प्रभाव का कञ्चुक पहन के बेखटके परमेश्वर के सामने जाइये तब तो वह कहीं से न फटा कटा है और न किसी जगह से मैला कुचैला हुआ है।' राजा क्रोध करके बोला कि "बस, अधिक अपनी बाणी को परिश्रम न दीजिये और इसी क्षण अपने घरकी राह लीजिये। क्या आप फिर उस पर्दे को डाला चाहते हैं जो सत्य ने मेरे सामने से हटाया और बुद्धि की आँखों को बन्द किये चाहते हैं जिन्हें सत्य ने खोला! उस पवित्र परमात्मा के सामने अन्याय कभी नहीं ठहर सकता। मेरे पुण्य का कंचुक उसके आगे निरा चीथड़ा है" यदि वह मेरे कामों पर दृष्टि डालेगा तो नष्ट हो जाऊँगा, मेरा कहीं पता भी न लगेगा"। इतने में दूसरा पण्डित बोल उठा कि "महाराज, पारब्रह्म परमात्मा तो आनंदस्वरूप हैं। उसकी दया के सागर का कब किसी ने पार पाया। वह क्या हमारे इन छोटे छोटे कामों पर निगाह किया करता है। एक कृपादृष्टि से सारा बेड़ा पार लगा देता है"। राजा ने आँखें दिखला के कहा कि "महाराज, आप भी अपने घर को सिधारिये। आपने ईश्वर को ऐसा अन्यायी ठहरा दिया कि वह किसी को पापों का दण्ड ही नहीं देता। सब बाईस पंसेरी तोलता है, मानो हरभोगपुर का राज करता है। इसी संसार में क्यों नहीं देख लेते जो आम बोता है आम खाता है और जो बबूर लगाता है वह कांटे चुनता है। तो क्या इस लोक में जो जैसा करेगा, सर्वदेशी घट२ अन्तर्यामी से उसका बदला वैसा ही न पावेगा? सारी सृष्टि पुकार के कहती है और हमारा अन्तःकरण भी इस बात पर गवाही देता है कि

ईश्वर अन्याय कभी नहीं करेगा। जो जैसा करेगा वैसा ही उससे उसका बदला पावेगा।"

तब तीसरा पण्डित आगे बढ़ा और यों कहना आरम्भ किया "महाराजाधिराज, परमेश्वर के यहां से हम लोगों का वैसा बदला मिलेगा कि जैसा हम लोग काम करते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। आप बहुत यथार्थ कहते हैं, परमेश्वर अन्याय कभी नहीं करेगा पर यह इतने प्रायश्चित और होम और यज्ञ और जप तप तीर्थयात्रा किस लिये बनाये गये हैं? यह इसी लिये हैं कि जिस में परमेश्वर हम लोगों का अपराध क्षमाकर वैकुण्ठ में अपने पास रहने को ठौर देवे।" राजा ने कहा "देवता जी, कल तक मैं आपकी सब बात मान सकता था। लेकिन अब तो मुझे इन कामों में भी ऐसा कोई नहीं दिखलाई देता, जिसके करने से यह पापी मनुष्य पवित्र पुण्यात्मा हो जावे। कौन सा जप तप, तीर्थयात्रा होम यज्ञ और प्रायश्चित है जिसके करने से हृदय शुद्ध हो और अभिमान न आजावे। आदमी को फुसला लेना तो सहज है पर उस घट २ के अन्तर्यामी को कोई क्योंकर फुसलावे? जब मनुष्य का मन ही पाप से भरा हुआ है तो फिर उससे पुण्य कर्म कोई कहाँ बन आवे? पहले आप उस स्वप्न को सुनिये मैंने रात को देखा है फिर पीछे वह बतलाइये जिससे पापी मनुष्य ईश्वर के कोप से छुटकारा पाता है"।

निदान, राजा ने जो कुछ रात को सपने में देखा था सब ज्यों का त्यों उस पण्डित को सुनाया। पण्डितजी तो सुनते ही अवाक हो गये। सिर झुका लिया। राजा ने निराश होकर चाहा कि

तुषानल में जल मरे पर एक परदेशी आदमी जो उन पण्डितों के साथ बिना बुलाये घुस आया था सोचता विचारता उठ कर खड़ा हुआ और धीरे से यों निवेदन किया कि "महाराज, हम लोगों का कर्त्ता ऐसा दीन बन्धु, कृपासिन्धु है कि अपने मिलने की राह आप ही बतला देता है। आप निराश न हूजिये पर उस राह को ढूँढ़िये। आप इन पण्डितों के कहने में न आइये पर उसी से उस राह पाने की सच्चे जी से सहायता मांगिये"। हे पाठक जनों, तुम भी भोज की नांई उस राह को ढूँढते हो और भगवान् से उसके मिलने की प्रार्थना करते हो? भगवान् तुम्हें शीघ्र ऐसी बुद्धि दे और अपनी राह पर चलावे, यही हमारा अन्तःकरण से आशीर्वाद है।

जिन ढूँढ़ा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।

राजा लक्ष्मणसिंह

[सं० १८८३—१९५३]

[सन् १८२६—१८९६ ई०]

राजा साहब आगरा निवासी थे। बाल्यकाल ही से इन्हें पढ़ने-लिखने का बहुत शौक था। ये बड़े तीव्रबुद्धि थे। इन्हें संस्कृत और फारसी का अच्छा ज्ञान था। मातृ-भाषा से इनका बहुत प्रेम था, इसीलिए नौकरी करते हुए भी समय निकाल थोड़ी बहुत हिंदी भाषा की सेवा करते ही रहते थे सन् १८५७ के गदर में इन्होंने अंग्रेजों की बड़ी सहायता की थी। जिससे इन्हें सन् १८७० के प्रथम दिल्ली दरबार में 'राजा' की उपाधि मिली थी। ये ईस्ट इण्डिया कंपनी की ओर से एक अच्छे पद पर नियुक्त थे।

इनकी रचनायें ये हैं:—

दण्ड संग्रह [ताजीरात-इ-हिंद का अनुवाद]

मेघदूत, रघुवंश, शकुंतला [संस्कृत नाटकों के हिंदी अनुवाद]

आपने सं० १९१८ में 'शकुन्तला' का अनुवाद करके हिंदी जगत में बहुत ख्याति पाई। आपके इस नाटक की

भाषा इस बात का प्रमाण है कि आपका दृष्टिकोण कितना सुलझा हुआ था। आप शुद्ध हिंदी के पक्षपाती और राजा शिवप्रशाद की उर्दू प्रधान शैली के घोर विरोधी थे। आप की शैली संस्कृत प्रधान थी। इस शैली को साहित्य में प्रयुक्त करवाने के लिये आप ने 'प्रजा हितैषी' पत्र निकाला। राजा लक्ष्मण सिंह के विचार से हिंदी और उर्दू अलग है। उन्होंने हिंदी को उर्दू की दलदल से निकाल कर उसे उसका अपना शुद्ध रूप प्रदान किया। उनकी भाषा शुद्ध सरल तथा सुन्दर है।

———

शकुन्तला

[निर्माणकाल—सं० १६१६]

अंक ४

स्थान—तपोवन

प्रि०—अनसूया चलो। शकुन्तला की बिदा का उपचार करें।

अन०—(आश्चर्य से) सखी तू क्या कहती है।

प्रि०—अभी मैं शकुन्तला से यह बात पूछने गई थी कि रात को चैन से सोयो या नहीं।

अन०—सो तब।

प्रि०—सो वह तो सिर झुकाये बैठी थी। इतने में पिता कन्व निकट आकर उससे मिले और यह शुभ वचन बोले कि हे पुत्री बड़े मंगल की बात है कि आज प्रातकाल जब ब्राह्मण ने अग्नि कुंड में आहुति दी तब यद्यपि यज्ञ के धूएं से उस की दृष्टि धुन्धली हो रही थीं तो भी आहुति अग्नि के बीच में पड़ी। इसलिये अब तुम को मैं अधिक दुःखमें न रक्खूंगा। आज तुम्हारी बिदा इस कुटी से उस राजा के रणवास को कर दूंगा जिसने तुम्हारा परिग्रहण किया है।

अन०—हे सखी जो बातें मुनि के पीछे हुई थीं सो उनसे किसने कह दीं।

प्रि०—जब मुनि यज्ञस्थान के निकट पहुंचे तब आकाश वाणी कह गई।

अन०—(आनन्द से प्रियंबदा को भेंट कर। हे सखी यह सुन कर मुझे बड़ा सुख हुआ। परन्तु सखी के बिछोह का दुःख भी है। इस लिये आज हमारा हर्ष शोक समान है।

प्रि०—सखी को सुख होगा। इससे हमको भी कुछ शोक न करना चाहिये।

अन०—मैंने इसी दिन के लिए उस नारियल में जो वह देखो आम के वृक्ष पर लटकता है नागकेशरी भर रक्खी थी। तुम उसे उतारकर कमल के पत्ते में रक्खो। तब तक मैं थोड़ा सा गोरोचन और मिट्टी और दूब मंगलकार्य के लिये ले आऊँ।

प्रि०—बहुत अच्छा। प्रियंवदाने नागकेशरी ली और अनसूया गई। (नेपथ्य में) गोतमी शार्ङ्गरव और शारद्वत मिश्रों से कह दो कि शकुन्तला के संग जाना होगा।

प्रि०—(कान लगाकर) अनसूया विलम्ब मत करो। पिता कन्व हस्तिनापुर के जाने वालों को आज्ञा दे रहे हैं।

(अनसूया सामग्री लिये आई)

अन०—मैं आई! चलो! (दोनों गईं)

प्रि०—(देखकर) वह देखो। शकुन्तला सूर्योदय का सिर स्नान करके खड़ी है और बहुत सी ऋषियों की स्त्री टोकरियों मे तण्डुल लिए आशीस दे रही हैं। चलो हम भी अशीस दे आवें।

१ (शकुन्तला और गौतमी और तपस्वियों की स्त्रियाँ आईं)

१ तपस्विनी—हे राजवधू तू पति की प्यारी हो।

२ तपस्विनी—तू सूरवीर पुत्र की माता हो । (आशीर्वाद दे कर तपस्विनी गई)

दो० सखी (शकुन्तला के निकट जाकर) कहो सखी स्नान अच्छे हुए ।

शकु०—(आदर से) सखियो भली आईं । यहां बैठो कुछ बातें करें । (दोनों बैठ गईं) ।

अन०—तुम नेक ठहरो । तो मैं कुछ मङ्गल नेग कर दूं ।

शकु०—तुम करोगी सो अच्छा ही करोगी । परन्तु फिर तुमसे मिलने का अवसर कठिन हो आयगा । (यह कहकर आंसू डाल दिए ।

दो० सखी—ऐसे मंगल समय जब कि तू सुख भोगने जाती है रोना उचित नहीं है । (यह कह कर दोनों ने आंसू डाल दिए और वस्त्र पहराने लगीं ।

प्रि०—सखी तेरे इस सुन्दर अंग को तो अच्छे वस्त्राभूषण चाहिये थे । परन्तु अब ये ही साधारण फूल पत्ते आश्रम में मिल सके हम पहराती हैं ।

(कन्व का चेला अच्छे अच्छे वस्त्राभूषण लेकर लाया) रानी को ये वस्त्राभूषण पहराओ । (देखकर सब स्त्री चकित हो गईं) ।

गौतमी—हे पुत्र हारीत, ये वस्त्राभूषण कहां से आए ।

चेला—पिता कन्व के तप प्रभाव से ।

गौ०—क्या यह मन में विचारते ही प्राप्त हो गए ।

चेला—नहीं। महात्मा काश्यप की आज्ञा हुई कि शकुन्तला के निमित्त वृक्षों से फूल ले आओ। आयसु होते ही तुरन्त किसी वन देवी ने कोमल हाथ उठाकर चन्द्रमा के तुल्य श्वेत साड़ी दी। किसी ने महावर के लिए लाक्षा रस दिया। कोई भूषण बनाने लगी।

प्रि०—कमल के मकरन्द को महूक की मक्खी भी सिर झुकाती है।

गौ०—(शकुन्तला को देखकर।) वनदेवियों से वस्त्राभरण मिलना यह सगुन तुझे सासरे में राजलक्ष्मी का दाता होगा।

(शकुन्तला लजा गई)।

चेला—(गुरु जी मालिनी के स्नानों को गये हैं। वहीं जाकर यह वृत्तांत वनदेवियों के सत्कार का उनसे कहूंगा।

(गया)

अन०—(आभूषण पहराती हुई) हे सखी हम वनवासनियों ने ऐसे भूषण आगे कभी न देखे थे। इससे हम ज्यों के त्यों पहराना नहीं जानती हैं। परन्तु मैं अपनी चित्रविद्या के बल से सिंगार कराती हूं।

शकु०—(मुस्कराकर) हां तेरी चतुराई को मैं जानती हूं।

(कन्व कुछ विचार करते हुए आए।)

कन्व—(आप ही आप) आज शकुन्तला जाएगी। इससे उत्कण्ठा करके मेरा हृदय स्नेह के बस आंसुओं से भरा आता है। जब मुझ वनवासी को यह दशा है तो गृहस्थियों की क्या गति

बेटी बिदा होने के समय होती होगी। (इधर उधर मन बहलाने के लिए टहलने लगे।

प्रि०—सखी शकुन्तला अब तुम्हारा यथोचित सिंगार हुआ। इस साड़ी को जो वनदेवियों ने दी है पहरो। (शकुन्तला ने उठकर साड़ी पहरी)।

गौ०—हे पुत्री पिता कन्व मिलने को आए हैं।

शकु०- (उठकर लज्जा से) पिता मैं नमस्कार करती हूं।

कन्व—पुत्री जैसी प्यारी राजा ययाति को शर्मिष्ठा हुई तैसी तू अपने पति को होगी। और जैसा चक्रवर्ती पुत्र पुरु शर्मिष्ठा के हुआ तैसा ही तेरे होगा।

गौ०—ऋषि के वचन सत्य होंगे।

कन्व—आओ बेटी। हुतासन की प्रदक्षिणा कर लो। (सब ने प्रदक्षिणा की) यही अग्नि जो वेदी में प्रज्वलित होकर नैवेद्य को लेती है परन्तु मन्त्र पढ़ी दाभ को यद्यपि आस पास बिछी है परन्तु बाधा नहीं पहुँचाती यही अग्नि जो हव्य के गन्ध से पापों को नाश करती है तेरी रक्षा करेगी। (शकुन्तला ने परिक्रमा दी) अब पुत्री तू शुभ घड़ी में बिदा हो। (चारों ओर देखकर) संग जाने वाले मिश्र कहां हैं।

(शार्ङ्गरव और शारद्वत आए)

दो० भाई—मुनि जी हम ये हैं।

कन्व—पुत्र शार्ङ्गरव अपनी बहन को गैल बताओ।

सारथी—आओ भगवती। इधर आओ। (सब चले)।

कन्व—हे तपोवन के वृक्षो जिस शकुन्तला ने तुम्हारे बिना सींचे कभी जल भी नहीं पिया और जिसे यद्यपि पुष्प पत्र के गहने बनाने का चाव था परन्तु प्यार के मारे तुम्हारे फूल पत्ते कभी न तोड़े और बड़ा आनंद सदा तुम्हारे मौरने के समय माना इस को तुम पति के घर जानें की आज्ञा दो। (कोयल बोली) यह देखो वनदेवियों ने आज्ञा दी।

(आकाशवाणी) शकुन्तला को यह यात्रा मङ्गलकारी हो। और उस के सुख के निमित्त मार्ग में पवन फूलों का पराग बरसावें। कमल संयुक्त निर्मल जल के ताल उस को पर्यटन में सुख दें। और वृक्षों की सघन छाया सूर्य के तेज से रक्षा करे।

सारथी—यह आशीर्वाद किसने दिया कोकिला ने या तपस्वियों की सहवासिनी वनदेवियों ने।

गौ०—हे पुत्री तपस्वियों की हितकारी वनदेवी तुझे आशीर्वाद देती हैं। तू भी इनको प्रणाम कर। (शकुन्तला ने फिरकर नमस्कार किया।)

शकु०—(प्रियंवदा से हौले हौले)। हे प्रियंवदा आर्यपुत्र से फिर भेट होने का तो मुझे बड़ा उत्साह है। परन्तु इस वन को जिसमें इतनी बड़ी हुई हूं छोड़ते आगे को पांव नहीं पड़ते हैं।

प्रि०—अकेली तुझी को शोक नहीं है। ज्यों ज्यों तेरे विदा होने का समय निकट आता है तेरे विरह से वन में विथा सी छायी जाती है देख हरिणियों ने घास चरना छोड़ दिया है।

मोर नाचना भूल गए हैं) वृक्षों के पत्ते तेरे बिछोह की आँच से पीले हो हो कर ऐसे गिरते हैं मानों आँसू टपके।

शकु०—पिता, आज्ञा दो तो इस माधवीलता से भेंट लूं। क्योंकि इससे मेरा बहन का सा स्नेह है।

कन्व बेटी मिल ले। मैं भी तुम्हारे स्नेह को जानता हूं।

शकु०—(लता से भेंटकर) हे वन ज्योत्स्ना यद्यपि तू आम का आश्रय ले रही है तो भी भुजा पसार के मुझ से मिल ले। अब मैं तुझ से दूर जा पड़ूंगी। परन्तु मन तुझी में रहेगा। पिता इस लता को मेरे ही समान गिनियो।

कन्व बेटी मेरे मन में बड़ी चिन्ता हरती थी कि तुझे अच्छा पति मिले। सो अपने सुकृतों से तैंने योग्य वर पाया अब मैं तेरी प्यारी लता का भी विवाह इस आम से जो उस के निकट मौर रहा है कर दूंगा। तू विलम्ब मत करे। बिना हो।

शकु०—(दोनों सखियों के पास जाकर) हे सखियो प्यारी माधवी को मैं तुम्हें सौंपती हूं।

दो० सखी—सखी हमें किसको सौंपे जाती है। दोनों ने आँसू डाल दिए)।

कन्व—अनसूया इस समय रोना न चाहिये। शकुन्तला को धीरज बंधाओ। (सब आगे को चले)।

शकु०—हे पिता जब यह हरिणी जा आश्रम के निकट चरती है जने तब इसकी कुशल कहला भेजना। भूल मत जाना।

कन्व—न भूलूंगा।

शकु०---(कुछ चलकर और फिर कर) यह कौन है जो मेरे अंचल को नहीं छोड़ता है। फिर पीछे फिर कर देखा)।

कन्व---यह वही मृगछौना है जिस को तैंने पुत्र सम पाला है। यह वही है जिसका मुंह जब कभी दाभ से चिर जाता था तू हिंगोट का तेल लगाती थी और जिसको तैंने समा के चावल खिला खिला कर इतना बड़ा किया है। अब यह अपनी पालने वाली के चरण क्योंकर छोड़े।

शकु०---अरे छौना तू मेरे लिए क्यों रोता है। तेरी मां तो तुझे जनते ही छोड़ मरी थी। मैंने पालकर तुझे इतना बड़ा किया। तैसे ही मेरे पीछे पिता कन्व तेरा पालन करेंगे। अब तू लौट जा। (आंसू डालती चली)।

कन्व---बेटी यह समय रोने का नहीं है। हम सब फिर मिलेंगे आंसुओं से तेरी दृष्टि रुक रही है। इससे ऐसा न हो कि ऊंचे नीचे में पांव पड़े। अब तू अपने धीरज से आंसुओं को रोक।

सारथी---हे महात्मा सुनते हैं कि प्यारे मनुष्यों को पहुंचाने वहीं तक जाना चाहिये जहां तक जलाशय न मिले। अब यह सरोवर का तट आ गया। आप हम को आज्ञा देकर आश्रम को सिधारो।

कन्व---तो आओ छिन मात्र इस वट की छाया में ठहर लें। सब छाया में गये) राजा दुष्यंत को क्या संदेसा भेजना योग्य है। (विचार करने लगा)।

अन०—(शकुन्तला से हौले हौले) हे सखी आज इस आश्रम में सब चित्त तुझ में लगा है और सब तेरे बिछोह में उदास हैं। देख चकवी कमल के पत्तों में बैठी बहुतेरा बोलती है परन्तु चकवा उत्तर नहीं देता। चोंच से चुगा छोड़ तेरी ही ओर निहार रहा है।

कन्द—पुत्र शार्ङ्गरव जब तू राजा के सम्मुख पहुंचे तब शकुन्तला को आगे करके मेरी ओर से यह कहियो कि हम तपस्वियों को केवल तप के धनी जानो और अपने श्रेष्ठ कुल को विचार कर, इस लड़की पर भी सब रानियों की भाँति वही स्नेह रक्खो जो तुम्हारे हृदय में आप से आप इसकी ओर उत्पन्न हुआ है। इससे अधिक हम क्या मांगें। और विशेष प्यार तो भाग्य के आधीन है।

सारथी आप का सन्देसा मैंने भली भांति गांठ बांध लिया।

कन्व—(शकुन्तला की ओर बड़े मोह से) हे पुत्री अब तुझे भी कुछ सीख दूंगा। क्योंकि यद्यपि हम बनवासी हैं तो भी लोक के व्यवहारों को भली भाँति जानते हैं।

सारथी—विद्वान पुरुषों से क्या छुपा है।

कन्म—बेटी सुन। जब तू रणवास में वास पवे तब पति का आदर और गुरुजनों की शुश्रूषा करियो।

सौतों में सपत्नी भाव से मत रहियो। सहेली की भाँति टहल करियो॥

शकु०---(कुछ चलकर और फिर कर) यह कौन है जो मेरे अंचल को नहीं छोड़ता है। फिर पीछे फिर कर देखा)।

कन्व---यह वही मृगछौना है जिस को तैंने पुत्र सम पाला है। यह वही है जिसका मुंह जब कभी दाभ से चिर जाता था तू हिंगोट का तेल लगाती थी और जिसको तैंने समा के चावल खिला खिला कर इतना बड़ा किया है। अब यह अपनी पालने वाली के चरण क्योंकर छोड़े।

शकु०---अरे छौना तू मेरे लिए क्यों रोता है। तेरी मां तो तुझे जनते ही छोड़ मरी थी। मैंने पालकर तुझे इतना बड़ा किया। तैसे ही मेरे पीछे पिता कन्व तेरा पालन करेंगे। अब तू लौट जा। (आंसू डालती चली)।

कन्व---बेटी यह समय रोने का नहीं है। हम सब फिर मिलेंगे आंसुओं से तेरी दृष्टि रुक रही है। इससे ऐसा न हो कि ऊंचे नीचे में पांव पड़े। अब तू अपने धीरज से आंसुओं को रोक।

सारथी---हे महात्मा सुनते हैं कि प्यारे मनुष्यों को पहुंचाने वहीं तक जाना चाहिये जहां तक जलाशय न मिले। अब यह सरोवर का तट आ गया। आप हम को आज्ञा देकर आश्रम को सिधारो।

कन्व---तो आओ छिन मात्र इस वट की छाया में ठहर लें। (सब छाया में गये) राजा दुष्यंत को क्या संदेसा भेजना योग्य है। (विचार करने लगा)।

अन०—(शकुन्तला से हौले हौले) हे सखी आज इस आश्रम में सब चित्त तुझ में लगा है और सब तेरे विछोह में उदास हैं। देख चकवी कमल के पत्तों में बैठी बहुतेरा बोलती है परन्तु चकवा उत्तर नहीं देता। चोंच से चुगा छोड़ तेरी ही ओर निहार रहा है।

कन्द—पुत्र शार्ङ्गरव जब तू राजा के सम्मुख पहुंचे तब शकुन्तला को आगे करके मेरी ओर से यह कहियो कि हम तपस्वियों को केवल तप के धनी जानो और अपने श्रेष्ठ कुल को विचार कर, इस लड़की पर भी सब रानियों की भाँत वही स्नेह रक्खो जो तुम्हारे हृदय में आप से आप इसकी ओर उत्पन्न हुआ है। इससे अधिक हम क्या मांगें। और विशेप प्यार तो भाग्य के आधीन है।

सारथी आप का सन्देसा मैंने भली भांति गांठ बांध लिया।

कन्व—(शकुन्तला की ओर बड़े मोह से) हे पुत्री अब तुझे भी कुछ सीख दूंगा। क्योंकि यद्यपि हम बनवासी हैं तो भी लोक के व्यवहारों को भली भाँति जानते हैं।

सारथी—विद्वान पुरुषों से क्या छुपा है।

कन्म—बेटी सुन। जब तू रणवास में वास पवे तब पति का आदर और गुरुजनों की शुश्रषा करियो।

सौतों में सपत्नो भाव से मत रहियो। सहेली की भाँति टहल करियो॥

कदाचित पति तिरस्कार भी करे तौ भी उसकी आज्ञा से बाहर मत हूजियो नौकर चाकरों को एक सा समझियो। और अपस्वार्थी मत हूजियो। जो कुलवधू इस धर्म में चलती हैं वे अच्छी गृहस्थिनी कहलाती हैं। और जो इससे विमुख होती हैं सो कुल कलङ्की होती हैं। जब पति सन्मुख आवे तो उठकर आदर कीजियो। और जो कुछ बचन वह कहे सो नम्रता से सुन लीजियो। उसके चरणों में दृष्टि रखियो और बैठने को आसन दीजियो। पति की सेवा आप कीजियो। उससे पीछे सोइयो और पहले जागियो। यह सब कुलबधुओं के मुख्य धर्म बड़ों ने कहे हैं। कहो गौतमी यह शिक्षा कैसी है।

गौ०—कुलवधुओं के लिये यह उपदेश बहुत श्रेष्ठ है। पुत्री इसको भूल मत जाना।

कन्व—बेटी आ। मुझसे और अपनी सखियों से एक बेर फिर मिल ले।

शकु०—क्या प्रियंवदा और अनसूया यहीं से आश्रम को लौट जायँगी।

कन्व—बेटी इन को लौट जाने की आज्ञा दे क्योंकि अभी जब तक कुआरी है इनका नगर में जाना योग्य नहीं है। गौतमी तेरे संग जायगी।

शकु०—(कन्व से भेटकर) हाय मैं पिता की गोद से न्यारी होकर मलयगिरि से उखाड़े चन्दन के पौधे की भांति बिहूनी भूमि में कैसे जीऊंगी।

कन्व—पुत्री ऐसी विकल मत हो। जब तू घर की धनी होगी और राजा पति मिलेगा तब वैभव के कामों में यद्यपि कभी कभी व्याकुल हो जायगी परन्तु इस दुख का कुछ बहुत स्मरण न रहेगा। और फिर जब तेरे तेजस्वी पुत्र का जन्म होगा तब इस बिछोह को संपूर्ण भूल जायगी। (शकुन्तला ऋषि के पैरों में गिर पड़ी) मेरे आशीर्वाद से तेरी मनोकामना पूरी होगी।

शकु०—(दोनों सखियों के पास जाकर) आओ सखियो। दोनों एक ही संग भुजा पसार के भेंट लो। (दोनों मिलीं)

अन०—हे सखी कदाचित राजा तुरन्त तुमको न पहचान ले तो यह मुदरी जिस पर उसका नाम खुदा है दिखा दीजियो।

शकु०—(घबरा कर) सखी तेरे इस वचन ने तो मेरा हृदय कंपा दिया।

प्रि०—प्यारी डर मत। स्नेह में झूठी शंका बहुधा उठती है।

सारथी—अब दिन बहुत चढ़ गया है। चलो विदा हो।

शकु०—(फिर आश्रम की ओर देखकर) हे पिता इस आश्रम को कब फिर देखूंगी।

कन्व—बेटी जब कुछ काल तुझे बीत लेगा और तेरे महबली पुत्र हो लेगा तब उस पुत्र को राज्य सौंपकर अपने पति सहित इस अश्रम में तू फिर आवेगी।

गौ०—चलने का समय बीता जाता है। अब पिता को लौट जाने दे। मुनि जी आप जाओ।

कन्व—हे बेटी मेरे नित्य कर्म में विघ्न मत डाले। (श्वास लेकर) मेरा शोक न घटेगा क्योंकि तेरे सुकुमार हाथों के बोये धान कुटी के सामसे नित्य दृष्टि के सोहि रहेंगे। अब सिधारो मार्ग मंगल कारी हो। (गौतमी और दोनों मिश्रों सहित शकुन्तला गई)।

दो० सखी—(वियोग से शकुन्तला की ओर देखकर) अब तो सखी वृक्षों के ओट हुई।

कन्व—(श्वास लेकर) बेटियो अब तुम्हारी सखी गई। तुम इस सोच को त्याग कर हमारे साथ आओ!

दो० सखी—पिता, शकुन्तला बिना तपोवन सूना लगता है। (सब लौटे)।

कन्व—सत्य है तुम को ऐसा ही दिखाई होगा। (विचार करते हुए चले) शकुन्तला को बिदा करके आज मैं सुचित हुआ। बेटी किसी दिन पराए ही घर का धन होती है। आज मेरा चित्त ऐसा प्रसन्न हुआ है मानो किसी की धरोहर दे दी।

स्वामी दयानंद

[सं० १८७१—१९४०]

स्वामी दयानद उच्च कोटि के सुधारक थे। वे वैदिक मत के प्रचारक थे और उसकी ठीक व्याख्या करने में सफल हुए। उन्होंने वेदों द्वारा एकेश्वरवाद सिद्ध किया।

वेदों के आधार पर उन्होंने समाजसुधार किया। परन्तु वे केवल वेदों के अद्वितीय विद्वान तथा धर्म का पुनरुत्थान करने वाले ही न थे, अपितु देशभक्त-शिरोमणि भी थे। सच्चाई के पुजारी थे। काठियावाड़ प्रांत के निवासी होते हुए इन्होंने भाँप लिया कि देश की राष्ट्रीय भाषा बनने का अधिकार एक मात्र आर्य भाषा अर्थात् हिंदी को है। फिर अपने विचार के अनुसार अपनी कृतियों में हिंदी ही को अपनाया। स्वामी जी का देश-प्रेम, भाषा-प्रेम तथा संस्कृत-प्रेम इतना अधिक था कि उन्होंने विदेशी हिंदी शब्द के स्थान में भी आर्य भाषा शब्द प्रयुक्त किया।

स्वामी जी ने संस्कृत तथा हिंदी का प्रचार करने में कोई कसर उठा न रखी। आप की भाषा संस्कृत-मिश्रित है, परन्तु उसे साहित्य के योग्य बनाकर स्वामी जी ने इसकी बहुत सेवा की है। व्यवहार योग्य तथा साहित्यिक क्षमता रखने वाली हिंदी के जन्मदाता थे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

———

आचारानाचार तथा भक्ष्याभक्ष्य

[निर्माण काल—सं० १९३६]

मनुष्यों को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जिसका सेवन रागद्वेषरहित विद्वान् लोग नित्य करें जिसको हृदय अर्थात आत्मा से सत्य कर्त्तव्य जानें वही धर्म माननीय और करणीय है। क्योंकि इस संसार में अत्यन्त कामात्मता और निष्कामता श्रेष्ठ नहीं है वेदार्थज्ञान और वेदोक्त कर्म ये सब कामता ही से सिद्ध होते हैं। जो कोई कहे कि मैं निरिच्छ और निष्काम हूं वा होजाऊं तो वह कभी नहीं हो सकता क्योंकि सब काम अर्थात यज्ञ, सत्यभाषणादि व्रत, यम, नियमरूपी धर्म आदि संकल्प ही से बनते हैं। क्योंकि जो २ हस्त पाद, नेत्र, मन आदि चलाये जाते हैं वे सब कामना ही से चलते हैं जो इच्छा न हो तो आंख का खोलना और मीचना भी नहीं हो सकता। इसलिये सम्पूर्ण वेद मनुस्मृति तथा ऋषिप्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार और जिस २ कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय शंका लज्जा जिनमें न हो उन कर्मों का सेवन करना उचित है देखो! जब कोई मिथ्याभाषण चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उसके आत्मा में भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है इसलिये वह कर्म करने योग्य नहीं। मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्र, वेद, सत्पुरुषों का आचार, अपने

आत्मा के अविरुद्ध अच्छे प्रकार विचार कर ज्ञाननेत्र करके श्रुति प्रमाण से स्वात्मानुकुल धम में प्रवेश करे क्योंकि जो मनुष्य वेदोक्त धर्म और जो वेद से अविरुद्ध स्मृत्युक्त धर्म का अनुष्ठान करता है वह इस लोक में कीर्ति और मरके सर्वोत्तम सुख को प्राप्त होता है। श्रुति वेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहते हैं इनसे सब कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य का निश्चय करना चाहिये जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्तग्रन्थों का अपमान करे उसको श्रेष्ठ लोग जातिबाह्य करदें क्योंकि जो वेद की निन्दा करता है वही नास्तिक कहाता है। इसलिये वेद, स्मृति सत्पुरुषों का आचार और अपने आत्मा के ज्ञान से अविरुद्ध प्रियाचरण ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से धर्म लक्षित होता है। परन्तु जो द्रव्यों के लोभ और काम अर्थात् विषय सेवा में फँसा हुआ नहीं होता उसी को धर्म का ज्ञान होता है जो धर्म को जानने की इच्छा करें उनके लिये वेद ही परम प्रमाण है। ब्राह्मण के सोलहवें, क्षत्रिय के बाईसवें और वैश्य के चोबीसवें वर्ष में केशान्त कर्म और क्षौरमुण्डन हो जाना चाहिये अर्थात् इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रख के अन्य डाढ़ी मूंछ और शिर के बाल सदा मुंडवाते रहना चाहिये अर्थात् पुनः कभी न रखना और जो शीतप्रधान देश हो तो कामचार है चाहे जितने केश रक्खे और जो अति उष्ण देश हो तो शिखासहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है डाढ़ी मूंछ रखने से

भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालों में रह जाता है।

मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियां चित्त को हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त करती हैं उनको रोकने में प्रयत्न करे जैसे घोड़े को सारथी रोक कर शुद्ध मार्ग में चलाता है इस प्रकार इनको अपने वश में करके अधर्ममार्ग से हटा के धर्ममार्ग में सदा चलाया करे। क्योंकि इन्द्रियों को विषयासक्ति और अधर्म में चलाने से मनुष्य निश्चित दोष को प्राप्त होता है और जब इनको जीतकर धर्म में चलाता है तभी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त होता है। यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में इन्धन और घी डालने से बढ़ता जाता है वैसे ही कामों के उपभोग से काम शान्त कभी नहीं होता किन्तु बढ़ता ही जाता है इसलिये मनुष्य को विषयासक्त कभी न होना चाहिये। जो अजितेन्द्रिय पुरुष है उसको विप्रदुष्ट कहते हैं उसके करने से न वेदज्ञान, न त्याग, न यज्ञ न नियम और न धर्माचरण सिद्धि को प्राप्त होते हैं किन्तु ये सब जितेन्द्रिय धार्मिक जन को सिद्ध होते हैं। इसलिये पांच कर्म [इन्द्रिया], पांच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारहवें मन को अपने वश में करके युक्ताहार विहार योग से शरीर की रक्षा करता हुआ सब अर्थों को सिद्ध करे जितेन्द्रिय उसको कहते हैं कि जो स्तुति सुन के हर्ष और निन्दा सुनके शोक, अच्छा स्पर्श करके सुख और दुष्ट स्पर्श से दुःख, सुन्दर रूप देख के प्रसन्न और दुष्टरूप देख अप्रसन्न, उत्तम भोजन करके आनन्दित और निकृष्ट

भोजन करके दुःखित, सुगन्ध में रुचि और दुर्गन्ध में अरुचि नहीं करता ॥६॥ कभी बिना पूछे व अन्याय से पूछने वाले को कि जो कपट से पूछता हो उसको उत्तर न देवे उनके सामने बुद्धिमान जड़ के समान रहे हां जो निष्कपट और जिज्ञासु हों उनको बिना पूछे उपदेश करे ॥७॥ एक धन, दूसरे बन्धु कुटुम्ब कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पाँचवीं श्रेष्ठ विद्या ये पांच मान्य के स्थान हैं परन्तु धन से उत्तम बन्धु, बन्धु से अधिक अवस्था, अवस्था से श्रेष्ठ कर्म और कर्म से पवित्र विद्या वाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं ॥८॥ क्योंकि चाहे सौ वर्ष का हो परन्तु जो विद्या विज्ञान रहित है वह बालक और जो विद्या विज्ञान का दाता है उस बालक को भी वृद्ध मानना चाहिये क्योंकि सब शास्त्र आप्त विद्वान् अज्ञानी को बालक और ज्ञानी को पिता कहते हैं ॥९॥ अधिक वर्षों के बीतने, श्वेत बाल के होने, अधिक धन से और बड़े कुटुम्ब के होने से वृद्ध नहीं होता किन्तु ऋषि महात्माओंका यही निश्चय है कि जो हमारे बीच में विद्या विज्ञान में अधिक है वही वृद्ध पुरुष कहाता है ॥१०॥ ब्राह्मण ज्ञान से, क्षत्रिय बल से, वैश्य धनधान्य से और शूद्र जन्म अर्थात् अधिक आयु से वृद्ध होता है ॥११॥ सिर के बाल श्वेत होने से बुड्ढा नहीं होता किन्तु जो युवा विद्या पढ़ा हुआ है उसी को विद्वान् लोग बड़ा जानते हैं ॥१२॥ और जो विद्या नहीं पढ़ा है वह जैसा काष्ठ का हाथी चमड़े का मृग होता है। वैसा अविद्वान् मनुष्य जगत् में नाममात्र मनुष्य कहाता है ॥१३॥ इसलिये विद्या पढ़ विद्वान्

धर्मात्मा होकर निर्वैरता से सब प्राणियों के कल्याण का उपदेश करे और उपदेश में वाणी मधुर और कोमल बोले जो सत्योपदेश से धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करते हैं वे पुरुष धन्य हैं ॥१४॥ नित्य स्नान, वस्त्र, अन्न, पान, स्थान सब शुद्ध रक्खे क्योंकि इनके शुद्ध होने में चित्त की शुद्धि और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है शौच उतना करना योग्य है कि जितने से मल दुर्गन्ध दूर हो जाये।

माता, पिता, आचार्य्य और अतिथि की सेवा करना देवपूजा कहाती है और जिस २ कर्म से जगत का उपकार हो वह २ कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य कर्म हैं कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, मिथ्यावादी, स्वार्थी कपटी, छली आदि दुष्टमनुष्यों का संग न करे और जो सत्यवादी धर्मात्मा परोपकारी प्रियजन हैं उनका सदा संग करने ही का नाम श्रेष्ठाचार हैं। (प्रश्न) आर्यावर्त्त देशवासियों का आर्यावर्त्त देश से भिन्न २ देशोंमें जानेसे आचार नष्ट होजाता है या नहीं ? (उत्तर) यह बात मिथ्या है क्यों कि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी सत्यभाषणादि आचरण करना है वह जहां कहीं करेगा आचार और धर्मभ्रष्ट कभी न होगा और आर्य्यावर्त्त में रहकर भी दुष्टाचार करे वही धर्म और आचार भ्रष्ट कहावेगा।

भारत शान्तिपर्व मोक्षधर्म में व्यास शुक-सम्वाद में कहा गया है कि एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और

शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय "अमेरिका" कहते हैं उसमें निवास करते थे। शुकाचार्य ने पिता से एक प्रश्न पूछा कि आत्मविद्या इतनी ही है वा अधिक ? व्यास जी ने जानकर उस बात का प्रत्युत्तर न दिया क्योंकि उस बात का उपदेश कर चुके थे। दूसरे की साक्षी के लिये अपने पुत्र शुक से कहा कि हे पुत्र ! तू मिथिलापुरी में जाकर यही प्रश्न जनक राजा से कह कर इसका यथायोग्य उत्तर देना। पिता का वचन सुनकर शुकाचार्य पाताल से मिथिलापुरी का ओर चले। प्रथम मेरु अर्थात हिमालय से ईशान उत्तर और वायव्य [कोण] में जो देश बसते हैं उनका नाम हरिवर्ष था अर्थात् हरि कहते हैं बन्दर को उस देश के मनुष्य अब भी रक्तमुख अर्थात् बानर के समान भूरे नेत्रवाले होते हैं जिन देशों का नाम इस समय 'यूरोप" है इन्हीं को संस्कृत में "हरिवर्ष" कहते थे उन देशों को देखते हुए और जिनको हूण "यहूदी" भी कहते हैं उन देशों को देख कर चीन मे आये चीन से हिमालय और हिमालय से मिथिलापुरी आये। और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पाताल में अश्वतरी अर्थात् जिसको अग्नि-यान नौका कहते हैं। उस पर बैठ के पाताल में जाके महाराजा युधिष्ठर के यज्ञ में उद्दालक ऋषि को ले आये थे। धृतराष्ट्र का विवाह गांधार जिसको "कंधार" कहते हैं वहां की राजपुत्री से हुआ। माद्री पाण्डू की स्त्री "ईरान" के राजा की कन्या थी। और अर्जुन का विवाह पाताल में जिसको "अमेरिका" कहते है वहां के राजा की लड़की उलोपी के साथ हुआ था। जो

देशदेशांतर, द्वीपद्वीपांतर में न जाते होते तो ये सब बातें क्योंकर हो सकतीं ? मनुस्मृति में जो समुद्र में जाने वाली नौका पर कर लेना लिखा है वह भी आर्य्यावर्त्त से द्वीपांतर में जाने के कारण है। और जब महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था उसमें सब भूगोल के राजाओं को बुलाने को निमन्त्रण देनेके लिये भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गये थे जो दोष मानते होते तो कभी न जाते। सो प्रथम आर्यावर्त्तदेशीय लोग व्यापार राजकार्य और भ्रमण के लिये सब भूगोल में घूमते थे। और जो आजकल छूतछात और धर्म नष्ट होने की शंका है वह केवल मूर्खों को बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है। जो मनुष्य देशदेशांतर द्वीपद्वीपांतर में जाने आने में शंका नहीं करते वे देशदेशाँतरके अनेकविध मनुष्यों के समागम रीति भांति देखने अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने में निर्भय शूरवीर होने लगते और अच्छे व्यवहार का ग्रहण बुरी बातोंको छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं सज्जन लोगों को राग, द्वेष, अन्याय मिथ्याभाषणादि दोषोंको छोड़ निर्वैर प्रीति परोपकार सज्जनतादि का धारण करना उत्तम आचार है। और यह भी समझ लें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्त्तव्य के साथ है जब हम अच्छे काम करते हैं तो हम को देशदेशांतर और द्वीपद्वीपांतर जाने में कुछ भी दोष नहीं लग सकता दोष तो पाप के काम करने में लगते हैं। हाँ इतना अवश्य चाहिए कि वेदोक्त धर्म का निश्चय और पाखण्डमत का खण्डन करना अवश्य सीख लें जिससे कोई

हमको झूठा निश्चय न करा सके। क्या विना देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में राज्य वा व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है ? जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो विना दारिद्रय और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। पाखण्डी लोग यह समझते हैं कि जो हम इनको विद्या पढ़ावेंगे और देशदेशान्तर में जाने की आज्ञा देवेंगे तो ये बुद्धिमान होकर हमारे पाखण्ड जाल में न फसने से हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट हो जायेगी इसीलिये भोजन छादन में बखेड़ा डालते हैं कि वे दूसरे देश में न जा सकें। हां इतना अवश्य चाहिए कि मद्यमांस का ग्रहण कदापि भूलकर भी न करें क्या सब बुद्धिमानों ने यह निश्चय नहीं किया है कि जो राजपुरुषों में युद्ध समय में भी चौका लगा कर रसोई बना के खाना अवश्य पराजय का हेतु है ? किन्तु क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को घोड़े हाथी रथ पर चढ़ या पैदल होके मारते जाना अपना विजय करना ही आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते २ विरोध करते कराते सब स्वातन्त्र्य आनन्द, धन, राज्य विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगा कर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पकाकर खावें। परन्तु वैसा न होने पर जानों सब आर्यावर्त्त देश भर में चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया है। हां, जहां भोजन करें उस स्थान को

धोने, लेपन करने, झाड़ू लगाने, कूरा कर्कट दूर करने में प्रसन्न अवश्य करना चाहिये। (प्रश्न) सखरी निखरी क्याहै ? (उत्तर) सखरी जो जल आदि में अन्न पकाये जाते और जो घी दूध पकाते हैं वह निखरी अर्थात् चोखी। यह भी इन धूर्तों का चलाया हुआ पाखण्ड है क्योंकि जिसमें घी दूध अधिक लगे उसको खाने में स्वाद और उदर में चिकना पदार्थ अधिक जावे इसीलिये यह प्रपञ्च रचा है नहीं तो जो अग्नि वा काल से पका हुआ पदार्थ पक्का और न पका हुआ कच्चा है जो पक्का खाना और कच्चा न खाना है यह भी सर्वत्र ठीक नहीं क्योंकि चणे आदि कच्चे भी खाये जाते हैं (प्रश्न) द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावें वा शूद्र के हाथ की बनाई खावें ? (उत्तर) शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्यपालन और पशूपालन खेती व्यापार के काम में तत्पर रहें और शूद्र के पात्र तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के विना न खावें, सुनो प्रमाण—

यह आपस्तम्ब का सूत्र है। आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करें परन्तु वे शरीर वस्त्र आदि से पवित्र रहें आर्यों के घर में जब रसोई बनावें तब मुख बांध के बनावें क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अन्न में न पड़े। आठवें दिन क्षौर नखच्छेदन करावें स्नान करके पाक बनाया करें आर्यों को खिला के आप खावें। (प्रश्न) शूद्र के छूए हुए पके अन्न के खाने में जब दोष लगाते हैं तो उसके

हाथ का बनाया कैसे खा सकते हैं ? (उत्तर) यह बात कपोलकल्पित झूठी है क्योंकि जिन्होंने गुड़ चीनी, घृत, दूध पिशान, शाक, फल, मूल खाया उन्होंने जानो सब जगत भर के हाथ का बनाया और उच्छिष्ट खालिया क्योंकि जब शूद्र, चमार, भङ्गी, मुसलमान, ईसाई आदि लोग खेतों में से ईख को काटते छीलते पीलकर रस निकालते हैं तब मलमूत्रोत्सर्ग करके उन्हीं विना धोये हाथों से छूते, उठाते, धरते आधा सांठा चूंस रस पीके आधा उसी में डाल देते हैं और रस पकाते समय उस रस में रोटी भी पकाकर खाते हैं जब चीनी बनाते हैं तब पुराने जूते कि जिसके तले में विष्ठा, मूत्र, गोबर, धूली लगी रहती है उन्हीं जूतों से उसको रगड़ते हैं। दूध में अपने घर के उच्छिष्ट पात्रों का जल डालते उसी में घृतादि रखते और आटा पीसते समय भी वैसे ही उच्छिष्ट हाथों से उठाते और पसीना भी आटा में टपकता जाता है इत्यादि और फल मूल कंद में भी ऐसी ही लीला होती है जब इन पदार्थों को खाया तो जानों सब के हाथ का खालिया (प्रश्न) फल, मूल, कंद और रस इत्यादि अदृष्ट में दोष नहीं मानते ? (उत्तर) वाहजी वाह ! सत्य है कि जो ऐसा उत्तर न देते तो क्या धूल राख खाते गुड़ शक्कर मीठी लगती दूध घी पुष्टि करता है इसलिये यह मतलब सिन्धु क्या नहीं रचा है अच्छा जो अदृष्ट में दोष नहीं तो भङ्गी वा मुसलमान अपने हाथों से दूसरे स्थान में बनाकर तुमको आके देवे तो खालोगे वा नहीं ? जो कहो कि नहीं तो अदृष्ट में भी दोष है। हां, मुसलमान, ईसाई आदि

मद्य मांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यों को भी मद्यमांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है परन्तु आपस में आर्यों का एक भोजन होने में कोई भी दोष नहीं दीखता। जब तक एकमत, एक हानिलाभ, एक सुख दुःख परस्पर न मानें तबतक उन्नति होना बहुत कठिन है। परन्तु केवल खाना पिना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तबतक बढ़ती के बदले हानि होती है। विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्थामें अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेदविद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी, आकर पञ्च बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पांच सहस्र वर्षके पहिले हुई थीं उनको भी भूल गये देखो ! महाभारत युद्धमें सब लोग लड़ाई में सवारियों पर खाते पीते थे आपस की फूट से कौरव पांडव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो होगया परन्तु अबतक भी वही रोग पीछे लगा है न जाने यह भयङ्कर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःखसागरमें डुबा मारेगा ? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्रहत्यारे, स्वदेशविनाशक, नीच के दुष्टमार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय। भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकार का होता है एक धर्मशास्त्रोक्त दूसरा वैद्यकशास्त्रोक्त, जैसे धर्मशास्त्र में—

द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रों को भी मलीन विष्ठा मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक फल मूलादि न खाना।

जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गांजा, भांग, अफीम आदि—

जो २ बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े. बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्यमांस के परमाणुओं ही से पूरित है उनके हाथ का न खावें जिसमें उपकार प्राणियों की हिंसा अर्थात् जैसे एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर सहस्र छःसौ मनुष्यों को सुख पहुंचता है वैसे पशुओं को न मारें न मारने दें। जैसे किसी गाय से बीस सेर और किसी से दो सेर दूध प्रतिदिन होवे उसका मध्य भाग ग्यारह सेर प्रत्येक गाय से दूध होता है, कोई गाय अठारह और कोई छः महीने तक दूध देती है उसका मध्य भाग बारह महीने हुए अब प्रत्येक गाय के जन्म भर के दूध से २४९६० (चौबीस सहस्र नौ सौ साठ) मनुष्य एक बार तृप्त हो सकते हैं उसके छः बछियां छः बछड़े होते हैं उनमें से दो मर जाएं तो भी दश रहे उनमें से पांच बछड़ियों के जन्मभर के दूध को मिलाकर १२४८०० (एक लाख चौबीस सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त हो सकते हैं अब रहे पांच बैल वे जन्मभर में ५०००S (पांच सहस्र) मन अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न कर सकते हैं उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य तीन पाव खावे तो अढ़ाई लाख मनुष्यों की तृप्ति होती है दूध और अन्न मिला २७४८००

(तीन लाख चौहत्तर सहस्र आठसौ) मनुष्य तृप्त होते हैं दोनों संख्या मिला के एक गाय की एक पीढ़ी में ४७५६०० (चार लाख पचहत्तर सहस्र छःसौ) मनुष्य एक बार पालित होते हैं और पीढ़ी परपीढ़ी बढ़ाकर लेखा करें तो असंख्यात मनुष्यों का पालन होता है इससे भिन्न [बैल] गाड़ी सवारी भार उठाने आदि कर्मों से मनुष्यों के बड़े उपकारक होते हैं तथा गाय दूध में अधिक उपकारक होती है और जैसे बैल उपकारक होते हैं वैसे भैंस भी हैं परन्तु गाय के दूध घी से जितने बुद्धिवृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंसके दूध से नहीं इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिनाहै। और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा। बकरी के दूध से २५९२० (पच्चीस सहस्र नौसौ बीस) आदमियों का पालन होता है वैसे हाथी, घोड़े, ऊँट गदहे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं*। इन पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा। देखो ! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे तभी आर्यावर्त्त व अन्य भूगोल देशोंमें बड़े आनन्दमें मनुष्यादि प्राणि वर्त्तते थे क्योंकि दूध घी बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे जबसे विदेशी मांसाहारी इस देशमें आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है क्योंकि—

---

* इसकी विशेष व्याख्या "गोकरुणानिधि" में की है।

जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाय तो फल फूल कहां से हों ? (प्रश्न) जो सभी अहिंसक हो जायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायें कि सब गाय आदि पशुओं को मार खायँ तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाय ? (उत्तर) यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त कर दें। (प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फेंक दें ? (उत्तर) चाहें फेंक चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें वा जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात छल कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करता है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है जिन पदार्थों से स्वास्थ्य रोगनाश बुद्धि बल पराक्रमवृद्धि और आयुवृद्धि होवे उन तण्डुलादि गोधूम फल मूल कन्द दूध घी मिष्टादि पदर्थों का सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है जितने पादर्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं उन २ का सर्वथा त्याग करना और जो २ जिसके लिये विहित हैं उन२ पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है (प्रश्न) एक साथ खाने में कुछ दोष है वा नहीं ? (उत्तर) दोष है, क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्ठी आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ जाता है वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है सुधार नहीं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

[१८५० ई०—१८८५ ई०]

[सं० १६०७—१६४२]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का जन्म काशी में हुआ। ये सुप्रसिद्ध कवि गिरिधरदास जी के सुपुत्र थे और जाति के अग्रवाल थे। इन की छोटी आयु में इन के माता-पिता का देहान्त हो गया इसलिए अच्छी शिक्षा न पा सके। परन्तु इनमें ईश्वर-दत्त योग्यता थी और कविता इन्हें बपौती में मिली थी, इसलिए हिंदी-साहित्य का आशातीत उद्धार किया और हिंदी-जगत का अत्यन्त उपकार कर दिखाया।

इन्होंने अनेक छंदो में विविध विषयों पर कविताएं लिखीं। इनकी कविता में उड़ान है, रस और चमत्कार है। नाटक के तो ये जन्मदाता माने जाते हैं। इन्होंने लगभग १८ नाटक लिखे जिनमें कुछ मौलिक हैं और कुछ अनुवाद।

भारतेन्दु जी के पहले गद्य के लिए कई प्रकार की हिन्दी प्रयुक्त होती थी। हिंदी के रूप का निश्चय नहीं होने पाया था। इन्होंने शुद्ध खड़ी बोली का पक्ष लेकर इस अनिश्चय को दूर कर दिया, इसलिए इन्हें हिंदी गद्य का जन्मदाता भी कहते हैं।

इनका पद्य मीठी और रसीली व्रज भाषा में है और गद्य परिमार्जित तथा परिष्कृत खड़ी बोली में। स्पष्ट है कि इनका इन दोनों भाषाओं पर पूरा अधिकार था।

इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी—नाटक, कथा-कहानी, स्तोत्र, काव्य, इतिहास आदि अनेक विषयों पर इन्होंने लेखनी चलाई। जिस भी विषय को हाथ लगाया, उसे पूरी तरह निभाया।

भारतेन्दु भारत-भूमि तथा मातृ-भाषा के भक्त थे। साहित्य सेवा के कारण इन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि दी गई। परन्तु शोक कि ३५ वर्ष ही की आयु में हमारे भारतेन्दु इस संसार से प्रस्थान कर गए।

सत्यहरिश्चंद्र नाटक का उपक्रम

निर्माण काल—सं० १९३२

मेरे मित्र बाबू बालेश्वर प्रसाद. बी० ए०, ने मुझ से कहा कि आप कोई ऐसा नाटक भी लिखें जो लड़कों के पढ़ने-पढ़ाने के योग्य हो, क्योंकि श्रृंगाररस के जो आपने नाटक लिखे हैं वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं, लड़कों को उनसे कोई लाभ नहीं। उन्हीं के इच्छानुसार मैंने यह सत्यहरिश्चन्द्र नामक रूपक लिखा है। इसमें सूर्यकुल-संभूत राजा हरिश्चन्द्र की कथा है। राजा हरिश्चन्द्र सूर्यवंश का अट्ठाइसवां राजा रामचन्द्र से ३५ पीढ़ी पहले त्रिशंकु का पुत्र था। इसने शौभपुर नामक एक नगर बसाया था और बड़ा ही दानी था। इसकी कथा शास्त्रों में बहुत प्रसिद्ध है और संस्कृत में राजा महिपालदेव के समय में आर्य क्षेमीश्वर कवि ने चंडकौशिक नामक नाटक इन्हीं हरिश्चन्द्र के चरित्र में बनाया है। अनुमान होता है कि इस नाटक को बने चार सौ बरस से ऊपर हुए, क्योंकि विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्य-ग्रन्थ में इसका नाम लिखा है। कौशिक विश्वामित्र का नाम है। हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र दोनों शब्द व्याकरण की रीति से स्वयं सिद्ध हैं। विश्वामित्र कान्यकुब्ज का क्षत्रिय राजा था। यह

एक बेर संयोग से वशिष्ठ के आश्रम में गया और जब वशिष्ठ ने सैन-समेत उसकी जाफत अपनी शबला नाम कामधेनु गऊ के प्रताप से बड़े धूमधाम से की तो विश्वामित्र ने वह कामधेनु लेनी चाही। जब हजारों हाथी, घोड़े और ऊँट के बदले भी वशिष्ठ ने गऊ न दी तो विश्वामित्र ने गऊ छीन लेनी चाही। वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने विश्वामित्र की सब सेना का नाश कर दिया और विश्वामित्र के सौ पुत्र भी वशिष्ठ ने शाप से जला दिये। विश्वामित्र इस पराजय से उदास होकर तप करने लगे और महादेव जी से बरदान में सब अस्त्र पाकर फिर वशिष्ठ से लड़ने आए। वशिष्ठ ने मन्त्र के बल से एक ऐसा ब्रह्मदंड खड़ा कर दिया कि विश्वामित्र के अस्त्र निष्फल हुए। हारकर विश्वमित्र ने सोचा कि अब तप करके ब्राह्मण होना चाहिए और तप करके अंत में ब्राह्मण और ब्रह्मर्षि हो गए। यह वाल्मीकीय रामाण के बाल काण्ड के ५२ से ६० सर्ग तक सविस्तर वर्णित है।

जब हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु ने इसी शरीर से स्वर्ग जाने के हेतु वशिष्ठ जी से कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि वह अशक्य काम हमसे न होगा। तब त्रिशंकु वशिष्ठ के सौ पुत्रों के पास गया और अब उनसे भी कोरा जवाब पाया तब कहा कि तुम्हारे पिता और तुम लोगों ने हमारी इच्छा पूरी नहीं की और हम को कोरा जवाब दिया इससे अब हम दूसरा पुरोहित करते हैं। वशिष्ठ के पुत्रों ने इस बात से रुष्ट होकर त्रिशंकु को शाप दिया कि तू चांडाल हो जा! बिचारा त्रिशंकु चांडाल बनकर विश्वामित्र के पास गया

और दुःखी होकर अपना सब हाल वर्णन किया। विश्वामित्र ने अपने पुराने वैर का बदला लेने का अच्छा अवसर सोचकर राजा से प्रतिज्ञा की कि इसी देह से तुमको स्वर्ग भेजेंगे और सब मुनियों को बुलाकर यज्ञ करना चाहा। सब ऋषि तो आए पर वशिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आए और कहा कि जहां चांडाल यजमान और क्षत्रिय पुरोहित वहां कौन जाय। क्रोधी विश्वामित्र ने इस बात से रुष्ट होकर शाप से वशिष्ठ के उन सौ पुत्रों को भस्म कर दिया। यह देखकर और बिचारे ऋषि मारे डर के यज्ञ करने लगे। जब मंत्रों से बुलानेसे देवता लोग यज्ञ भाग लेने न आए तो विश्वामित्र ने क्रोध से श्रुवा उठाकर कहा कि त्रिशंकु! यज्ञ से कुछ काम नही, तुम हमारे तपोबलसे स्वर्ग जाओ। त्रिशंकु इतना कहते ही आकाश की ओर उड़ा। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आना चाहता है तो पुकारा कि अरे ! तू, यहां आने के योग्य नहीं है, नीचे गिर। त्रिशंकु यह सुनते ही उल्टा होकर नीचे गिरा और विश्वामित्र को त्राहि-त्राहि पुकारा। विश्वामित्रने तपबल से उसको वहां बीच ही में स्थिर रखा। कर्मनाशा नामक नदी त्रिशंकु के ही लार से बनी है। फिर देवताओं पर क्रोध करके विश्वामित्रने सृष्टि ही दूसरी करनी चाही। दक्षिण ध्रुव के समीप सप्तर्षि और नक्षत्र इन्होंने नए बनाए और बहुत से जीव-जंतु फल-मूल बनाकर जब इन्द्रादिक देवता भी दूसरे बनाने चाहे तब देवता लोग डरकर इनसे क्षमा मांगने गए। इन्होंने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रख कर और दक्षिणाकाश में त्रिशंकु को ग्रह की भांति प्रकाशमान स्थिर रख

क्षमा किया। यह सब भी रामायण में ही है। फिर एक बेर पानी नहीं बरसा, इससे बड़ा काल पड़ा। विश्वामित्र एक चांडाल के घर भीख मांगने गए और जब कुत्ते का मांस पाया तो उसीसे देवताओं को बलि दिया। देवता लोग इनके भय से कांप गए और इन्द्र ने उसी समय पानी बरसाया। यह प्रसंग महाभारत के शांतिपर्व्व के १४१ अध्याय में है। फिर हरिश्चन्द्र की विपत्ति सुनकर क्रोध से वशिष्ठ जी ने उनको शाप दिया कि तुम बकुला हो जाओ और विश्वामित्र ने यह सुनकर वशिष्ठ को शाप दिया कि तुम आड़ी हो जाओ। पक्षी बनकर दोनों ने बड़ा घोर युद्ध किया, जिससे त्रैलोक्य कांप गया। अन्तमें ब्रह्माने दोनोंसे मेल कराया यह उपाख्यान मार्कंडेयपुराण के नवें अध्याय में है। इनकी उत्पत्ति यों है—

भृगु ने जब अपने पुत्र च्यवन ऋषि को ब्याह किये देख तो बड़े प्रसन्न हुए और बेटा, बहू देखने को उनके घर आए। उन दोनों ने पिता की पूजा की और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गए। भृगु ने बहू से कहा कि बेटी, वर मांग। सत्यव्रतीने यह वर मांगा कि मुझे तो वेद शास्त्र जानने वाला और मेरी माता को युद्ध-विद्या विशारद पुत्र हो। भृगु ने एवमस्तु कह कर दे प्राणायाम किया और उनके श्वास से दो चरु उत्पन्न हुए। भृगु ने वह बहू को देकर कहा कि यह लाल चरू तो तुम्हारी माता प्रति ऋतु समयमें अश्वत्थका आलिंगन करके खाय और तुम यह सफेदचरू उसी भांति उदुंबर का आलिंगन करके खाना। भृगुके वाक्यानुसार सत्यवती ने कन्नौज के राजा गाधि की स्त्री अपनी मातासे सब कहा। उसको

माता ने यह समझकर कि ऋषि ने अपनी पतोहू को अच्छा बालक होने को चरु दिया होगा, जब ऋतु आया तब लाल चरु कन्या को खिलाया और सफेद आप खाया। भगवान भृगु ने अपने तपोबलसे जब यह बात जानीतो आकर बहूसे कहा कि तुमने चरु को उलटा-पुलट किया इससे तुम्हारा लड़का ब्राह्मण हो कर भी क्षत्रियंकर्मा होगा और तुम्हारा भाई क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हो जायगा। सत्यवती ने जब ससुर से इस अपराध की क्षमा चाही तब उन्होंने कहा कि अच्छा तुम्हारे पुत्र के बदले पौत्र क्षत्रियकर्म्मा होगा। वही राजा गाधि को तो विश्वामित्र हुए और च्यवन को जमदग्नि और जमदग्निको परशुराम हुए। यह उपाख्यान कालिका पुराण के ८४ अध्याय में स्पष्ट है।

इन उपाख्यानों के जानने से इस नाटक के पढ़ने वालों को बड़ी सहायता मिलेगी। इस भारतवर्ष में उत्पन्न और इन्हीं हम लोगों के पूर्व पुरुष महाराज हरिश्चन्द्र भी थे। यह समझकर इस नाटक के पढ़ने वाले कुछ भी अपना चरित्र सुधारेंगे कवि का परिश्रम सुफल होगा।

नाटक रचना प्रणाली

(निर्माण-काल—सं० १६४०

नाटक लिखना आरम्भ करके, जो लोग उद्देश्य वस्तु परंपरासे चमत्कारजनक और अति मधुर वस्तुनिर्वाचन करके भी स्वाभाविक सामग्री परिपोष के प्रति दृष्टिपात नहीं करते उनका नाटकादि दृश्य काव्य लिखने का प्रयास व्यर्थ है क्योंकि नाटक आख्यायिका की भांति श्रव्य काव्य नहीं है ।

ग्रन्थकर्ता ऐसी चातुरी और नैपुण्य से पात्रों की बातचीत रचना करे कि जिस पात्र का जो स्वभाव हो वैसे ही उसकी बात भी विरचित हो । नाटक में वाचाल पात्र को मितभाषिता, मितभाषी की वाचालता, मूर्ख की वाकपटुता और पंडित का मौनीभाव विडंबना मात्र है । पात्र की बात सुनकर उसके स्वभाव का परिचय ही नाटक का प्रधान अंग है । नाटक में वाक्-प्रपंच एक प्रधान दोष है । रसविशेष द्वारा दर्शकों के अंतःकरण को उन्नत अथवा एकबारगी शोकावनत करने को सबधिक वागाडंबर करने से कभी उद्देश्य सिद्ध नहीं होता । नाटक में वाचालता की अपेक्षा मितभाषिता के साथ वाग्मिता का ही सम्यक् आदार होता है । नाटक में प्रपंच रूप से किसी भाव को व्यक्त करने का नाम गौण उपाय

है और कौशल विशेष द्वारा थोड़ी बात में गुरुतर भाव व्यक्त करने का नाम मुख्योपाय है। थोड़ी सी बात में अधिक भाव की अवतारणा ही नाटक-जीवन का महौषध है। जैसा उत्तर रामचरित में महात्मा जनक जी आकर पूछते हैं—'क्वास्ते प्रजावत्सलो रामः? यहां प्रजावत्सल शब्द से महाराज जनक के हृदय के कितने विकार बोध होते हैं, केवल सहृदय ही इसका अनुभव करेंगे। चित्रकार्य के निमित्त जिन-जिन उपकरणों का प्रयोजन और स्थान विशेष की उच्चता-नीचता दिखलाने की जैसी आवश्यकता होती है वैसे ही वही उपकरण और उच्चता-नीचता प्रदानपूर्वक अति सुन्दर रूप से मनुष्य के बाह्य भाव और कार्यप्रणाली के चित्रण द्वारा सहज भाव से उनका दिखलाना प्रशंसा का विषय है। जो इस भांति दूसरे का अंतरभाव व्यक्त करने को समर्थ है। उन्ही को नाटककार संबोधन दिया जा सकता है और उन्हीं के प्रणीत ग्रंथ नाटक में परिगणित होते हैं।

नाटक में अंतर का भाव कैसे चित्रित किया जाता है इसका एक अति आश्चर्य दृष्टांत अभिज्ञान शाकुंतल से उद्धृत किया गया।

शकुंतला ससुराल में गमन करेगी इस भगवान कण्व जिस भांति खेद प्रकाश करते हैं वह यह है।

कण्व—(मन में चिंता करके) आहा आज शकुंतला पति-गृह में जायगी यह सोचकर हमारा हृदय कैसा उत्कंठित होता है, अंतर में जो वाष्पभर का उच्छान हुआ है उससे वाग्जड़ता हो गई

है, और दृष्टिशक्ति चिंता से जड़ीभूत हो रही है। हाय! बनवासी तपस्वी हैं। सो जब हमारे हृदय में ऐसा वैक्लव्य होता है तो कन्या के वियोग के अभिनव दुःख में विचारे गृहस्थों की क्या दशा होती होगी।

सहृदय पाठक! आप विवेचना करके देखिये इस स्थान में कवि-श्रेष्ठ कालिदास कुलपति कण्व ऋषि का रूप धारण करके ठीक उनका मानसिक भाव व्यक्त कर सके हैं कि नहीं।

इसके बदले कालिदास यदि कण्व ऋषि का छाती पीट कर रोना वर्णन करते तो उनके ऋषि-जनोचित धैर्य की क्या दुर्दशा होती अथवा कण्व का शकुन्तला के जाने पर शोक-हीन वर्णन करते तो कण्व का स्वभाव मनुष्य-स्वभाव से कितना दूर जा पड़ता। इसी हेतु कविकुलमुकुट-माणिक्य भगवान कालिदास ने ऋषि-जनोचित भाव ही में कण्व का शोक वर्णन किया।

नाटक रचना में शैथिल्य दोष कभी न होना चाहिये नायक-नायिका द्वारा किसी कार्य विशेषकी अवतारणा करके अपरिसमाप्त रखना अथवा अन्य व्यापारकी अवतारणा करके उसका मूलच्छेद करना नाटक-रचना का उद्देश्य नहीं है। जिस नाटक की उत्तरोत्तर कार्य-प्रणाली सदर्शन करके दर्शक लोग पूर्व २ कार्य विस्मृत होते जाते हैं वह नाटक कभी प्रशंसा-भाजन नहीं हो सकता जिन लोगों ने केवल उत्तम-उत्तम वस्तु चुनकर एकत्र किया है उनकी गुंफित वस्तु की अपेक्षा जो उत्कृष्ट मध्यम और अधम तीनों का यथा-स्थान निर्वाचन करके प्रकृति की भावभंगी उत्तम रूप से चित्रित

करने में समर्थ हैं वही काव्यामोदी रसज्ञ-मंडली को अपूर्व आनन्द वितरण कर सकते हैं। कालिदास, भवभूति और शेक्सपियर प्रभृति नाटककार इसी हेतु पृथ्वी में अमर हो रहे हैं। कोई सामग्री संग्रह नहीं है, अथच नाटक लिखना होगा यह अलीक संकल्प करके जो लोग नाटक लिखने को लेखनी धारण करते हैं उनका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। यदि किसी को नाटक लिखने की वासना हो तो नाटक किसको कहते हैं इसका तात्पर्य हृदयंगम करते, नाटक-रचियता को सूक्ष्म रूप से ओतप्रोत भाव में मनुष्य की प्रकृति अलोचना करनी चाहिये। जो अनालोचित-मानव प्रकृति हैं उनके द्वारा मानव जाति के अंतर्भाव सब विशुद्ध रूप से चित्रित होंगे, यह कभी संभव नहीं है। इसी कारण कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तला और शेक्सपियर के मैकबेथ और हेमलेट इतने विख्यात हो के पृथ्वी के सर्वस्थान में एकादर से परिभ्रमण करते हैं मानव प्रकृति की समालोचना करनी हो तो नाना देशों में भ्रमण करके नाना प्रकार के लोगों के साथ कुछ दिन वास करे, तथा नाका प्रकार के समाज में गमक करके विविध लोगों का आलाप सुने तथा नाना प्रकार के ग्रंथ अध्ययन करे, वरंच समय में अश्वरक्षक गोरक्षक, दास दासी, ग्रामीण, दस्यु प्रभृति नीच प्रकृति और सामान्य लोगों के साथ कथोपकथन करे यह न करने से मानवप्रकृति समालोचित नहीं होती। मनुष्यों की मानसिक वृत्ति परस्पर जिस प्रकार अदृश्य है उन लोगों के हृदयस्थ भाव भी उसी रूप अप्रत्यक्ष हैं। केवल बुद्धिवृत्ति की परिचालना द्वारा तथा जगत के कथिपय वाह्य कार्यों

पर सूक्ष्म दृष्टि रखकर उसके अनुशीलन में प्रवृत्त होना होता है। और किसी उपकरण द्वारा नाटक लिखना झख मारना है।

राजनीति, धर्म्मनीति, आन्वीक्षिकी, दण्डनीति, संधि, विग्रह प्रभृति राजगुण; मंत्रणा, चातुरी, आद्य, करुणा प्रभृति रस विभाव, अनुभाव, व्यभिचार भाव तथा सात्विक भाव तथा व्यय वृद्धि, स्थान प्रभृति त्रिवर्ग की समालोचना में सम्यक् रूप समर्थ हो तब नाटक लिखने को लेखनी धारण करे।

स्वदेशीय तथा भिन्नदेशीय समाजिक रीति व्यवहारिक रीति पद्धति का निदान फल और परिमाण इन तीनोंका विशिष्ट अनुसंधान नाटक रचना का उत्कृष्ट उपाय है।

वेश और वाणी दोनों ही पात्र के योग्यानुसार होनी चाहिये। यदि भृत्यपात्र प्रवेश करे तो जैसे बहुमूल्य परिच्छद उसके हेतु अस्वाभाविक है वैसे ही पंडितों के संभाषण की भांति विशेष संस्कृत-गर्भित भाषा भी उसके लिये अस्वाभाविकी है। महामुनि भरताचार्य पात्र-स्वभावानुकूल भाषन रखनेका वर्णन अत्यंत सविस्तर कर गए हैं। यद्यपि उनके नांदी रचनादि विषय के नियम हिंदी में प्रयोजनीय नहीं किंतु पात्र-स्वभाव विषयक नियम तो सर्वथा शिरोधार्य हैं।

नाटक पठन वा दर्शन में स्वभाव-रक्षा मात्र एक उपाय है जो पाठक और दर्शकों के मनःसमुद्र को भाव-तरंगों से आस्फालित कर देता है।

प्रताप नारायण मिश्र

[१६१३ ई०—१६५१ ई०]

[सं० १८५६—१८६४]

मिश्र जी उन्नाव निवासी थे। १८ वर्ष की छोटी आयु में पिता की छाया सिर पर से उठ जाने से परिस्थिति-वश स्कूल से उन्हें मुख मोड़ना पड़ा। साहित्य-सेवा इनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति थी—यही इनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था। तत्कालीन साहित्य-सेवियों का प्रभाव इन पर भी पड़ा। अतः अन्य कवियों के समागम से ये भी कविता करने लगे और अपना तन-मन-धन मातृ भाषा को अर्पण कर दिया।

मिश्र जी का बंगला से विशेष प्रेम था। बंगला साहित्य से प्रभावित होकर इन्होंने कई ग्रन्थों के अनुवाद किए। बंगला के अतिरिक्त उर्दू, फारसी, संस्कृत और अंगरेजी में भी इनकी अच्छी गति थी।

सं० १८४० में इन्होंने 'ब्राह्मण' पत्र निकाला। इसमें सामाजिक तथा साहित्यक लेख प्रकाशित होते थे। इनके लेखों में हास्य और व्यंग्य का पुट रहता था। साहित्यक निबंधों में 'भौं', 'धोखा', 'बातचीत' आदि निवन्ध अधिक प्रसिद्ध हैं।

इन्होंने साहित्य सेवा के साथ सामाजिक तथा राजनैतिक उन्नति की ओर भी ध्यान दिया।

'मिश्र' जी एक कवि ही नहीं, अच्छे नाटककार और प्रहसन लेखक भी थे। इनकी मुख्य प्रतियां ये हैं:—

नाटक—गोसंकट, कलिप्रभाव,
प्रहसन—जुआरी खुआरी।

'मिश्र' जी की शैली दो प्रकार की थी—गांभीर्य-प्रधान और हास्य-रस-पूर्ण।

इनकी भाषा सरल और रोचक है परन्तु व्याकरण की दृष्टि से कहीं कहीं दोष पाये जाते हैं। यह प्रायः मुहाविरों तथा पूर्वी कहावतों से विभूषित होती है कहीं कहीं वैसवाड़ी के शब्द भी देखने में आते हैं। कई स्थानों पर वाक्य बहुत लम्बे और जटिल हो गये हैं। इतना सब कुछ होते हुए भी इनकी साहित्य-सेवा की लगन को देखते हुए इनके दोष छिप ही जाते हैं।

——

धरती माता

आजकल हमारे देश में गोमाता के गुण तथा उनकी रक्षा के उपाय एवं तज्जनित लाभ की चर्चा चारों ओर सुनाई देती है। यद्यपि दुष्ट प्रकृति के लोग उनमें बाधा करने से नहीं चूकते, और बहुत से कपटी रक्षक बन २ के भी भक्षक का काम करते हैं, अथवा कमर मजबूत बांध के तन मन धन से इस विषय का उद्योग करने वाले भी श्री स्वामी आलाराम, श्रीमान स्वामी और पंडित जगत नारायण के सिवा देख नहीं पड़ते। नामवरी का लालच, आपस का वैमनस्य, सरकार की स्वार्थपरता या बेपरवाई इत्यादि कई अड़चनें बड़ी भारी हैं, पर लोगों के दिलों पर इस बात का बीज पड़ गया है तो निश्चय है कि कभी न कभी कुछ न कुछ हो ही रहेगा। पर खेद का विषय है कि हमारी धरती माता की ओर अभी हमारे राजा प्रजा किसी का भी ध्यान नहीं है। हम अपने देहाती भाइयों को देखते हैं तो सदा स्वच्छ वायु में रहते और परिश्रम करते एवं अनेक बल-नाशक दुर्व्यसनों से बचते हुए भी अधिकांश निर्बल ही पाते हैं। यह बुद्धिमानों का महानुभूत सिद्धांत है, कि 'उत्तम खेती मध्यम बान, निषिद्ध चाकरी भीख निदान', पर आज कल कृषिजीवी ही लोग अधिक दरिद्री पाए जाते हैं। कितने शोक की बात है कि जिनके घर से हमारे

नगरवासी भाइयों को अन्न-वस्त्र मिलता है उन्हीं को रोटी-लंगोटी के लाले पड़े रहते हैं।

हमारे बुद्धिमान डाक्टर और हकीम जिन बातों को स्वास्थ्य-रक्षा का मूल बताते हैं उन्हीं कामों को दिन रात करने वाले यथोचित रीति से हृष्ट पुष्ट न हों, इसका कारण क्या है? ईश्वर की इच्छा, काल की गति, वर्तमान राजा की नीति, चाहे जो कह लीजिये पर इसमें भी कोई सन्देह नहीं है हमारे नाश का मुख्य कारण हमारी ही मूर्खता है। नहीं तो कुत्ते भी जहां बैठते हैं, वहां पूँछ हिला कर बैठते हैं। पर हमने अपनी चाल उनसे भी बुरी कर रक्खी है कि जिस पृथ्वी पर रहते हैं उसी के बनने बिगड़ने का ध्यान नहीं रखते। हमारे वे पूर्वज मूर्ख न थे जिन्होंने धरती को माता एवं शिवजी की आठ मूर्तियों में से एक मूर्ति कहा है, तथा उसके पूजने की आज्ञा दी है। वे भली भांति जानते थे कि संसार में कितने पदार्थ हैं सबको उत्पत्ति और लय इसी में और इसी से होती है।

हम सारे धर्म कर्म इसी पर करते हैं, हमारे सुख भोग की सारी सामग्री हमें इसी से प्राप्त होती हैं। फिर इसके माता होने में क्या सन्देह है। यदि इस माता के प्रसन्न रखने में उद्योग न करते रहेंगे तो हमारी क्या दशा होगी? अब इस समय के अनेक विदेशी विद्वानों को भी निश्चय हो गया है कि यदि कोई पुरुष नित्य शरीर पर साफ चिकनी मिट्टी लगाया करे वा प्रतिदिन कुछ काल उसमें लोटा करे तो शरीर, मस्तिष्क एवं हृदय को बड़ा

लाभ पहुंचता है। हमारे यहां के अपठित लोग भी जानते हैं कि मट्टी देही को पालती है पर यदि हम मट्टी को शुद्ध न रक्खें, उसके अशुद्ध करने वालों को न रोकें शुद्ध मट्टी प्राप्त करने में आलस्य अथवा लोभ करें तो हमारा ही अपराध है कि नहीं? और उस अपराध से मट्टी लगाने तथा उसके लाभ उठाने से हम वञ्चित रहेंगे कि नहीं ?

ऐसे ही मिट्टी की तथा पावन वस्तुओं की खानि हमारी धरती माता यदि निर्बीजा होती रहेगी जैसी आजकल हमारी बेपरवाही से होती जाती है तो इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं कि एकदिन हमारी जीवन-यात्रा ही कठिन हो जायगी और जिन गऊ माता के लिए आप इतना हाय हाय कर रहे हैं उनका पालना भी महा दुर्घट हो जायगा। क्योंकि सबसे बड़ी तो यही धरती माता हैं। जब यही खाने को न देगी तब किसको कहां ठिकाना है। इसीलिए देशवासी-मात्र को चाहिये यदि अपना और आगे आने वाली पीढ़ियों का सचमुच भला चाहते हैं तो सब बातों से पहले धरती माता के प्रसन्न रखने का प्रयत्न करें। फिर दूसरे काम तो सहज ही में हो जायेंगे। आज हम देखते हैं कि हमारी भारतभूमि ऐसी बलहीन तनहीन हो रही है कि जिधर देखो उधर—

खेती न किसान को भिखारी को न भीख कहूं,
बनिया को बनिज न, चाकर को चाकरी,
जीविका-विहीन दीन छीन लोग आपस में,
एकन सों एक कहैं कहां जाइ का करी।

—की दशा हो रही है। इस दशा में बड़े २ मनसूबे बांधना शेखचिल्ली के इरादे हैं। नहीं तो सम्पादकों, व्याख्यानदाताओं, लेखकों को चाहिये कि जहां और बातें सोचा करते हैं वह धरती के पुष्ट रखने के उपाय भी सर्वसाधारण को विदित करते रहें।

जड़ पदार्थ की पूजा के द्वेषी नेक विचारें कि यदि इस पूजा से विमुख रहेंगे तो सारा धर्म और देश हितैषिता पोथियों ही में रह जायगी। मुख में बोलने की सामर्थ्य रहेगी नहीं, उस हालत में करते धरते कुछ न बनेगा। नहीं तो हमारे इस वाक्य पर विश्वास करो कि धरती है भगवती का रूप, इसके प्रसन्न रखने ही में सबका निर्वाह है, विश्वस्त बूढ़ों से सुनने में आया है कि अभी ४० ही ५० वर्ष हुए, जिन खेतों में सौ २ मन अन्न उपजता था उनमें अब ५०-६० मन मुश्किल से होता है! धरती माता की पूजा न होने हीं का फल है। यदि हम अब भी न चेतेंगे तो आगे को और भी अनिष्ट की सम्भावना है। अत: अभी से धरती माता की पूजा का उद्योग कीजिये। दूसरों को उपदेश दीजिए, जी में विचारिए कि इनके प्रसन्न रखने को कैसी पूजा चाहिए। फिर उस पूजा की विधि का सब में प्रचार कीजिए। यही परम कर्तव्य है। हमारे दूसरे भाई भी सोचें तो क्या बात है, पर सोचने समझने के साथ यह भी विचार लेना चाहिये कि "करनी सार है कथनी खुआर।"

जिन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती के लेक्चर सुने होंगे उनको स्मरण होगा कि संस्कृत में वृक्ष को पादप कहते हैं, जिसका

अर्थ है पांव से पीने वाला अर्थात् उनके पांव (जड़) में जल डालो तो वे पी लेते हैं। जैसे हम मुंह में जल दुग्धादिक पीते हैं तो वह सारे शरीर को शीतल कर देता है वैसे ही पेड़ की जड़ में पानी डालो तो उसके डाल, पत्र आदि को शीतल कर देता है और पानी का जितना भाग पृथ्वी में होता है उसको वे स्वभावतः खींचा करते हैं। बड़े बड़े आम- पीपल, महुवा आदि के पेड़ों को देखो वह बिना सींचे हरे रहते हैं। इसका कारण यही है कि वे धरती के स्वाभाविक जल को मूल द्वारा पीते रहते हैं इसी से जीवित रहते हैं और यह बात तो सब को विदित है कि पृथ्वी पर जितना जल है उसे सूर्य नारायण खींच लेते हैं। वही वर्षा में बरसा देते हैं। पर धरती में मिला हुआ या धरती के नीचे का जल सूर्य नहीं खींचते, क्योंकि धरती उस जल की आड़ है। इससे धरती के नीचे का जल खींचने में सूर्य को वृक्षों से सहायता मिलती है। उन्होंने खींच के अपने पत्र पुष्पादि में भर लिया, और पत्रादि पर, सीधी सूर्य की किरणें पड़ीं बस धरती के नीचे का जल भी मेघमण्डल में पहुंच गया! विचार के देखए तो नदी, ताल आदि से भी वृक्षों का जल शीघ्र सूर्यनारायण तक पहुंचता है, क्योंकि वह उनके अधिक पास हैं।

अब वाचकवृन्द विचार लें वृक्षों से धरती को कितनी पुष्टि होती है। वृष्टि के लिए वृक्षों से कितनी अधिक सहायता होती है। वृक्षों के निकट पवन भी शीतल और आरोग्यदायक होती है। यह बात अनपढ़े लोग भी देखते हैं कि जहां कई वृक्ष

होते हैं वहां जाने से ग्रीष्म का महा कठिन ताप भी बहुत शीघ्र जाता रहता है। फिर इस बात में क्या संदेह है कि धरती माता के लिए वृक्षों की बड़ी आवश्यकता है। इसी विचार पर पुराने राजा लोग नगरों के आस पास बड़े बड़े जंगल रखते थे। खुशामदी टट्टू कह देते हैं 'अगले राजा बन्दोबस्त करना नहीं जानते थे इससे उनके शहरों के इर्द गिर्द जंगल पड़े रहते थे!' यह नहीं जानते कि जंगलों से लाभ कितना होता था। लाखों प्रकार की औषधि बिन जोते बोए हाथ आती थी। शिकार खेलने का बड़ा सुभीता रहता था, जिससे शस्त्र-संचालन का अभ्यास रहता था। पत्ते, फल, फूल छाल, लकड़ी का किसी को दरिद्र न रहता था। यदि जंगलों से क्या फल होता है यह लिखने बैठें तो यह लेख बहुत ही बढ़ जायेगा। बुद्धिमान पाठक स्वयं समझ लें कि धरती माता को वृक्षों से क्या सुख मिलता है।

पर खेद है कि हमारी गवर्नमेंट ने हमारे देश के बन उजाड़ने पर कमर बांध रक्खी है, और उसकी देखादेखी हमारे छोटे २ जमींदार भी अपनी भूमि में बीघा भर परती भी पड़ी हुई देखते हैं तो किसानों को उठा देते हैं। जब से हमारे देश में वृक्षों का नाश होने लगा, तभी से हमारी धरती माता जीर्ण हो गई। वर्षा की न्यूनता और रोगों की वृद्धि हो गई। यदि अब भी हमारे देशहितैषी भाई धरती का भला चहते हैं तो वृक्ष और घास का नाश होना रोकें। लोगों को उपदेश देना, अपनी जमीन पर के पेड़ों को काटना—सदा उनकी संख्या बढ़ाते रहना—सरकार

से भी इस विषय में प्रार्थना करते रहना इत्यादि ही उपाय हैं। पीपल का वृक्ष पोला होता है, वह औरों से अधिक जल खींचता है। इसी से उसका काटाना वर्जित हैं। जहां तक हो सके उसको तो काटने से अवश्य ही बचाइए! बरगद, आंवला इत्यादि दूध वाले वृक्षों (जिनमें दूध निकलता है) से और भी अधिक उपकार हैं। आप जानते हैं, पानी की अपेक्षा दूध अधिक गुणकारी होता है, सो भी वृक्षों का दूध! जिसका प्रत्यक्ष फल यह है कि बरगद का दूध गूलर के फल निर्बलों के लिए बड़ा भारी दवा है। भला उनसे सूर्य नारायण कितनी सहायता पाते है तथा उनके काटने से कितना धरती माता को दुख होता है, इसको हम थोड़े से पत्र में कहां तक लिख सकते हैं? हमारे ऋषियों ने जेठ में बटपूजन एवं अन्यान्य मासों में दूसरे वृक्षों का पूजन कहा है, इसका हेतु यह था कि सूरज की प्रखर किरणें उनका दूध सुखा देती हैं, वह घाटा उनकी जड़ में दूध डाल के तथा फूल और अष्टगंध की सुगंध से पूरा करना चाहिए।

पर शोक है, नये मतावलम्बियों की बुद्धि पर कि उन्होंने मूर्खता से ऐसी हिकमतों को जड़ वस्तु की उपासना समझ है। अरे भाई अपना भला चाहो तो मतवाले न बनो। प्रत्येक वृक्ष की रक्षा, वृद्धि और सनातन रीति से जल दुग्धादि द्वारा उनको सींचना स्वीकार करो।

बालकृष्ण भट्ट

[सं० १९०१—१९७१]

[सं० १८४४—१९१४ ई०]

भट्ट जी संस्कृत तथा अंग्रेजी की अच्छी जानकारी रखते थे। थोड़ी देर के लिये यह एक स्कूल में अध्यापक भी रहे, परन्तु वहां इनकी स्वतन्त्र प्रकृति को ठेस पहुंची और इन्होंने नौकरी छोड़ दी। सं० १९३३ में इन्होंने 'हिन्दी प्रदीप' पत्रिका निकाली, जिसे ३२ वर्ष तक सफलता पूर्वक चलाते रहे। क्या सामाजिक, क्या साहित्यिक क्या राजनीतिक सभी विषयों पर इन्होंने छोटे छोटे लेख लिखे।

भट्ट जी को भाषा का व्यापक बनाने की चिन्ता थी अतः उर्दू के तत्सम तथा अंग्रेजी के शब्दों का वे निःसंकोच प्रयोग करते थे।

भट्ट जी की भाषा सजीव तथा रोचक है। मुहाविरों के प्रयोग में आप सिद्ध हस्त थे।

आपकी शैली मिश्र जी की शैली से मिलती जुलती है। भाषा में कहीं कहीं पूर्वी शब्दों का प्रयोग भी किया है। वाक्य

कुछ बड़े बड़े होते थे। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि ने भाषा को सुन्दर तथा सजीव बना दिया है। भट्ट जी के निबन्धों में गंभीर अध्ययन तथा व्यापक पांडित्य, का परिचय मिलता है। गम्भीर विषयों की भाषा को भी सरल बनाये रखने का इन्होंने सफल प्रयास किया है। इनके लेखों में साहित्यिक सुगन्ध है। इनकी पत्रिका में साहित्यिक तथा हास्यपूर्ण निबन्ध होते थे। पद-विन्यास कभी २ इनका बहुत ही अनूठा होता था। निबंधों के अतिरिक्त इन्होंने कई छोटे मोटे नाटक भी लिखे हैं। जैसे :—

नाटक—कालिराज की सभा, रेल का विकट खेल, बाल-विवाह, चन्द्रसेन इन्होंने मधुसूदन के पद्मावती और 'शर्मिष्ठा दो बंगभाषा के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया।

— — —❀— —

आत्मनिर्भरता

आत्म निर्भरता (अपने भरोसे पर रहना) ऐसा श्रेष्ठ गुण है कि जिसके न होने से पुरुष में पौरुपेयत्व का अभाव कहना अनुचित नहीं मालूम होता जिनको अपने भरोसे का बल है, वे जहां होंगे, जल में तूँबी के समान सबके ऊपर रहेंगे। ऐसों ही के चरित्र पर लक्ष्य कर महाकवि भारवी ने कहा है—

"तेज और प्रताप से संसार-भर को अपने नीचे करते हुए ऊँची उमंग वाले दूसरों के द्वारा अपना वैभव नहीं बढ़ाना चाहते।" शारीरिक बल चतुरंगिणी सेना का बल, प्रभुता का बल, ऊँचे कुल में पैदा होने का बल, मित्रता का बल, मंत्र-तन्त्र का बल इत्यादि जितने बल हैं, निज बाहुबल के आगे सब तृण बल हैं, वरन् आत्मनिर्भरता की बुनियाद यह बाहुबल सब तरह के बल को सहारा देने वाला और उभारने वाला है। योरप के देशों की जो इतनी उन्नति है तथा अमेरिका, जापान आदि जो इस समय मनुष्य-जाति के सिरताज हो रहे हैं, इसका यही कारण है कि उन-उन देशों में लोग अपने भरोसे पर रहना या कोई काम करना अच्छी तरह जानते हैं। हिन्दुस्तान का जो सत्यानाश है, इसका यही कारण है कि यहां के लोग अपने भरोसे पर रहना भूल ही गये। इसी से

और सरसब्जी की हालत में हो जायेंगे। जब तक किसी जाति के हर एक व्यक्ति के चरित्र में आदि से मौलिक सुधार न किया जाये, तब तक अव्वल दरजे का देशानुराग और सर्वसाधारण के हित की वाञ्छा सिर्फ कानून के अदल-बदलपन से या नये कानून जारी करने से नहीं पैदा हो सकती। जालिम-से-जालिम बादशाह की हुकूमत में भी रहकर कोई कौम गुलाम नहीं कही जा सकती, वरन् गुलाम वही कौम है. जिसमें एक-एक व्यक्ति सब भांति कदर्य-परायण और जातीयता के भाव से रहित है। ऐसी कौम, जिसकी नस में दास्य-भाव समाया हुआ है, कभी तरक्की नहीं करेगी चाहे कैसे ही उदार शासन से वह शासित क्यों न की जाय। तो निश्चय हुआ कि देश की स्वतंत्रता की गहरी और मजबूत नींव उस देश के एक-एक आदमी के आत्मनिर्भरता आदि गुणों पर स्थित है ऊंचे-से-ऊंचे दरजे की तालीम बिल्कुल बेफायदा है, यदि हम अपने ही सहारे अपनी बेहतरी न कर सकें। जान स्टुअर्ट मिल* का सिद्धान्त है कि—"राजा का भयानक-से-भयानक अत्याचार देश पर कभी कोई बुरा असर नहीं पैदा कर सकता, जब तक उस देश के एक-एक व्यक्ति में अपने सुधार की अटल वासना दृढ़ता के साथ बद्धमूल है।

पुराने लोगों से जो चूक और गलती बन पड़ी है, उसी का नतीजा वर्तमान समय में हम लोग भुगत रहे हैं। उसी को

---

* एक विदेशी दार्शनिक।

चाहे जिस नाम से पुकारिये—यथा जातीयता का भाव जाता रहा, एका नहीं है, आपस की हमदर्दी नहीं है इत्यादि। तब पुराने क्रम को अच्छा मानना और उस पर श्रद्धा जमाये रखना हम क्योंकर अपने लिए उपकारी और उत्तम मानें। हम तो इसे निरी चंडूखाने की गप समझते हैं कि—"हमारा धर्म हमें आगे नहीं बढ़ने देता, अथवा विदेशी राजा से शासित हैं, इसी से हम तरक्की नहीं कर सकते।" वास्तव में सच पूछो तो आत्मनिर्भरता अर्थात अपनी सहायता अपने आप करने का भाव हमारे पास है ही नहीं। यह सब हमारी वर्तमान दुर्गति उसी का परिमाण है, बुद्धिमानों का अनुभव हमें यही कहता है कि मनुष्य में पूर्णता विद्या से नहीं, वरन काम से होती है। प्रसिद्ध पुरुषों की जीवनी पढ़ने से ही नहीं वरन उन प्रसिद्ध पुरुषार्थी पुरुषों के चरित्र का अनुकरण करने से मनुष्य में पूर्णता आती है। योरप की सभ्यता, जो आजकल हमारे लिए प्रत्येक उन्नति की बातों में उदाहरण-स्वरूप मानी जाती है, एक दिन एक आदमी के काम का परिणाम नहीं है। जब कई पुश्त तक देश-का-देश ऊँचे काम, ऊँचे खयाल और ऊँची वासनाओं की ओर प्रबल-चित्त रहा, तब वे इस अवस्था को पहुँचे हैं। वहां के हर एक फिरके, जाति या वर्ण के लोग धैर्य के साथ धुन बांध के बराबर अपनी-अपनी तरक्की में लगे हैं। नीचे-से-नीचे दरजे के मनुष्य—किसान, कुली, कारीगर आदि—और ऊँचे-से-ऊँचे दरजे वाले—कवि,

बड़प्पन किसी जाति-विशेष या खास दरजे के आदमियों के हिस्से में नहीं पड़ा। जो कोई बड़ा काम करे या जिससे सर्वसाधारण का उपकार हो, वही बड़े लोगों की कोटि में आ सकता है। वह चाहे गरीब-से गरीब या छोटे-से-छोटे दरजे का क्यों न हो, बड़े-से बड़ा है। वह मनुष्य के तन में साक्षात देवता है। हमारे यहां अवतारी ऐसे ही लोग हो गये हैं। सवेरे उठ जिनका नाम लेने से दिन भर के लिये मङ्गल की गारन्टी*समझी जाती है, ऐसे महामहिमशाली जिस कुल में जन्मते हैं, वह कुल उजागर और पुनीत हो जाता है। ऐसों ही की जननी वीर प्रसू कही जाती है। पुरुषसिंह ऐसा एक पुत्र अच्छा, गीदड़ों की खासियत वाले सौ पुत्र भी किस काम के। पुत्र-जन्म में लोग बड़ी खुशी मनाते हैं, शहनाई बजवाते हैं, फूले नहीं समाते। हमें पछतावा और दुख होता है कि जहां तीस करोड़ गीदड़ थे, वहां एक की। गिनती और बढ़ी, क्योंकि हिन्दुस्तान की हमारी बिगड़ी गिरी कौम में सिंह का जन्मना सर्वथा असंभव-सा प्रतीत होता है, और न हम लोगों के ऐसे पुण्य के काम हैं कि हमारे बीच सब सिंह-ही-सिंह जन्म लें। तब हमारी इतनी अधिक बढ़ती जैसी बाल्य-विवाह की कृपा से हो रही है, किस काम की। सिवा इसके कि हिन्दुस्तान की पृथ्वी का बोझ बढ़ता जाय।

समाज में ऐसे-ऐसे कुसंस्कार और निंदित रीतियां चल

---

* अंगरेजी शब्द प्रचलित हो चुका है।

पड़ी हैं कि आत्मनिर्भरता पास तक नहीं फटकने पाती। बहुत तरह से समाज-बन्धन तथा खान-पान आदि की कैद, जो हमारे पीछे लगा दी गई है, उन सब का यही तो परिणाम हुआ कि आजादी, जिस पर आत्मनिर्भरता या किसी दूसरे पौरुषेय गुण की लंबी चौड़ी इमारत खड़ी हो सकती है, शुरू ही से नहीं आने पाती। जब कि योरप के भिन्न-भिन्न देशों में मा-बाप अपने लड़कों को तालीम देने के साथ-ही-साथ अपने भरोसे पर जिन्दगी की किश्ती को किस तरह पर खेले जाना चाहिये, यह लड़कपन से सिखाते हैं, तब यहां दुधमुँहे बालक बालिकाओं का ब्याह कर स्वयं अपने भरण-पोषण तथा अन्य समस्त पौरुषेय गुण की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाने का प्रयत्न किया जाता है। योरप के देशों में पिता पुत्र को शक्ति-भर उत्तम-से-उत्तम शिक्षा दे उसे जीवन संग्राम के लिये तैयार कर देता है, जिसमें वह अपने आप निर्वाह कर सके। वहां के मां बाप हम लोगों के मां बाप की तरह अपने पुत्र के मित्रमुख शत्रु* नहीं हैं कि बिना सोचे लड़कपन से चक्की का पाट गले में बांध उस बेचारे को सब तरह पर हीन, दीन और लाचार कर डालें और आप भी चिता पर पहुँचने तक लड़कों की फिकर से सूचित न रहें। इतिहास से पूरा पता चलता है कि जब से यहां ब्रह्मचर्य की प्रथा उठा दी गई और दुधमुंहों का ब्याह जारी कर दिया गया, तब से आज तक बराबर हमारी

---

* जो देखने में मित्र, पर व्यवहार में शत्रु के समान हों।

घटती ही होती जाती है। हम तो यही कहेंगे कि जैसा पाप हम से बन पड़ता है, उसके मुक़ाबले में हमें कुछ भी दंड नहीं मिलता। दस या बारह वर्ष की कन्याओं के विवाहरूपी महापाप को इतनी सज़ा मिली, तो कुछ न हुआ। अस्तु, हमारे में आत्मनिर्भरता न होने का बाल-विवाह एक बहुत बड़ा प्रधान कारण है। इसी का यह फल है कि हम नया कुआं खोद नया स्वच्छ पानी पीना जानते ही नहीं।

हमारे देश की कुल आबादी के दस हिस्से में से आठ हिस्सा ऐसा है, जो केवल बाप-दादा की कमाई या परंपरा-प्राप्त जीविका अथवा वृत्ति से निर्वाह करता है। सौ में एक ऐसे मिलेंगे, जो अपने निज बाहुबल और पुरुषार्थ के भरोसे हैं, सो भी उनके सब पुरुषार्थ करतूत या सपूतो का निचोड़ केवल इतना ही है, जैसा किसी कवि ने कहा है—

"सफल जीवन उसी का है, जिसने अन्न-वस्त्र से अपने लड़के और स्त्री को प्रसन्न कर रक्खा है" इतना जिसने किया, वह पक्का सपूत और पुरुषार्थी है।

इधर पचास-साठ वर्षों से अँगरेज़ी राज्य के अमन-चैन का फ़ायदा पा हमारे देशवाले किसी भलाई की ओर न झुके, वरन् दस वर्ष की गुड़ियों का ब्याह कर पहले से ड्योढ़ी-दूनी सृष्टि अलबत्ता बढ़ाने लगे हमारे देश की जन-संख्या अवश्य घटनी चाहिए और उसके घटाने का सुगम उपाय केवल बाल-विवाह का रुक जाना है। गवर्नमेंट को चाहिए

कि वह बाल-विवाह को जुर्म* में दाखिल कर पूरे सिन पर आने के पहले जो अपने कन्या या पुत्र का विवाह करे, उसके लिए कोई भारी सज़ा या जुर्माना क़ायम कर दे। तब कदाचित् यह बुराई हम लोगों में से दूर हो; नहीं तो सीधी तरह से ये कभी राह पर नहीं आने वाले हैं। आत्मनिर्भरता में दृढ़, अपने क़ूवते-बाज़ू पर भरोसा रखने वाला, पुष्ट-बुद्धि पुष्ट-बल, भाग्यवान् एक सन्तान अच्छी, कूकर-शूकर-से निकम्मे, रग-रग में दास-भाव से पूर्ण, परभाग्योपजीवी दस किस काम के!

आदमी के लिए आज़ादी एक बहुमूल्य मोती है। वह आज़ादी तभी हासिल हो सकती है, जब हम अनेक तरह की फ़िकर और चिन्ता से निर्द्वंद्व हों और हमारी तबीअत में आत्मनिर्भरता ने दख़ल कर लिया हो। इस दशा में बड़ी-से-बड़ी चिन्ता और फ़िकर हमें उतनी असह्य न मालूम होगी कि वह हमारी स्वच्छन्दता को जड़ से उखाड़ सके। किसी वस्तु का जब बीज बना रहता है, तो उसको फिर बढ़ा लेना सहज है। आत्मनिर्भरता की योग्यता संपादन किये बिना ही हम लोगों के मा-बाप लड़कपन में अपने लड़कों का ब्याह कर यावज्जीवन के लिए उनकी स्वच्छन्दता का बीज नष्ट कर देते

* अब शारदा ऐक्ट बन गया है जिसके अनुसार कम उम्र वाले बालक या बालिका की शादी करने वाले को दण्ड का भागी होना पड़ता है।

हैं। उपरांत उनका शेष जीवन बोझ और अपाढ़ हो जाता है। इङ्गलैंड और अमेरिका, जो इस समय उन्नति के शिखिर पर चढ़े हैं, सो इसलिये कि वहां गृहस्थी करना हर एक आदमी की इच्छा पर निर्भर है। वहां मां-बाप को कोई अधिकार नहीं रहता कि निरे नाबालिग का ब्याह कर दें। यही सबब है कि उन उन देशों में प्राय: सभी बड़प्पन का दावा कर सकते हैं। हमारे यहां भी शंकर*, नानक, कबीर, कृष्ण, चैतन्य बुद्धदेव तथा हाल में स्वामी दयानन्द, जिनका बड़प्पन हम लोग मुक्त-कण्ठ हो स्वीकार करते हैं और जिनका नाम लेते चित गद्‌गद्‌ हो जाता है, सब-के-सब गृहस्थी के बोझ से स्वच्छन्द थे। आत्मनिर्भरता इन महापुरुषों में पूरा प्रभाव रखती थी। किसी का मत है—मुल्क की तरक्की औरतों की तालीम से होगी, कोई कहता है—विधवा-विवाह जारी होने से भलाई है, कोई कहता है—खाने-पीने की कैद उठा दी जाय तो हिन्दू लोग स्वर्ग पहुँच इन्द्र का आसन छीन लें, कोई कहता है—विलायत जाने से तरक्की होगी, कोई कहता है फिजूल-खर्ची कम कर दी जाय, तो मुल्क अभी तरक्की की सीढ़ी पर लपक के चढ़ जाय। हम कहते हैं—इन सब बातों से कुछ न होगा, जब तक बाल-विवाह-रूपी कोढ़ हमारा साफ न होगा। हम जानते हैं, हमारा यह रोना चीखना केवल अरण्यरोदन-मात्र है, फिर भी गला फाड़-

* शङ्कराचार्य्य जी।

फाड़ चिल्लाते रहेंगे, कदाचित किसी की तबीअत पर कुछ असर पैदा हो जाय और आत्मनिर्भरता ऐसे श्रेष्ठ गुण को हम लोगों के बीच भी प्रकट होने का अवकाश मिले।